

RA

530.7

साम्बित्र - ६

प ५]

रत्तजी ब्रह्म

आप आयु

पत्त और

न्यूनाधिक

जैसे व

हफ दोष

कारण के

उपरोक्त व

दिये गये

गक



सचित्र आयुर्वेद

पृ ५

कलकत्ता, मार्च, १९५३

079832
[अंक-६]

आयुर्वेद के सिद्धान्त अटल और स्थिर हैं

गुरुकुल - पश्चिम,
दिल्ली

“आयुर्वेद मेरा अत्यन्त प्रिय विषय है और मैंने समय निकाल कर इसका थोड़ा बहुत अध्ययन भी किया है। आज इस भौतिक विज्ञान के युग में सभी पुरानी बातों की उपेक्षा की जाती है। लोग कहते हैं विज्ञान ने बड़ी से बड़ी उन्नति कर ली है, हम बहुत अधिक उन्नत हो चुके हैं, अब हमें पुरानी बातों में चिपके न रहना चाहिये, पुरानी बातों का परित्याग करके नवीनता को ग्रहण करना चाहिये, प्राचीन सभी बातें बुरी हैं और नवीन आविष्कार सभी अच्छे हैं। कमसे कम मैं तो इन बातों को मानने के लिये उद्यत नहीं।”

हमारे शास्त्रकार सब वस्तुओं के सिद्धान्त स्थिर करते हैं। उनका प्रयोग आप अपनी बुद्धि से कर सकते हैं। हमारे यहाँ बुद्धि को स्वतन्त्रता दी गई है। आप आयुर्वेद को ही ले लीजिये। प्रश्न यह उठता है कि रोग होते क्यों हैं? आयुर्वेद का सिद्धान्त पित्त और कफ ये धातु हैं, इनके ही सहारे जीवन स्थिर है, ये ही धातुएँ जब कुपित हो जाती हैं या न्यूनाधिक हो जाती हैं तो इन्हीं की विकार संज्ञा हो जाती है। इन्हें ही “दोष” के नाम से पुकारने जैसे वायु कुपित हो गया तो वात दोष, पित्त कुपित हो गया तो पित्त दोष और कफ कुपित हो कफ दोष होते हैं। यह हमारे यहाँ का अटल और स्थिर सिद्धान्त है। पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक कारण के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके हैं।”

उपरोक्त वाक्य श्रीयुक्त पूज्य प्रभुदत्तजी गुरुचारी ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवत-लि० के पटना निर्माण केन्द्र में दिये गये अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में भाषण देते हुए कहा था। विशेष विवरण ८६६ पृष्ठ पर देखें।)

गक

आयुर्वेद १२
२२ मार्च १९५३

R 530.7.SHA-S



J079832

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

क ल क ता

वैद्यनाथ रस-भस्मों की श्रेष्ठता

जनता और सरकार के सामने राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिये वैद्यगणों को आयुर्वेदीय रस-भस्मों का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिये। हमारे इस कथन से सभी वैद्यराज सहमत होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। आयुर्वेदीय चिकित्सा में रस-भस्मों का प्रयोग सब से जल्दी फायदा करता है। शरीर के प्रत्येक परमाणुओं पर इनका प्रभाव इंजेक्शन से भी ज्यादा होता है। परन्तु अनेक प्रचलित इंजेक्शनों की तरह इनका कोई विपैला प्रभाव शरीरपर नहीं होता। इनकी १-२ रस्ती खुराक ही एक-दो घंटे में अपना असर दिखाती है और इनकी छोटी-सी गोली लेने में अमीर स्वभाव के रोगी को भी असुविधा नहीं होती। इसीलिये आयुर्वेद-शास्त्र में रस-भस्मों द्वारा चिकित्सा करनेवाला चिकित्सक उत्तम माना गया है।

महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में तो रस-भस्मों का प्रयोग काफी होता है। काष्ठादि दवा के साथ रस-भस्मों का प्रयोग बहुत ही चमत्कारी फल दिखलाता है। महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में जुकाम-सर्दी लगजाने पर अभ्रक-भस्म दी जाती है, जिससे रोगी जल्द अच्छा हो जाता है। पाण्डु, संग्रहणी, शोथ, खून की कमी आदि में लोह या मण्डूर भस्म देना बहुत ही जरूरी है। राजयक्ष्मा के लिये स्वर्ण-भस्म से अच्छी कौन-सी दवा है ? दिल को ताकत देने के लिये मोती और प्रवाल भस्म सर्वोत्तम है।

प्राचीन काल में हमारे देश में रस-भस्मों का कितना प्रचार था, इसका पता इसी से चलता है कि प्राचीन संहिताओं में बालक के जनमते ही स्वर्ण-भस्म खिलाने का विधान किया गया है। इस प्रकार अनुभव तथा शास्त्र से रस-भस्मों की उपयोगिता निर्विवाद है। लेकिन गुणहीन, अशुद्ध, कच्ची भस्मों से लाभ के बदले हानि ही होती है और रंगरूप से भस्मों का पहचानना प्रायः असम्भव ही है। इसलिए रस-भस्म खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस कारखाने की रस-भस्म आप खरीद रहे हैं, वह पूर्ण विश्वासी या नहीं ?

श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० आज ३५ वर्षों से आयुर्वेदीय दवायें—जैसे रस-रसायन, भस्म, चूर्ण, अवलेह, गुटिका, तैल, घृत आदि का निर्माण कर सम्पूर्ण भारत में अपनी चार निर्माणशालाएँ, ५५ बिक्री केन्द्रों तथा १५ हजार ऊपर एजेंट्सियों द्वारा एक ही मूल्य में बिक्री कर रहा है। अतः आप रस-भस्म खरीदते समय वैद्यनाथ-रस-भस्म ही खरीदकर व्यवहार करें।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर ।

दो बहुमूल्य सम्मतियाँ

ता० ६-१-५३ तथा २८-१-५३ को श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के झाँसी निर्माण केन्द्र में निम्न लिखित दो विशिष्ट महापुरुषों का पदार्पण हुआ था, आपलोगों ने भवन की औपधनिर्माणादि व्यवस्था देखकर जो अमूल्य शुभ-सम्पत्ति प्रकट की उसे हू-ब-हू उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया जाता है—

श्रीमन्निखिल महामण्डलाचार्य चक्रचूड़ामणि सर्वतंत्र स्वतन्त्र भगवत् श्री निम्बार्कपादपीठाधीश्वर-अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री निम्बार्कचार्य श्री श्री जी श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्यपादानां (कृष्णगढ़) राजस्थान मण्डलान्तर्गत श्री परशुरामपुरी सलेमाबादस्थ श्री निम्बार्कचार्य पीठ विराजमानानां—

शुभ सम्पत्ति :—

अखिल ब्रह्माण्ड नायक सर्वाधार सर्वनियन्तुर्भगवत् श्री सर्वेश्वरस्यानुकम्पयाऽद्य झाँसी नगर यात्रावसरेऽत्रत्य श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन समागत्य निर्माणशालां सुयोग्य वैद्यैः प्राचीन भारतीयार्थ पद्धत्या-औषध निर्माण प्रक्रियां तत्र शुद्धतां प्रामाणिकतां च निरीक्ष्य परमा प्रसन्नता समासादिताऽस्माभिः ।

अद्याऽस्माकं भारते परमावश्यकता ऽस्ते इदृश्याः संस्थायाः यदाकिल पाश्चात्य चिकित्सा प्रचारेणार्थ-चिकित्सा-पद्धतेर्लोपप्राय इव लोकलोचन गोचरायते ।

संस्थायाः अस्याः वनस्पतिशोधनः गुणधर्मनिर्णयः आयुर्वेद विषयान्वेषण तत्सम्बन्धि साहित्य प्रकाशनादि कार्याणां अल्पकालैः प्रगतिरपि प्रशंसनीया । झाँसी-पटना-नागपुरादि नगरेषु धर्मार्थ दातव्यौषधालयात् सेवायाम् कस्तूरवा चिकित्सालय स्थापनादि कार्यं निशम्य परमः प्रमोदोजातः ।

आयुर्वेद विद्यालय संचालन, छात्रवृत्ति वितरण, वापी-कूप-तड़ागादि खननं निःशुल्कौषधि वितरणादि सेवया संस्थेयं निःसंशयं लोकोपकारिणीतिमत्वाभगवन्तं श्री सर्वेश्वरं प्रार्थयामो वयं, यदेतत्संस्थापकस्य श्री रामनारायण शर्मणः राजस्थानीय चिकित्सकरत्नस्य च लोकोप कारिणीदृशी प्रवृत्तिरनिशं समेधताम् ।

संस्था चेयमायुर्वेदोक्त लोकसेवायां विश्वव्यापकतां समाप्नुयादिति भृशं मदीया शुभ कामना ।

फाल्गुन कृष्ण १० सोमवार
वि० सं० २००६

श्री चरणों की आज्ञा से

वियोगी विश्वेश्वर

प्रधान व्यवस्थापक श्री निम्बार्कचार्य पीठ
परशुरामपुरी सलेमाबाद (कृष्णगढ़) राजस्थान

× × × × × ×

श्रीयुत् माननीय दान बहादुर सिंह जी उद्योग तथा वन-मन्त्री विन्ध्य प्रदेश की

शुभ सम्पत्ति—

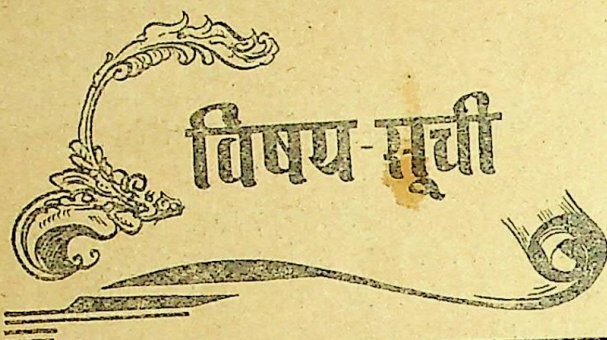
आज मैंने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० (फार्मसी) झाँसी का निरीक्षण किया । आयुर्वेदिक पद्धति से उत्तमतया और विशेष निरीक्षण के साथ यहाँ औषधियाँ तैयार की जाती हैं । प्रोप्राइटर महाशय बड़े सज्जन और कर्मनिष्ठ हैं; उन्होंने अपनी सारी फार्मसी का भली-भाँति सारे विधान और निर्माण क्रमों का दिग्दर्शन कराया । भारत को ऐसी उपयोगी फार्मसियों की विशेष आवश्यकता है । मैं इस औषधालय की सफलता की कामना करता हूँ ।

ता० २८-१-५३

ह० दान बहादुर सिंह

सम्पादक-मण्डल

निर्देशक—आ० म० म० पं० भागीरथ स्वामी, रसायनाचार्य
 प्रधान सम्पादक—पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री
 सहायक सम्पादक—वैद्य सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री



विषय	लेखक	पृष्ठ
नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद् का निमन्त्रण	...	...
स्वर्णपदक पुरस्कार प्रतियोगिता में निबन्ध भिजवाने में वृद्धि	...	...
श्री आचार्य यादवाभिनन्दन कोष	...	...
जड़ पर ही कुठाराघात	...	...
रक्तार्श में अरिष्टक योग	...	...
निदान चिकित्सा हस्तामलक	...	...
आयुर्वेद में दूध का आसुरी प्रयोग	...	...
ग्रंथ: उनका निदान, लक्षण तथा चिकित्सा	...	...
मृदूक्षण जन्य पाण्डु रोग	...	...
शीत ऋतु का सर्वोत्तम फल-आंवला	...	...
हृदय-शूल	...	...
पुनर्नवादि मण्डूर	...	...
स्वास्थ्य-सूक्तियाँ	...	...
स्वास्थ्य और वायु	...	...
आँखों की रक्षा कैसे करें	...	...
हमारे राष्ट्र-जीवन का ह्रास	...	...
बच्चों का भोजन	...	...
पंच वर्षीय योजना आयोग और आयुर्वेद	...	...
मधुमेह	...	...
वंशलोचन ही तुगाक्षीरी है	...	...
मांसाहार और आयुर्वेद	...	...
अप्राकृतिक जन्म-निरोध	...	...
आयुर्वेद जगत्	...	...
	(सम्पादकीय)	...
	वैद्य रणजित राय	...
	वैद्य रणजित राय	...
	श्री लक्ष्मण सीताराम खेर	...
	वैद्य छगनलाल रायजी	...
	वैद्य प्रभुभाई	...
	वैद्य मोहनलाल शर्मा चतुर्वेदी, आयुर्वेदाचार्य	...
	क. गौरीशंकर श्रीवास्तव, साहित्यमहोपाध्याय	...
	वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेद विशारद	...
	वैद्य रामलखन मिश्र	...
	डॉ० कुलरंजन मुखर्जी	...
	श्री विष्णुदत्त पुरोहित	...
	श्री तोष	...
	डा० शंकरलाल भेड़ा, एम० बी० बी० एस०	...
	वैद्य रघुनन्दन प्रसाद मिश्र, आयुर्वेदाचार्य	...
	वैद्य खेमराज शर्मा छांगानी	...
	सुश्री विमला देवी	...

८६६ से ८८३

गत मा

वार्षिक मूल्य ४)

विशेषांक—स्वास्थ्य-अंक ३)

साधारण अंक-एक प्रति 1/-)

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०—बिक्रीकेन्द्र-ग्वालियर



गत माह ग्वालियर-नुमाइश में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्रीकेन्द्र-ग्वालियर की दुकान गयी थी, उसीका एक दृश्य है।

आ० ज



वर्ष

वर्माननीय

नि

ने सुप्रसिद्ध

गायर्वेद-वि

निर्णय व

अवरुद्ध

अ

म्मिलित

ने का अ

जि

मज्ञेगी उ

सवासस्थान

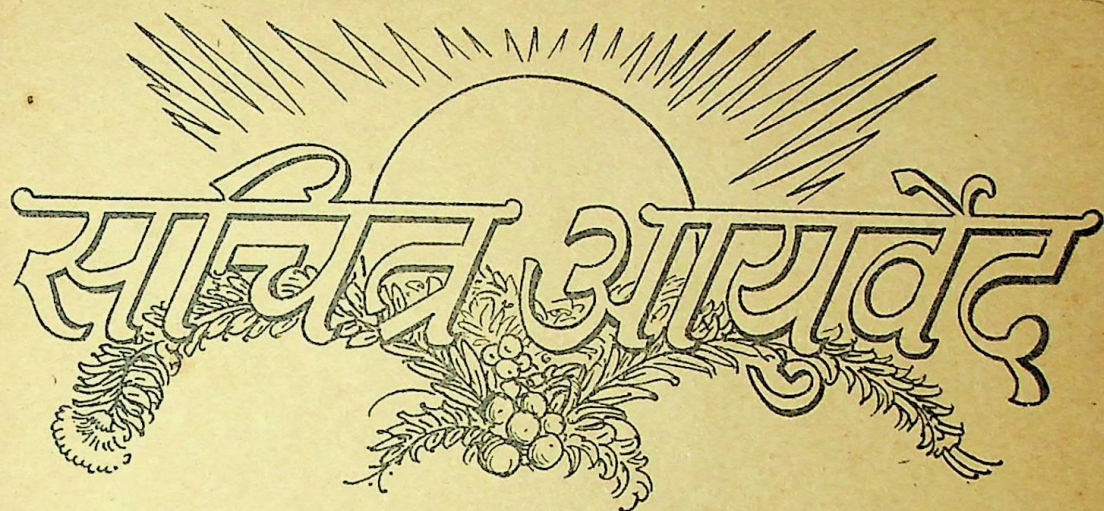
पयेगा ।

ोजन-व्यव

प्रवहार

ॐ श्री धन्वन्तरये नमः ॐ

आ० जगत् में सर्वजन समादृत, सर्वाधिक बिक्री होनेवाला, आ० विज्ञान का प्रमुख



आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ५

कलकत्ता, मार्च, १९५३

अंक ६

नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद् का निमन्त्रण

सम्माननीय वैद्यबन्धु वर्ग !

निखिल भारतीय-आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद् का आगामी अधिवेशन २० मई, १९५३ से भारत के सुप्रसिद्ध नगर हरद्वार में प्रारम्भ होना निश्चित हुआ है। इस अधिवेशन में समस्त भारत के प्रसिद्ध आयुर्वेद-विशेषज्ञ सम्मिलित होकर समालोच्य विषय 'द्रव्य के रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव के निर्णय का स्वरूप क्या है?' पर विवेचनपूर्वक समुचित निर्णय करेंगे। जिससे कि सदियों से अवरुद्ध आयुर्वेद विज्ञान की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा।

अतः सभी आयुर्वेद-विशेषज्ञों से सानुरोध वित्त निवेदन है कि इस महत्त्वपूर्ण अधिवेशन में सम्मिलित होकर आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति के निमित्त किये जाने वाले इस पुनीत ज्ञान-यज्ञ में योगदान देने का अनुग्रह करें।

जिन आयुर्वेद-विशेषज्ञों के निबन्धों को समालोच्य विषय निबन्ध-निर्णायक-समिति विवेचन योग्य मझेगी उन महानुभावों की सेवा में परिषद् की ओर से विशेष निमन्त्रण पत्र भेजा जाएगा तथा उनके निवासस्थान और भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के द्रव्य-व्यय से किया जायेगा। अन्य जो महानुभाव दर्शक रूप में सम्मिलित होना चाहें वे अपने खर्च से निवास स्थान और भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध करा सकते हैं। इस विषय में अध्यक्ष—प्रबन्ध नियोजन समिति से पत्र व्यवहार कर उचित व्यवस्था की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

वित्त-निवेदक—

वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री

अध्यक्ष—प्रबन्ध नियोजन समिति—नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद्

C/o श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

गुसाईं पुरा, झांसी (उ० प्र०)

नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्र-चर्चा-परिषद्

स्वर्णपदक पुरस्कार प्रतियोगिता में निबन्ध भिजवाने के समय में वृद्धि

“सचित्र आयुर्वेद” के गतांक में प्रकाशित विज्ञप्ति के अनुसार नि० भा० आयुर्वेद शास्त्रचर्चा-परिषद् के आगामी अधिवेशन में समालोच्य विषय ‘द्रव्य के रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव के निर्णय व स्वरूप क्या है?’ पर प्राप्त निबन्धों के संग्रह-ग्रन्थ का प्रकाशन २८ फरवरी से प्रारंभ हो गया है। यद्यपि स्वर्णपदक पुरस्कार प्रतियोगिता में निबन्ध भिजवाने का समय २८ फरवरी तक था, परन्तु कुछ आयुर्वेद-विशेषज्ञों के पत्र हमें प्राप्त हुए हैं, जिनमें विषय की गम्भीरता के कारण उनके निबन्धों को १५ मार्च तक पुरस्कार प्रतियोगिता में सम्मिलित करने का आग्रह किया है। हम उन महानुभावों के आग्रह को स्वीकार करते हुए विनम्र-निवेदन करते हैं कि वे १५ मार्च तक अपने निबन्धों को अवश्य भिजवा देने का अनुग्रह करें।

आशा है, समस्त वैद्य समाज समय वृद्धि के इस स्वर्णविसर से लाभ उठाएगा। इसके पश्चात् कि भी दशा में समय वृद्धि सम्भव नहीं है, क्योंकि ग्रन्थ को शीघ्र ही छपवाकर जिन महानुभावों के निबन्ध इस सम्मिलित किये जाएँगे उन सभी महानुभावों की सेवा में ग्रन्थ की दो-दो प्रतियाँ विषय के विचारार्थ विमूल्य लिये (फ्री) भेजी जाएँगी ताकि वे लोग समालोच्य विषय पर समुचित विचार कर सकें। गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय के विवेचन में उत्तम सहयोग के रूप में हम उन महानुभावों की सेवा में द्रव्य गुण शास्त्र के विशेषज्ञ आयुर्वेद मार्तण्ड पूज्यपाद महर्षिकल्प आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी आयुर्वेद वाचस्पति द्वारा लिखित **द्रव्यगुणविज्ञान पूर्वार्द्ध** नामक ग्रन्थ की एक-एक प्रति उपहार स्वरूप भेजेंगे। इस ग्रन्थ में चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद-शास्त्र के आर्ष और प्रमाणित ग्रन्थों बहुत उत्तमता पूर्वक द्रव्य के रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव आदि को पृथक्-पृथक् अध्यायों में संग्रहित करके उन पर अतीव उत्तम विवेचन किया गया है। समालोच्य विषय के निर्णय करने में आयुर्वेद विशेषज्ञों को इससे बड़ी सहायता प्राप्त होगी और वे पूर्ण तैयारी करके परिषद् के अधिवेशन में सम्मिलित होंगे।

नि० भा० आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद् का अधिवेशन २० मई से हरद्वार में प्रारम्भ होगा।

निवेदक—

वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शा
अध्यक्ष—प्रबन्ध नियोजन समिति नि० भा० आ० शास्त्र चर्चा परिषद्

C/o श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
गुसाईं पुरा, झाँसी (उत्तर प्रदेश)

—:०:—

सचित्र आयुर्वेद द्वारा स्थापित श्री आचार्य यादवाभिनन्दन

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० तथा झाँसी शाखा के कार्यकर्तागण, विक्री-केन्द्रों एवं सोल एजेण्टों द्वारा आयुर्वेद-राष्ट्रपिता पूज्यपाद आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी आयुर्वेद वाचस्पति आयुर्वेद मार्तण्ड के अभिनन्दन समारोह पर भेंट की जानेवाली (१०००००) की थैली में उत्साह पूर्वक धनदान :—

“सचित्र आयुर्वेद” के गतांक में प्रकाशित आयुर्वेद राष्ट्रपिता पूज्यपाद आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी आयुर्वेद वाचस्पति आयुर्वेद मार्तण्ड की सेवा में अभिनन्दन ग्रन्थ तथा (१०००००) एक लाख रु० की थैली समर्पण के आयोजन की विज्ञप्ति का आयुर्वेद-जगत् में सर्वत्र सहर्ष स्वागत हुआ है। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० तथा उसकी झाँसी (उ० प्र०) शाखा के कार्यकर्ताओं, विक्री-केन्द्रों के अध्यक्षों तथा व्यवस्थापकों एवं सोल एजेण्टों ने इस पुनीत कार्य में सर्व प्रथम धनदान देकर अपूर्व उत्साह का परिचय दिया है। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की अन्य शाखाओं (कलकत्ता, पटना, नागपुर आदि) के कार्यकर्ताओं, विक्री-केन्द्रों के व्यवस्थापकों एवं सोल एजेण्टों से भी इसी प्रकार धनदान प्राप्त होने की आशा है।

इसके अलावा हमारे बहुत से परिचित मित्रों एवं आयुर्वेदोपासकों ने भी पत्र भेजकर इस पुनीत कार्य में द्रव्यदान देने की इच्छा प्रकट की है। हम उन सभी महानुभावों से उनके पूज्यपाद आचार्य जी तथा आयुर्वेद के प्रति इस प्रकार की अद्भुत निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हुए विनम्र निवेदन करते हैं, कि वे लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार यथा शक्ति धनराशि को ‘सचित्र आयुर्वेद’ के द्वारा स्थापित, आचार्य यादवाभिनन्दन कोष में जमा कराने का अनुग्रह करें।

‘सचित्र आयुर्वेद’ द्वारा स्थापित “आचार्य यादवाभिनन्दन कोष” में धन जमा कराने वाले—

महानुभावों की नामावलि :—

- ५००१) श्री वैद्यराज पं० रामदयाल जी रामनारायण जी शर्मा वैद्य शास्त्री, अध्यक्ष :—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० से प्राप्त।
- श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०—झाँसी शाखा के कार्यकर्ता गण से—
- ५१) श्रीयुत् पं० मंगल दत्त जी शास्त्री बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, प्र० व्यवस्थापक विक्री-केन्द्र विभाग श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, झाँसी।
- ५१) श्रीयुत् बाबू रामप्रकाशजी अग्रवाल, मैनेजर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०।
- ५१) श्रीयुत् वैद्य पं० मोहन लाल जी चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य प्रधान वैद्य श्री वैद्यनाथ आ० भ० लि०, झाँसी।
- २५) श्रीयुत् वैद्य पं० मन्नालालजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, प्रधान वैद्य धर्मार्थ चिकित्सालय श्री वै० आ० भ० लि०, झाँसी।
- १५) श्रीयुत् वैद्य पं० रामगोपालजी शर्मा वैद्य विशारद सहायक वैद्य श्री वै० आ० भ० लि०, झाँसी
- ११) श्रीयुत् वैद्य पं० वजरंग लाल जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य “ “ “ “ “ “
- ११) श्रीयुत् वैद्य केशव प्रसाद शर्मा B. I. M. S., उपवैद्य धर्मार्थ चिकित्सालय “ “ “ “ “ “
- ११) श्रीयुत् भवानी प्रसाद B. I. M. S., “ “ “ “ “ “ “ “ “ “ “ “

सम्पादक

- ही अंग्रेजों
 संवर्द्धन के
 और देश
 में पहुँचा
 जिसके प
 स्वास्थ्य त

- 'भोजन-सा'
 'अपेक्षा उ'
 'शिक्षित'
 'पहुँच गया'
 'शिक्षित'
 'अशिक्षित'
 'कते हैं'

रदि कुछ

इंग्रेज सर

- ती थी सो,
सी सो,
गर ने ड
गे कि न
गी हमार
हीं। व
र जबर्दस्
नन्त का
ए वह
मझ क

बि ह, ज
: और पि

पनाए हु

अब

इतनी

सम्पादकीय

जड़ पर ही कुठाराघात

भारतीय जनता के स्वास्थ्य की जड़ पर ही अंग्रेज ने कुठाराघात कर दिया था। स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए पृथक् विभाग स्थापित करके और देश के करोड़ों रुपये दिमागदारों की जेबों में पहुँचा कर भी देश रोगी कर दिया गया। जिसके पास दिमाग नहीं, उसका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक है—किसान-मजदूर आदि समुचित भोजन-सामग्री न पाकर भी शिक्षित वर्ग की अपेक्षा अधिक स्वस्थ दिखाई देते हैं। परन्तु 'शिक्षित' जनो का स्वास्थ्य दयनीय स्थिति में पहुँच गया है। एक पहिए से गाड़ी चलेगी नहीं! 'शिक्षित' जन अस्वस्थ हैं, तो वे क्या करेंगे? अशिक्षित जन स्वस्थ होने पर भी विशेष क्या कर सकते हैं? और, देश के इतने शिक्षित जनो में यदि कुछ अच्छे स्वास्थ्य के निकल भी आए, तो अंग्रेज सरकार उन्हें अपनी उत्तम 'सर्विस' में ले लेती थी। शेष सब कूड़ा-कचरा पड़ा रहे।

सो, सब कुछ सोच समझ कर ही अंग्रेज सरकार ने इस देश में शिक्षा की ऐसी व्यवस्था की कि न केवल शारीरिक ही, मानसिक स्वास्थ्य भी हमारा नष्ट हो गया। परन्तु दुःख उसका ही। वह तो विदेशी शत्रु था, जो हमारे सिर पर जबर्दस्ती लदा हुआ था। उसे इस देश पर अनन्त काल तक राज करने की इच्छा थी। इसी-लिए वह हमें अंगण रखना चाहता था और सोच-समझ कर वैसी व्यवस्था की थी। दुःख तो यह है, जब हम स्वतंत्र हैं, हमारी अपनी सरकार और फिर भी हम उसी शत्रु-कृत व्यवस्था को अपनाए हुए हैं!

अब प्रश्न यह उठेगा कि शिक्षा-संस्थाओं में इतनी अधिक स्वास्थ्य की शिक्षा दी जाती है

कि कोई कसर रह नहीं जाती। और फिर भी छात्र-छात्राओं का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिर रहा है, तो इसमें उस (शिक्षा विभाग) का क्या दोष? यह दोष तो माता-पिता का होगा या और किसी का होगा! सभी गलतियों की जिम्मेदारी सरकार पर डालना ठीक नहीं है! ऐसी बात कही भी जाती है।

परन्तु आप देखें, हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं, खाने के और। शिक्षा-विभाग सिखाता कुछ और है, कराता कुछ और है। कुछ नमूने लीजिए—

१—शिक्षा-विभाग में स्वास्थ्य की शिक्षा दी जाती है—'देखो बच्चो' बिना भूख लगे कुछ खाना न चाहिए। परन्तु शिक्षा का समय है दिन के १० से ३॥ या चार बजे तक। बच्चे साढ़े आठ बजे भोजन करने न बैठें, तो स्कूल-कालेज पहुँच न पाएँ! बिना भूख ही कुछ पेट में जल्दी-जल्दी डालना पड़ता है! जब दुपहर को भूख लगती है, तब खाना नहीं! कुछ मिला भी तो चाट-पकौड़े, अंटसंट चीजें! जिनके पास पैसे वैसे नहीं, वे सुखते रहते हैं। चार-साढ़े चार बजे घर आए, तो दुपहर की बची-बचाई रुखी-सूखी रोटियाँ पेट में डाल ली। रात तक ठहरने का अवकाश नहीं, जब ताजा भोजन तैयार होता है।

२—सिखाया जाता है कि भोजन खूब चबा-चबा कर निश्चिन्त हो कर करना चाहिए।

परन्तु सबेरे स्कूल जाने की चिन्ता तेज रहती है और उसी चिन्ता में बच्चे जल्दी-जल्दी उलटे-सीधे कौर निगल लेते हैं।

३—पढ़ाया जाता है, भोजन करके दौड़ना

न चाहिए। परन्तु घर से स्कूल दूर है। बच्चों को दौड़ना पड़ता है।

४—समझाया जाता है कि भोजन करने के अनन्तर प्रायः दो घंटे कोई दिमागी काम न करना चाहिए। परन्तु भोजन करने के अनन्तर तुरन्त बच्चों को दिमागी काम करना पड़ता है।

इस तरह सब स्वास्थ्य-शिक्षा उलट जाती है! शारीरिक स्वास्थ्य तो जाता ही है; साथ ही बच्चों के दिमाग पर यह प्रभाव पड़ता है कि पढ़ी-लिखी बातें जीवन में उतारने की नहीं, पढ़ने भर की होती है! तब उनके ऊपर किसी भी नैतिक शिक्षा का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। साक्षात् मनु या महात्मा गान्धी आकर उन्हें कोई अच्छी सदाचार की बात बताएँ, तो ये मजे से सुन लेंगे और उसके बाद एकदम उस शिक्षा से विपरीत जाएँगे! सीखा ही यह है! ये ही छात्र-छात्राएँ भावी राष्ट्र हैं। सो, हमारी जड़ पर ही कुठाराघात हो रहा है।

बच्चों के स्वास्थ्य-सुधार के लिए बहुत जरूरी है कि स्कूल-कालेजों का समय सभी ऋतुओं में प्रातः ७ से ११ बजे तक रहे।

चार घंटे शिक्षा के लिए बहुत हैं। १० से ३॥ बजे तक स्कूल-कालेज रहते हैं, तब भी शिक्षा चार ही घंटे होती है। प्रत्येक अध्यापक के और प्रत्येक छात्र के एक-दो 'पीरियड' रोज खाली रहते हैं और बीच में कुछ छुट्टी भी रहती है। यों प्रायः दो घंटे चले जाते हैं। ७ से ११ बजे तक शिक्षा का समय होने पर कोई 'पीरियड' खाली रखने की जरूरत नहीं, न बीच में छुट्टी करने की जरूरत। प्रातःकाल उठने की आदत छात्रों की पड़ जाएगी। रात में ठीक समय पर सोएँगे; क्योंकि सवेरे जल्दी उठना है। इस तरह सिनेमावांजी और लफंगपन भी

दूर होगा, जिसने सर्वनाश की ओर छात्रों को बहुत ज्यादा बढ़ाया है।

यदि देश के राष्ट्रीय समाचार-पत्र तथा शिक्षा-संगठन जोर से यह आवाज उठाएँ, तो सम्भव है, सरकार सुन ले कभी!

उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्यमन्त्री का अध्यादेश

उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री महोदय ने एक अध्यादेश निकाल कर आयुर्वेद तथा यूनानी के स्नातकों को सल्फाड्रग, स्ट्रेप्टोमाइसिन, सर्जरी आदि करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। इस अध्यादेश से उत्तर प्रदेश के आयुर्वेदीय कॉलेज के स्नातकों में काफी असन्तोष फैला हुआ है। मेरे विचार से प्रथम तो स्वास्थ्य मन्त्री जी को ही इसपर पूर्ण विचार कर प्रतिबन्ध लगाना था, क्योंकि आजकल कॉलेजों में जो पाठ्यक्रम चल रहे हैं। उनके निर्माणकर्त्ताओं में डाक्टरों की ही प्रधानता रहती है, अतः डाक्टरी विचार के ही पाठ्यक्रम तैयार होते और उन्हीं की शिक्षा दी जाती है। ऐसे स्नातक यदि डाक्टरी दवाओं के व्यवहार से वंचित किये जाते हैं, तो फिर उनके लिये उन्नति का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है। क्योंकि, जिस आशा से उन्होंने लगातार अहर्निश परिश्रम कर कॉलेजों की परीक्षा पास की उसपर सर्वथा पानी फिर जाता है। अतः प्रतिबन्ध लगाने से पूर्व आयुर्वेद का सुचारुरूप से अध्ययन की व्यवस्था करें। बाद में आयुर्वेद के स्नातकों पर इस तरह का प्रतिबन्ध लगावे तो ठीक है अन्यथा यह अनुचित ही कहा जायगा।

दूसरी बात आयुर्वेद के स्नातकों के सम्बन्ध में है, कि यदि आयुर्वेद के स्नातकवृन्द अपनी आयुर्वेदीय दवाइयों को छोड़कर स्ट्रेप्टोमाइसीन, पेनिसिलीन आदि एलोपैथी दवाओं पर ही अपना कार्य अवलम्बित करना चाहते हैं, तो यह एक अनुचित ही कहा जायगा। ऐसे स्नातकों का कर्त्तव्य हो जाता है, कि वे अपने शास्त्र में भी पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन आदि सदृश दवाओं का अनुसन्धानकर जनता को लाभान्वित करें। तभी वे आयुर्वेद के सच्चे स्नातक बन सकते हैं।

—सं सं

रक्तार्श में अरिष्टक-योग

वैद्य रणजितराय

‘सचित्र आयुर्वेद’ के गत-अङ्क में मैंने गुदगत वात के एक रोगी का वृत्तान्त दिया है। लेख के अन्त में मैंने लिखा है कि रोगी को गुदगत वात की लाक्षणिक चिकित्सा से शान्ति होने पर गुदमार्ग में अवरोध के हेतु भूत कफ-प्रधान रक्तार्श की चिकित्सा की जा रही है। अर्श में रक्त-स्राव पर नागकेशर आदि प्रसिद्ध कल्पों के अतिरिक्त मसी मिश्रण नामक एक अनति प्रसिद्ध कल्प दिया जा रहा है। इस लेख में इस कल्प का पाठ देकर विशेषतया नव्य मत से उसकी एवं तत्सम अन्य द्रव्यों की उपयोगिता दर्शाता हूँ।

प्रशंगवश लिख दूँ कि, उक्त कल्प के अतिरिक्त रोगी को प्रातः-सायं बन्दाल (देवदाली) का धूपन (धूनी) भी दिया जाता था। इससे अर्श के अंकुरों की विशालता पर्याप्त न्यून हो गयी। इसी बीच मैं हमें सूरत के अर्श और भगन्दर रोगों के आयुर्वेदिक चिकित्सक श्री छगन-लाल राय जी का सहयोग प्राप्त हुआ। उनके हाथ से अर्श के अंकुरों पर क्षार-कर्म कराया गया। रोगी को भगन्दर भी था। उस पर भी इन्हीं वैद्यराज द्वारा क्षार-सूत्र का बन्धन कराया गया। दोनों रोगों में रोगी को इस क्रिया से अच्छा लाभ है। इस वृत्तान्त के उल्लेख का हेतु यह है कि, अन्य वैद्य महानुभाव भी संभव हो तो इस क्रिया को हस्तगत कर अपने रोगियों पर प्रयोग करें तो जहाँ यश और द्रव्य का उपार्जन कर सकेंगे, वहाँ आयुर्वेद की एक प्राचीन परिपाटी का भी उद्धार करने में निमित्त बनेंगे। आयुर्वेदीय शिक्षणालयों से संबद्ध आतुरालयों में विद्यार्थियों को इस क्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाय तो वे, भविष्य में सर्जनों के यहाँ अपने रोगियों को न भेज; स्वयं ही उनका उपचार करते हुए अपने चिकित्सा-कर्म में विशेष स्वार्थ और परमार्थ सिद्ध कर सकेंगे। श्रीयुक्त वैद्य रायजी का क्षार-कर्म-विषयक एक लेख इसी अङ्क में दिया जा रहा है। उसका अधिक लाभ तो कर्म के प्रत्यक्ष से ही हो सकता है, यह कहना अनावश्यक है। अस्तु।

मसी-मिश्रण अरिष्टक या अरीठे का अल्पायास और

अल्प श्रमसाध्य योग है। हमारी ओर कहीं-कहीं प्रचलित है। अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन और विद्या-पीठ के जन्मदाता श्रीयुक्त पदे शास्त्री ने अपने ग्रन्थ आर्यभिक्षु में अरिष्टक के वर्णन में इसे दिया है। इससे अनुमान होता है, महाराष्ट्र में भी इसका प्रचार परम्परागत वैद्यों में होगा।

पदे जी ने रक्तार्श पर अरिष्टक के उपयोग की विधि यह लिखी है। अरिष्टक के फल की त्वचा का कोयला तथा श्वेत कत्था सम भाग ले चूर्ण कर एक रत्ती मात्रा में दो तोला मक्खन किंवा दूध की मलाई के साथ खाने को दें। सात दिन में रक्तस्राव बन्द हो जाता है। सात दिन नमक, खटाई, लाल मिर्च, गुड और तैल वर्ज्य कराएँ। यह औषध ६-६ मास पीछे तीन बार (अर्थात् औषध का क्रम १॥ वर्ष तक चलाएँ) लेने से अर्श के अंकुर झड़ भी जाते हैं।

अरिष्टक का कोयला (मसी) फलत्वक् को अन्तर्धूम दग्ध करके बनाते हैं। हमारी ओर इसमें सम भाग सितोपला (मिसरी) भी मिलते हैं। गुण-वृद्धि के लिए अनुपान तण्डुलोदक (चावल का धोवन) देते हैं। मात्रा—तीन-तीन रत्ती दिन में तीन बार देते हैं। जिन अंकुरों में प्रत्यक्ष बड़े-बड़े क्षत पड़े हों और उनमें रक्त की धारा जाती हो उनमें इससे लाभ होता है। यह कल्प अकेला भी कार्य करता है। आत्म-विश्वास न्यून हो तो नागकेशर और गोदन्ती भी मिला सकते हैं। गुणवृद्धि के लिए मसी-मिश्रण प्रति पुड़िया में ५-६ रत्ती तक दे सकते हैं। इससे कोई अवगुण नहीं होता।

आयुर्वेद में कई बार द्रव्यों के गुण-कर्म अति संक्षेप में लिखे होते हैं। निदान-चिकित्सा के प्रकरण में भी संप्राप्ति अति स्वल्प होती है। चिकित्सा में प्रयुज्यमान द्रव्य कैसे कर्म करता है, इसका उल्लेख भी बहुधा अल्प होता है। ऐसे कई प्रसंगों पर द्रव्यों के गुण-कर्म किंवा आयुर्वेदोक्त संप्राप्ति और चिकित्सा की व्याख्या नव्य मत से की जाय तो नव्यमताभिभूत व्यक्ति के लिए भी अच्छी विश्वासो-

त्पादक सिद्ध होती है। यह अरिष्टक-योग इस बात का उत्तम उदाहरण है। निघण्टुओं में अरिष्टक को तीक्ष्णोष्ण लिखा है। इससे यह रक्ताश में विपरीत-सा प्रतीत होता है; परन्तु व्यवहार में इसका प्रयोग गुणकारी होने से इसे तदर्थकारी द्रव्य का एक प्रकार कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। आयुर्वेद में रक्ताश की चिकित्सा में अन्य भी कई द्रव्य ऐसे ही लिखे हैं जो स्पष्ट ही तीक्ष्णोष्ण हैं, तथापि रक्ताश में उनका सुबहु व्यवहार और गुणवत्ता प्रसिद्ध है। भल्लातक, चित्रक, पलाण्डु, वन्य सूरण (जिमी कन्द), तण्डुलीयक-मूल (चौलाई की जड़) के साथ काली मिर्च का ठंडाई के समान उपयोग, एवं मूली के पत्ते* ऐसे द्रव्यों के उदाहरण के रूप में गिनाये जा सकते हैं। इनके विविध कल्प सुविदित होने से उनका विचार यहाँ नहीं किया जायगा।

प्राचीनों ने प्रत्यक्ष दर्शन (ऑब्जर्वेशन) से इन द्रव्यों को अश में गुणकारी पाया था। नव्यमत से इनकी गुणवत्ता की प्रतीति होती है। नव्य मतानुसार अश की संप्राप्ति यह है कि किसी कारण यकृत में अवरोध होने से अशके अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं। उदर का नील (मलिन) रक्त सब का सब प्रथम यकृत में आता है। यकृत में उसका प्रसादन (रञ्जन; निर्विषी करण डीऑक्सि-केशन) हो कर वह अन्य स्रोतों से हृदय में जाता है। यकृत में अवरोध (स्रोतो-विबन्ध) हो तो यह रक्त पूर्णतया यकृत में जा नहीं सकता—परिणामतया सिराओं में ही संचित हो जाता है। गुदगत सिराओं में इसका संचय होने से वे फूल जाती हैं। तत्-तत् कारण से इनसे रक्त का क्षरण हो तो ये अङ्कुर रक्ताश कहते हैं। सो, इस संप्राप्ति के अनुसार यकृत के विबन्ध का भेदन कर दिया जाय तो रक्त तथा शुष्क अश शान्त हो जाते हैं। उल्लिखित तीक्ष्णोष्ण द्रव्य अपने इन गुणों के कारण यकृत के स्रोतों का बन्ध तोड़ कर उन्हें विशद करते हैं और रस-रक्त के संचय को दूर करते हैं। सो, आपाततः रक्ताश में विरुद्ध होते हुए भी

* रक्ताश में अन्य औषधों का उपयोग न करें, केवल मूली के पत्तों का उपयोग कराएँ तो भी लाभ होता देखा गया है। ये पत्ते यकृत में हुए विबन्ध का भेदन कर अश के अङ्कुरों को संकुचित करते हैं। यकृत पर इनकी इस क्रिया के कारण ही कामला में भी इनसे लाभ होता है, जिस का प्रयोग प्रायः वैद्य कराते हैं।

अपने अशोष्ण गुण के कारण इस रोग में उपयोगी सिद्ध होते हैं और तदर्थकारी उपशय की श्रेणी में आते हैं।

डॉ० वामन गणेश देशाई बी० एस० सी० (ग्रॉस-सुंबई), एम० बी० (लन्दन) ने अपने औषध-संग्रह में भल्लातक आदि द्रव्यों के प्रकरण में उन की अशोष्ण क्रिया की इस दृष्टि से विशद व्याख्या की है। अपनी ओर से कुछ न कह कर उन्हीं का मत उद्धृत करता हूँ। अन्य तीक्ष्णोष्ण द्रव्यों की क्रिया भी अशों पर इसी प्रकार होती है, इसकी कल्पना इसके आधार पर कर लेनी चाहिए। —“महास्रोत के आमाशय और उत्तरगुद इन भागों पर भल्लातक की क्रिया विशेष होती है। यकृत पर इस की बलवान् उत्तेजक क्रिया होती है और इससे पित्तत्वाव ठीक होता है। इससे यकृत का रस-रक्ताभिसरण और धातुपाक क्रिया ठीक और अच्छी तरह होती है। इस कारण उत्तर गुद पर रक्त का दबाव कम होता है। गुदकी फूली हुई सिराएँ (अश) संकुचित होती हैं और गुदवली को बल मिलने से मल-संचय नहीं होने पाता। भल्लातक से भूख खूब लगती है और मल पीत वर्ण का साफ होता है।”

भल्लातक के गुण वर्णन में चरक ने लिखा है कि कोई विबन्ध ऐसा नहीं जो भल्लातक के सेवन से नष्ट न होता हो। देखिये :—

कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन।

यं न भल्लातकं हन्यात् शीघ्रं मेधाग्निवर्धनम् ॥

च० चि० १, पाद ३, श्लोक १६

चित्रक के विषय में वही डॉक्टर लिखते हैं; “अल्प मात्रा में चित्रक से महास्रोत की कला का उद्दीपन (उत्तेजन) होता है और आमाशय तथा उत्तरगुद का रस-रक्त संवहन बढ़ कर उनको शक्ति मिलती है। इससे पेट में गरमी लगती है तथा पाचनक्रिया बढ़ती है। इससे यकृत उद्दीपित हो कर पित्त ठीक बहने लगता है। इस कारण चित्रक देने के बाद मल का वर्ण पीत होता है।”

सूरण के विषय में डॉ० देशाई लिखते हैं: “सूरण का शाक खाने से यकृत की क्रिया सुधरती है, मलशुद्धि अच्छी होती है और अशकी रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। इसलिए सूरण अश में लाभ पहुँचाता है।”

कृष्ण मरिच के प्रकरण में डॉ० देशाई ने लिखा है: “अजीर्ण और आध्मान में कृष्ण मरिच गुणकारी है।

उत्तर गुद पर इसकी क्रिया विशेष होती है। इसलिए इससे अर्श में लाभ होता है।" शार्ङ्गधर ने छेदन द्रव्य के लक्षण और उदाहरण देते हुए कृष्ण मरिच की भी गणना की है। देखिए:—

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्वलात् ।

छेदनं तद् यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥

शा० प्र० ख० अ० ४

श्लिष्टान् संचितान् ; परस्पर ग्रथितान् इत्येके ; अत्यर्थं कुपितान् इत्यपरे । कफादिकान् दोषान् ; आदि ग्रहणेन वात-पित्त-शोणित-कृमि ग्रहणम् क्षारा यवक्षारादयः, मरिचानि च बहुवचनेन श्वेत मरिचमपि ग्राह्यम् ।—

—आढमल्ल ।

श्लिष्टान् लग्नान् मलादिकान् दोषान्—काशीराम ।

नाम, जो द्रव्य शरीर में संचित, अत्यधिक कुपित, स्तब्ध (निकलने का नाम न लेनेवाले) और परस्पर ग्रथित कफ, वात, पित्त, रक्त, मल और कृमि को बलपूर्वक निकाल कर उन्हें निर्मूल करता है उसे छेदन या छेदनीय कहते हैं। यथा—यवक्षार आदि क्षार, कृष्ण अथवा श्वेत मरिच तथा शिलाजतु ।

सर्व शरीर के समान यकृत तथा गुदगत दोषों का भी छेदन मरिच से होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

पलाण्डु (प्याज) का उपयोग रक्तार्श में रक्त-लाव को रोकने के लिए वैद्य प्रायः नहीं करते । इसके प्रयोग में हमारी प्रवृत्ति हो, इस हेतु एतद्विषयक अनेकों में एक चरक वचन नीचे देता है :

रस-खड-यूष-यवागू संयोगतः केवलोऽथवा जयति ।

रक्तमति वर्तमानं वातं च पलाण्डुः पयुक्तः ॥

च० चि० १४।२०८

पलाण्डु अकेला किंवा रस (मांस-रस), खड (खल), यूष या यवागू के साथ सेवन करने से अत्यन्त प्रवृत्त रक्त तथा वात रोग शान्त होते हैं* ।

* नवीन विद्यार्थियों के समझने में सरलता हो इस हेतु यूष, रस आदि का तुलनात्मक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है । विस्तार से वैद्य वाचस्पति तथा वैद्य यादवजी त्रिकम जी आचार्य कृत् द्रव्य गुण विज्ञान उत्तरार्द्ध, प्रथम पृष्ठ में देखें ।

जैसा कि प्रसिद्ध है, औषध-द्रव्यों का जलके साथ अग्नि पर सिद्ध कल्प क्वाथ कहाता है । औषधों के स्थान पर

शूकधान्यों का (चावल, जौ, आदि, जो सिद्धे में लगते हैं उनकी) जल के साथ क्वाथ विधि से कल्पना बनाने से जो कल्प बनते हैं, उनके अर्श के प्रमाण भेद से अनेक भेद होते हैं । तथाहि : धान्य अत्यल्प हो और क्वाथ के अनन्तर उसे छान कर केवल द्रवांश लिया जाय तो इस कल्प को मण्ड (पानी, गुजराती—ओसामण) कहते हैं । जौ का पानी (वार्ली बॉटर) इसका अच्छा उदाहरण है । इसी कल्प में धान्य कुछ अधिक हो और उसे छाना न जाय तो इसे पेया (मराठी—पेज, गुजराती—राव या कांजो) कहते हैं । यह पी जा सकती है अतः इसे पेया नाम दिया गया है । पेया थोड़ी गाढ़ी हो कि पात्र से लेते समय कछी या चमची में लगे—उसका लेप उनपर हो जाय—तो इसे इसी कारण विलेपी कहते हैं । इन तीन भेदों का मिलित नाम यवागू है । कोई विलेपी से कुछ अधिक गाढ़े कल्प को, जिसमें शिम्बी धान्य भी मिलाया हो, यवागू कहते हैं । इसका प्रसिद्ध पर्याय खिचड़ी है ।

मण्ड बनाने में शूकधान्य के स्थान पर मुद्ग, मसूर मोठ आदि शिम्बीधान्य लिये जायें तो इस कल्प को यूष कहते हैं । इसी कल्प में धान्य के स्थान पर मांस किंवा यकृत का ग्रहण करें तो जो कल्पना बनती है उसे रस या मांसरस कहते हैं । इसका प्रसिद्ध पर्याय शोरबा या सूप है । इसी कल्प में मांस या औषध के स्थान पर फल (टमाटर आदि) डाले जायें तो इसे खड (या खल; ड, ल, र, का संस्कृत में अभेद होने से) कहते हैं । इसी कल्पना में औषधादि के स्थान पर मूल (मूली, गाजर आदि) डाले जायें तो इसे काम्बलिक कहते हैं । देखिये—

पिशितेन रसस्तत्र, यूषो धान्यैः, खलः फलैः ।

मूलैश्च तिलकल्काम्ल प्रायः काम्बलिकः स्मृतः ॥

—च० चि० ८।११७-१३३ पर चक्र धृत तन्त्रान्तर वचन

यूष, मण्ड तथा रस में लवण ; शूठी आदि कटु द्रव्य ; दही, अनार दाना आदि अम्ल द्रव्य तथा छींके (बघार) के लिए स्नेह की भी योजना की जाय तो इन्हें कृतयूष या कृतरस कहते हैं ; अन्यथा अकृतयूष या अकृत रस । इन्हीं कल्पनाओं में औषध द्रव्य और जल के अतिरिक्त क्षीर (दूध) भी डाला जाय तो इसे क्षीर पाक कहते हैं । इन कल्पनाओं की सिद्धि औषध द्रव्य, जल, क्षीर आदि द्रव्य तथा विशेष में घृत या तैल डाल कर की जाय तो इसे स्नेह या द्रव्य भेद से घृत या तैल पाक कहते हैं ।

(शेष टि० पृष्ठ ८१७ पर)

नामूलं लिख्यते किंचिच्चानपेक्षितमुच्यते

२७—छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तमलक

वैद्य रणजितराय

कृमिरोग^१

सूचना—प्राचीनोक्त सभी कृमियों के विषय में आज निश्चित नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यक्षोपलब्ध किस कृमि के लिए कौन नाम है। वैद्यों में संप्रति प्रचलित कृमि-भेद प्रायः नवीन मत के अनुसार ही है^२। आगे हम संहितानुसार कृमियों का विचार प्रस्तुत करते हैं।

१—देखिये—च. सू. १६।४; च. वि. ७।६-२८; सु. उ. ५४; अ. ह. नि. १४।४२-५६; अ. ह. चि. २०।१६-३५; भैषज्य रत्नावली।

२—सचित्र आयुर्वेद में कई स्थलों पर मैंने जताया है कि, निश्चित ही अपने काल में प्राचीन संहिताओं के स्वाध्याय का लोप हो जाने के कारण माधव ने कई प्राचीनोक्त रोगों का वर्णन नये ही नाम से किया है। जानो प्राचीनों ने उन रोगों का दर्शन ही नहीं किया था। ऐसे रोगों में एक अम्लपित्त है। इस नाम का निर्देश वृद्धत्रयी में नहीं है, केवल माधव में है। मैं समझता हूँ, यह वृद्धत्रयी का जीर्ण विदग्धाजीर्ण है। इसी प्रकार प्राचीनोक्त पैत्तिक शूल का उल्लेख करके भी परिणामशूल नाम से उसीका पुनः विवरण माधव ने दिया है। कदाचित् आमवात इस नाम से जिस रोग का विचार माधव ने किया है वह प्राचीनों का संधिवात हो। निर्णय सागर-मुद्रित माधव निदान में शीतला नाम से एक रोग दिया है। कई विद्वान् इसे आधुनिकों का चिकन पाँक्स (गुजराती-अछवड़ा) मानते हैं। संभवतः प्राचीनों ने मसूरिका की रसगत अवस्था किंवा विस्फोटक नाम से जो रोग वर्णन किया है वह चिकन पाँक्स हो। इस प्रसंग में स्मरण रहे, संहिता में रोमान्तिका को मसूरिका-भेद ही कहा है, भले नव्य मत से ये अत्यन्त भिन्न रोग हैं। ऐसी स्थिति में प्राचीनों ने

कृमियों के दो भेद हैं बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य मल से उत्पन्न होने वाले कृमियों को बाह्य या मलज कृमि कहते हैं। आभ्यन्तर नाम आमाशय आदि में होने वाले कृमियों के कारण भेद से तीन भेद हैं : पुरीषज, श्लेष्मज तथा रक्तज। चारों प्रकार के कृमि मिलकर कुल बीस भेद कृमियों के होते हैं। सहज कृमि : इन बीस से भिन्न है।

चिकन पाँक्स को भी मसूरिका में अन्तर्भूत कर उसका वर्णन कर दिया हो, इसमें विस्मय न मानना चाहिए। इस प्रसंग में यह चर्चा इस हेतु की कि, भाव तथा माधव ने स्नायुक (गिनी वर्म) नाम से जिस कृमि का उल्लेख किया है, वह संभवतः वृद्धत्रयी में लिखे अनेक अविदित कृमियों में एक हो। आशय यह कि, अनुसंधान-प्रिय विद्वानों को यथा संभव वृद्धत्रयी (अष्टाङ्ग हृदय के स्थान पर अष्टाङ्ग संग्रह) की ही स्वाध्याय-प्रवचन के लिए अपनाना चाहिए; माधव सदृश अर्वाचीन ग्रन्थों को नहीं।

माधव के विषय में एक अन्य आक्षेप भी है। और वह यह कि, इसमें विषय की पूर्णता नहीं हुई है। विषय की पूर्णता प्रायः चरक, सुश्रुत और संग्रह तीनों को समक्ष रखने से ही होती है। आयुर्वेद के अध्यापक इस वस्तु को अवश्य स्वीकार करेंगे। माधव ने सब मतों का संग्रह कर निज पद्य न रचते हुए चरक या सुश्रुत किसी एक से ही पद्य लिये हैं। अपरंच, गद्योक्त विषय तो छुआ ही नहीं है, भले उसमें विषय का विस्तार पद्य की अपेक्षा अधिक किया गया हो। विद्वज्जन विचार करें।

वृद्धत्रयी को प्रतिष्ठित करने का एक सुपरिणाम यह भी आया कि आज वैद्यों में आमवात-संधिवात-वातरक्त, अम्लपित्त-विदग्धाजीर्ण आदि रोगों के स्वरूप एवं नव्यमत से उसका समन्वय करने के विषय में जो विवाद चल रहा है, वह निःशेष हो जायगा।

कृमिरोग का निदान

अजीर्ण, अध्वशन, असात्म्य, विरुद्ध तथा मलिन^१ भोजन, अव्यायाम, दिवास्वप्न; अतिगुरु, स्निग्ध, मधुर तथा शीत भोजन, माष, पिष्टान्न, विदल (दाल), दूध, दही, अम्ल द्रव्य, गुड विकार, विभिन्नमांस^२, अति द्रव इनसे कफ-पित्त का प्रकोप होता है, जिससे विभिन्न आश्रयों वाले तथा विभिन्न आकृति के कृमि उत्पन्न होते हैं। इनमें कफज कृमि सामान्यतया आमाशय में, पुरीषज सामान्यतया पक्वाशय में तथा रक्तज सामान्यतया धमनियों में होते हैं।

बाह्य या मलज कृमि

यूका (जूं), लिखा (लिख) तथा पिपीलिका (चिऊँटी) बाह्य कृमि हैं। कारण—स्वच्छता का अभाव। स्थान—केश, श्मश्रु (दाड़ी-मूँछ), लोम (भग-प्रदेश, वृषण आदि के बाल), पक्ष्म (नेत्र-लोम), वस्त्र। आकृति—अणु (छोटे), तिलवत्, अनेक पैर। लक्षण—कोठ (शीतपित्त—जैसे मण्डल), पिडका, कण्डू, गण्ड (फोड़े)^३।

१—मलिन की व्याख्या नव्य मत से यह की जा सकती है कि कृमियों के अण्डों और बच्चों (Larva—लार्वा) से व्याप्त कृमिरोगी की विष्ठा पर मक्षिकाएँ बैठती हैं तो इनके पैरों पर ये चिपट जाते हैं। ये मक्षिकाएँ भोज्यान्न पर जा बैठें तो अन्न भी उनसे आक्रान्त हो जाता है। इसके भोक्ता के उदर में पहुँचने पर इन कृमियों की पुष्टि होती है। कृमिकोष्ठ माता अथवा अन्य व्यक्ति मलोत्सर्ग के अनन्तर हाथ सम्यक् स्वच्छ किये बिना शिशुओं के मुख पर अज्ञानतः लगावें तो इस प्रकार भी शिशुओं के मुख द्वारा कृमियों के अण्डों का अन्तः प्रवेश होता है। स्तन-न्धय (स्तन पुष्ट) शिशुओं में भी इस भाँति कृमिरोग होना संभव है। रोग-परीक्षा में इस तत्त्व पर ध्यान देना चाहिए। मधुर रस द्वारा कृमिरोग की यह नव्यमत से संप्राप्ति है।

२—नव्य प्रत्यक्षानुसार गोमांस से ब्रध्नकृमि (Tape Worm—टेप वर्म) का प्रसार होता है।

३—अतएव कोठ अथवा सर्वाङ्ग या एकाङ्ग में कण्डू की व्यथा (शिकायत) लेकर आये रोगी में यूका-लिखा की परीक्षा पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

आभ्यन्तर कृमियों के सामान्य लक्षण

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजात कृमि लक्षणम् ॥
हृल्लासमास्पृश्वणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाह कार्श्यश्चयथु पीनसान् ॥

ज्वर, विवर्णता (त्वचा का वर्ण फीका पड़ जाना), (उदर आदि में) शूल, हृद्रोग, अंगसाद, (शरीर शिथिल-स्फूर्तिरहित होना), भ्रम, अरुचि, अन्नद्वेष (अन्न के प्रति तिरस्कार की भावना), अजीर्ण, अतिसार, प्रसेक, मुख से कफ का स्राव, वमन, ज्वर, आनाह विबन्ध; (अतिसार या विबन्ध में कोई एक होना), कृशता (शोष, शरीर की क्षीणता), शोथ (मुख या सर्वाङ्ग पर सूजन; 'क्षवथु' पाठान्तर में छोंक), पीनस (प्रतिश्याय) ये आभ्यन्तर कृमियों के लक्षण हैं। विशेष कृमियों से होने वाले विशेष लक्षण अधोलिखित हैं।

रक्तज कृमियों के लक्षण

जिन कारणों से कुष्ठ उत्पन्न होते हैं उन्हीं से रक्तज कृमि भी उत्पन्न होते हैं इनका स्थान रक्तवाहिनी धमनियाँ हैं। आकृति—अणु, गोल, स्निग्ध, पैर न होना। कई कृमि सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य होते हैं^१; वर्ण—ताम्र (रक्त), कृष्ण। नाम—केशाद, लोमाद^२ लोमद्वीप, सोरस, औडुम्बर (उडुम्बर), जन्तुमाता (चरक); केशाद,

१—इन कृमियों की अदृश्यता, रक्तवाहिनी धमनियों में इनकी स्थिति तथा इनसे कुष्ठ की उत्पत्ति—इन लक्षणों से इनको नवीनों का रोगजनक जीवाणु माना जाता है। इस प्रकार कृमियों के दो भेद किये जाते हैं—अदृश्य कृमि नाम नवीनों के जीवाणु तथा दृश्य कृमि नाम नवीनों के वर्म (Worm)। इस विषय का विस्तार वेद, पुराण, महाभारत तथा आयुर्वेद के आधार पर लिखित निबन्धों में देखिये। जीवाणुओं का ज्ञान प्राचीनों को रहा होगा यह मानते हुए भी आयुर्वेद का मुख्य मत तो यही समझना चाहिए कि विषम हुए दोष तथा उनसे विकृति को प्राप्त हुए दूष्य (धातु तथा मल) ही जीवाणुओं के आश्रयदाता होने से चिकित्सा के अधिष्ठान हैं।

२—अद—खानेवाले।

लोमाद, नखाद, दन्ताद^१, किक्किश, परीसर्प (सुश्रुत)। इन कृमियों से होने वाले रोग—केश, श्मश्रु, नख, लोम और पक्ष्म इनका अपध्वंस, व्रण में इनका संपर्क होने पर हर्ष, कण्डू, तोद, संसर्पण; अति वृद्धि होने पर त्वचा, सिरा, स्नायु, मांस तथा तरुणास्थि का भक्षण किंवा अन्य शब्दों में कुष्ठ की उत्पत्ति।

कफज कृमि

क्षीर (दूध), गुड़ आदि मधुर भोजन^२, अजीर्ण, विभिन्न मांस, पूति (सड़ा-गला) भोजन आदि से ये होते हैं। स्थान—आमाशय। वृद्धि को प्राप्त होकर ये ऊपर, नीचे या दोनों ओर बढ़ते हैं। इनकी आकृति तथा वर्ण भिन्न-भिन्न प्रकार के (कुल तीन प्रकार के) होते हैं। यथा—कोई चौड़े, चपटे, ब्रध्न (चर्मलता, चमड़े की पट्टी) जैसे तथा श्वेत होते हैं^३; कोई गोल गण्डूपदाकृति, वर्ण में श्वेत तथा ताम्र आभासित होने-वाले^४; कोई अणु (पतले), दीर्घ, तन्तु या अंकुरित धान्य के आकार के और श्वेत^५ होते हैं। इनके नाम—

१—कृमिदन्त (Dental Caries—डेंटल केरीज) के कारणभूत कृमि यहाँ अभिप्रेत हैं।

२—कोष्ठ में कृमि विकार उत्पन्न किये बिना रहते हैं। मधुर भोजन से उनकी पुष्टि होकर विकार जनन सामर्थ्य होता है। हमारी ओर प्रसिद्धि है कि प्रत्येक पुरुष में कृमियों का कोष्ठ में विशेष स्थान होता है। वहाँ से ये चलित हों तभी रोग उत्पन्न होते हैं। अन्य संहिताओं में तो नहीं, परन्तु काश्यप-संहिता में आठ आशयों में एक कृमि-आशय गिनाया भी है।

३—प्राचीन नाम आज स्पष्ट न होने से ब्रध्न के साम्य से नये लेखकों ने नवीनों के टेप वर्म (Tape Worm) को ब्रध्न-कृमि नाम दिया है। आधुनिक प्रत्यक्षानुसार इस कृमि के चार-पाँच भेद हैं। विस्तार नवीन चिकित्सा ग्रन्थों में देखना चाहिए।

४—आकार में गण्डू पद के समान कृमियों (Round worm—राउण्ड वर्म; Ascaris Lumbricoides—एस्कारिस लम्ब्रिकॉयड्स) को नवीन लेखकों ने गण्डूपद-कृमि नाम दिया है।

५—इन कृमियों को नये लेखकों ने अंग्रेजी नाम की अनुकृति में बडिश-कृमि (बडिश=मछली मारने का काटा; Hook worm हुक-वर्म) आदि नाम दिये हैं।

अन्त्राद, उदराद (उदरावेष्ट), हृदयचर (हृदयाद), चुरु, दर्भपुष्प, सौगन्धिक, महागुद^१ लक्षण—हल्लास, मुखलाव, अरोचक, अविपाक (अजीर्ण) ज्वर, मूच्छा, अथवा अतिनिद्रा) जृम्भा, क्षवथु (छींक), पीनस, आनाह, अङ्गमर्द, वमन, कृशता, पारुष्य।

पुरीषज कृमि

इनके कारण कफज कृमियों के सदृश ही हैं। स्थान—पत्रवाशय। ये बढ़कर नीचे की ओर फैलते हैं। यदि ये आमाशय की ओर बढ़ें तो जब तक उस ओर गति रहे तब तक रोगी के उद्गार तथा श्वास में पुरीष का गन्ध रहता है। इनके भी आकार और वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं। कई सूक्ष्म, गोल, श्वेत, लम्बे और उनके रेशे के समान होते हैं^२; कोई स्थूल और गोल तथा श्याव-नील-हरित-पीत होते हैं। ये पाँच हैं। इनके नाम—ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, सशूलक, सौसुराद। लक्षण—पुरीष-भेद (मल टूट-टूट कर, थोड़ा-थोड़ा करके प्रवृत्त होता), रोमाञ्च; गुद पर कण्डू तथा तोद; बार-बार गुदभ्रंश; अग्निमान्द्य, शूल, विष्टम्भ, पाण्डुता, कृशता, पारुष्य^३।

१—संहिता में प्रथमा बहुवचन तथा विसर्ग लुप्त होकर इन कृमियों के लिए अन्त्रादा, उदरावेष्टा आदि नाम आये हैं। कई हिन्दी लेखक इन्हें ऐसा का ऐसा ही लिखते हैं। शुद्ध नाम अन्त्राद, उदरावेष्ट आदि हैं। अन्त्राद शायद हुक-वर्म हो।

२—सूत्र के आकार के कृमिको नये लेखकों ने सूत्र-कृमि (Thread worm=whip worm—ह्विप वर्म; Oxyuris vermicularis—ऑक्सियूरिस वर्मिक्युलेरिस; Ascaris Trichiuris—एस्कारिस ट्राइचियूरिस) नाम दिया है।

३—कृमियों के इन लक्षणों में नासाग्र पर कण्डू, स्वप्न में शुकमेह, सोते समय दाँत किटकिटाना, सोते से चौंक कर उठ खड़ा होना, हर्ष (काम की अधिकता), हाथ-पैर ठंडे तथा कोष्ठ उष्ण होना, सहसा कास-श्वास युक्त ज्वर का वेग इत्यादि प्रत्यक्ष लक्षणों का भी समावेश कर लेना चाहिए। आक्षेप, अपस्मार तथा अपतन्त्रक के रोगियों में भी कृमियों की शङ्का अवश्य करनी चाहिए। कृमि का इतिहास न होने पर भी कृमिघ्न औषध देना ही चाहिए। अनुभवियों का कथन है कि ऐसा कोई रोग नहीं जिसके सदृश लक्षण गण्डूपद-कृमि-कोष्ठ के कारण न उत्पन्न होते हैं। आनूप देश में कृमि का विचार विशेषतया करना चाहिए।

चिकित्सा

कृमिरोग पर अथवा कृमि की आशङ्का होने पर अधोलिखित उपचार करें। इनका मिश्र उपयोग भी कर सकते हैं।

१—प्रातः निरन्न कोष्ठ थोड़ा गुड़ खिलाकर कुछ काल पीछे बासी पानी से किरमाणी अजवायन दें। (सेण्टोनीन किरमाणी अजवायन का कार्मुक-क्रियाशील-अंश है। गण्डूपद कृमिपर इसका प्रभाव विशेष होता है।)

२—मुस्तकादिकपाय—(मुस्ता, मूषकपर्णी, त्रिफला, शोभाञ्जन, देवदारु, पिप्पली, विडङ्ग—उभय-मार्ग से प्रवृत्त कृमियों को निकाल देता है)।

३—पलाशबीज चूर्ण (पित्तपापड़ा, पलाशपापड़ा)—सधुसहित दें। यह भी गण्डूपद में उत्तम है।

४—अनार के मूल का कषाय या स्वरस।

५—सुपारी के मूल का कषाय। चौथा-पाँचवाँ योग ब्रध्न कृमि के लिए विशेष हैं।

६—विडङ्ग कृमि में प्रसिद्ध है। अनुसंधान से विदित हुआ है कि यह भी ब्रध्न कृमि पर विशेष गुणकारी है। इसका केवल या अन्य द्रव्यों के साथ कल्प रूप में निरन्तर प्रयोग कृमिमात्र में वैद्यजन चिरकाल से करते आ रहे हैं।

७—कुबेराक्ष (पूतिकरञ्ज) के बीज की मज्जा का औषध रूप में किंवा पत्र-स्वरस का अनुपान रूप में उपयोग गण्डूपद पर अच्छा गुणकारी है। तिक्त होने से दीपन-पाचन, ज्वरघ्न आदि कर्मकारी होने से बच्चों में एवं प्रसूता में इसका छूट से उपयोग करना चाहिए।

८—कम्पिल्लक यह कृमिघ्न भी है और रेचक भी। ऊपर के द्रव्य देने के पश्चात् रेचन की आवश्यकता हो तो उनके साथ या पीछे यही दें। सेण्टोनीन देना हो तो रस पुष्प के स्थान पर कृमिघ्न एवं निर्दोष होने के कारण कम्पिल्लक का व्यवहार करना अच्छा है। बच्चों के लिए तो सामान्य विरेचन के रूप में भी यह उपयुक्त है। इसकी क्रिया भी ब्रध्नकृमि पर विशेष होती है^१।

१—कम्पिल्लक में ईंट का चूर्ण मिला दिया जाता है। शुद्धि की परीक्षा यह है। दियासलाई जलाकर उस पर चुटकी भर द्रव्य बुरकें। शुद्ध होगा तो फल के ऊपर का रज होने से वह सहसा जल उठेगा। ईंट का चूर्ण होगा तो जलेगा नहीं। अनुभव से दर्शन-स्पर्शन और गन्ध से भी शुद्ध कम्पिल्लक जाना जा सकता है।

९—अनन्नास क पत्ते के नीचेका श्वेत भाग कृमियों के लिए उत्तम है। मात्रा—स्वरस की २ तोला; बच्चों के लिए $\frac{1}{2}$ —१ तोला शर्करा के साथ दें। अनन्नास खिलाने से भी कृमि नष्ट होते हैं।

१०—पारिभद्र (पंगारा) पत्र स्वरस अथवा अन्तर छाल का चूर्ण आभ्यन्तर कृमियों पर उत्तम है।

११—सूत्र कृमियों के लिए मुख मार्ग से औषध देने के अतिरिक्त तिक्त द्रव्यों की आस्थापन बस्ति दें। अन्तः प्रयोग में प्रथम गुड़ खिला पीछे स किरमाणी अजवायन और फिर कम्पिल्लक दें। चिरकाल तक विडङ्ग का प्रयोग भी अच्छा है।

१२—विडङ्ग, इन्द्रयव, पलाश-बीज, अरण्यजीरक (काला जीरा) तथा कुबेराक्ष का चूर्ण दें। अरण्यजीरक स्वतन्त्र भी अच्छा है। मात्रा—बच्चों में $\frac{1}{2}$ माषा। यह उत्तम रक्तशोधक और ज्वरहर भी है। वयःस्थों के जीर्ण ज्वरों में भी वैद्यों को इसका छूट से उपयोग करना चाहिए।

१३—प्राचीनों ने सुरसादि गण (विभिन्न तुलसी-भेद तथा निर्गुण्डो) एवं अश्वपुरीष की कृमियों में बहुत प्रशंसा लिखी है।

१४—मूषकपर्णी का स्वरस या चूर्ण दें।

१५—हाल ऊपर के अनेक कल्पों के अतिरिक्त रस कल्पों का प्रचार विशेष है। इनमें कृमिकुठार तथा कृमिमुद्गर प्रसिद्ध हैं। कृमिमुद्गर अधिक उत्तम है। इस में विषमुष्टि (कुचला) भी होता है। विषमुष्टि केवल भी उत्तम कृमिघ्न है। इसके अन्य गुण-कर्मों को लक्ष्य में रख कर कृमि के साथ तत्-तत् लक्षण भी हों तो इसका व्यवहार करना चाहिए।

१६—कृमिजन्य पाण्डु रोग आदि उपद्रवों में विडङ्गलोह (सर्वसम लोह, अन्य द्रव्यों में एक हरीतकी, सर्व तुल्य विडङ्ग चूर्ण) उत्तम है।

१७—शिशुओं के कृमि विकारों के लिए इन्द्रयव, कण्टकी करञ्ज, नाडीहिगु (डीकामाली), किरमाणी अजवायन, कर्पूर और प्रतिविषा (केलुम्बा) का व्यवहार घरों में होता है।

१८—अन्तः कृमियों के लिए मारवाड़ में यह कल्प प्रचलित है। प्रातः निरन्न कोष्ठ सूखा खोपरा गुड़ सहित रोगी जितना खा सके उतना खिला द। दो-तीन घण्टे में

सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। यह कृमियों को अपने आश्रय से भ्रष्ट कर रेचन करा बाहर निकालता है। दौर्बल्य भी नहीं होने देता।

१६—यूका (जूं) आदि बाह्य कृमियों के लिए विडङ्ग तेल का व्यवहार करें। मस्तक की यूका के लिए धतूर-तेल का भी विधान है। खाने को विडङ्ग, गन्धक तथा वाकुची (अथवा अरण्यजीरक) मिश्र करके दें। इससे हुई रक्त की अप्रिय गन्ध से यूका शरीर छोड़ कर भाग जाती हैं। जल-सहित सीताफल (शरीफा) के बीज के, चूर्ण अथवा पत्र-स्वरसे सिर के धोने से यूका मर जाती है, ऐसी प्रसिद्धि है। अरीठे के जल या नसवार का भी उपयोग होता है। मिट्टी के तेल से यूका तत्काल मर जाती हैं, परन्तु इससे केश कुछ काल को श्वेताभ हो जाते हैं। वृषण या सर्वाङ्ग की त्वचा पर हुई यूका में भी यही उपचार करें। पक्ष्मगत (पलक में हुई) लिखा तथा यूका में आभ्यन्तर औषध दें। रस पुष्प अथवा कज्जली का प्रलेप पक्ष्मों पर घिसें।

कृमिरोग में अपथ्य

अम्ल, मधुर, शीत द्रव्य, यथा-क्षीर, मांस, घृत, दधि तथा पत्रशाक कृमिरोग में वर्ज्य हैं।

स्नायुक^१

यह भी कृमि का ही एक भेद है। दूषित जलपान से होता है। इस नाम से इसका वर्णन भावमिश्र तथा माधव ने किया है और पृथक्, संसृष्ट, संनिपतित तथा रक्त भेद से इसके आठ भेद बताये हैं। इन्होंने इसे स्नायु से बना तन्तु कहा है। कदाचित् कृमियों के प्राचीनोक्त भेदों में यह एक हो। इसमें बाह्य तथा आभ्यन्तर उपचार किये जाते हैं। कृमि निकलता हो तो प्रतिदिन वह जितना जितना निकले उतना-उतना सलाई पर लपेटते जाते हैं। जोर से खींचने से टूट कर वह अन्दर घुस जाता है और विशेष कष्ट देता है। कोई-कोई विधिवत् निकालते हैं। आभ्यन्तर उपचार कदाचित् कृमि को अन्दर ही मार देते हैं, जिससे वह अस्मीभूत^२ हो जाता है। आभ्यन्तर उपयोगार्थ—

१—Guinea worm—गिनी वर्म;
Filaria medinensis—फायलेरिया मेडिनेन्सिस; गुजराती—वालो; हिन्दी—नेहरू; मराठी—नारु।

२—Calcified—कैल्सीफाइड।

१—निर्गुण्डी के पत्र या स्वरस (दो तोला) दें।

२—पापड़खार ३ माशा की मात्रा में दही के साथ दिवस में तीन बार दें। दिवस में भोजन न दें। रात को दें। यह विधि एक दिन करें। (स्मरण रहे, पापड़खार) का दही के साथ उपयोग कामला में भी सफल होता है।)

३—भर्जित तुवरी (फुलायी हुई फिटकरी) तीन माशा, दिन में दो बार गुड़ में मिला तीन दिन दें।

४—भर्जित हिङ्ग २-२ वाल, दिन में तीन बार निगलवा दें।

५—भर्जित टङ्कण तीन वाल इसी प्रकार गुड़ में दें। चौथे-पाँचवें कल्प को मिश्र भी कर सकते हैं।

६—सर्प-निर्मोक (साँप की केंचुली), धतूरपत्र (२॥ अदद) या दो तोला धतूरपत्र स्वरस भी कोई देते हैं।

स्नायुक के कारण हुए व्रणादि की विसर्पवत् चिकित्सा करें।

स्नायुक में डाँ० भाजेकर का अनुभूत प्रयोग^१

वट की अति कोमल जटा का कल्क २ तोला, गुड़ २ तोला; छः से बारह वर्ष के बच्चों में मात्रा आधी। ऐसी एक मात्रा प्रातः निरन्न कोष्ठ दें। औषध प्रतिदिन ताजी दें। कोई आध घंटा पीछे उदर में उष्णता प्रतीत होती है। उस समय सीठी छाछ पन्द्रह-बीस तोला दें। तीन घण्टा पीछे लघु अन्न दें। सायंकाल (३ से ५ के बीच) रोगी नित्यक्रमानुसार दूध या चाय ले सकता है। रात का भोजन नित्यवत् लें। काफी, मांस, अण्डा, मधु वर्ज्य हैं। व्रण पर जन्तुघ्न औषध का उपयोग न करें। मद्यसार (स्पिरिट) या उबाले जल से स्वच्छ कर शुद्ध (स्टराइल)

१—मुंबई के सेंट जॉर्ज हॉस्पिटल के ऑनरेरी सर्जन डॉक्टर एन० वी० भाजेकर ने सात वर्ष में दो सौ रोगियों पर प्रयोग कर जो अनुभव पाया उसे राज्य के आरोग्य-विभाग को सौंप दिया है। इस उपचार में दूसरी बार औषध केवल छः रोगियों को देने की आवश्यकता हुई। पन्द्रह को औषध से लाभ नहीं हुआ। शेष अर्थात् ८७ प्रतिशत में औषध गुणवती सिद्ध हुई। दो-तीन सप्ताह में वे रोगमुक्त हो गये। कुछ रोगी जिनका इतिहास विदित है उन्हें इसके अनन्तर पाँच वर्ष तक (आज तक) कृमिबाधा फिर नहीं हुई। डॉक्टर का कथन है कि इनमें इस उपचार से रोग क्षमता (इम्युनिटी) उत्पन्न हो गयी।

रूई रख पट्टी बांध दें। इस प्रकार दस से पन्द्रह दिन औषध दें। प्रायः रोगी इतने दिन में ही ठीक हो जाते हैं। किसी-किसी रोगी में पुनः दस दिन औषध देनी पड़ती है, परन्तु वह प्रारम्भ करने के पूर्व बीच के दो सप्ताह औषध न दें।

इस चिकित्सा में प्रथम दो-तीन दिन कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। चौथे दिन निश्चित ज्वर आता है, जो कभी-कभी १०३० फा० तक जाता है। स्थानीय वेदना और छाव में भी वृद्धि होती है। छाव मूल स्वरूप का लसीका ही प्रयुक्त होता है। यह वृद्धि तीन दिन रहती है। सातवें दिन वेदना तथा छाव की यह वृद्धि अटकती है तथा उपचार के पूर्व की स्थिति आ जाती है। नौवें दिन से अति वेग से स्वस्थता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। तद् यथा—(क) नाड़ीव्रण से लसीका और पूय न्यून निकलते हैं और व्रण क्रमशः सूखने लगता है; (ख)

व्रण तथा नाड़ीव्रण की किनारी पर स्थित तीव्र शोथ मृदु होने लगता है, शुद्ध धातु उत्पन्न होने लगता है, व्रण रुकने पर आने लगता है; (ग) स्थानीय वेदना तथा खँच न्यून होने लगते हैं; (घ) स्थानीय शोथ सवेग पटकने (बैठने) लगता है।

कई रोगी स्नायु को खँचने के प्रयत्न में उसे आधा तोड़ कर लाते हैं। इनमें कृमि अन्दर प्रविष्ट हो जाता है तथा तीव्र लक्षण उत्पन्न होते हैं। इनमें भी उक्त उपचार से शान्ति होती है।

कई रोगियों में बाह्य व्रण होता ही नहीं। केवल त्वचा के नीचे दो से आठ इंच के विस्तार में अनेक कृमि प्रतीत होते हैं। दस दिन औषध लेने से कृमि की यह स्पर्शगम्यता नष्ट हो जाती है। पन्द्रह दिन पीछे तो कृमि सर्वथा हाथ नहीं लगता। इनमें लक्षणों की पूर्व लिखित वृद्धि नहीं होती। (क्रमशः)

('रक्तांश में अरिष्टक-योग' की शेष टि० पृ० ८११ का)

औषध द्रव्य और जल मिला क्वाथ करके या उसके बिना संधान किया जाय तो इन्हें आसव या अरिष्ट कहते हैं। क्वाथ का ही एक भेद प्रमथ्या है। इसमें, जलमें औषध द्रव्यों का कल्क छोड़ा जाता है, यह विशेषता होती है। जल को अकेले गर्म कर उसमें औषध-द्रव्यों का चूर्ण डाल कुछ काल पड़े रहने देकर छान लें तो जो कल्प बनता है उसे फाण्ट कहते हैं। चाय सामान्यतया इस विधिसे बनाई जाती है। क्वाथ न करके औषध द्रव्यों को जलमें रातभर पड़े रहने देकर प्रातः छान लेने से जो कल्प बनता है उसे शीतकषाय या हिम कहते हैं। शीत जलमें ही औषध द्रव्य या सत्तू डाल कर उसे मथानी से खूब मथ लें और औषध द्रव्य हो तो छान कर और सत्तू हो तो बिना छाने जो कल्प बनता है उसे मन्थ कहते हैं। औषध-सिद्ध क्वाथ

ठंडा कर तृषा में पीने के लिए जो कल्प दिया जाता है उसे पानीय कहते हैं। आम, इमली, फालसा आदि अम्ल या अन्य अम्ल-फलों को शीत जल में डाल सितोपला, कुष्ण-मरिच, इलायची, लवङ्ग आदि द्रव्य डाल कर जो कल्प बनाया जाता है। उसे पानक कहते हैं। सुगन्धित फूल आदि के क्वाथ को तिर्यक् पातन यंत्र द्वारा उड़ा कर जो कल्प बनाया जाता है, उसे अर्क कहा जाता है। हिम, फाण्ट क्वाथ या अर्क में दुगुनी खांड डाल कर मन्दाग्नि पर कुछ गाढ़ा कर जो कल्प बनाया जाता है उसे शार्कर (शर्बत) कहते हैं। सिता और गुड़ विशेष प्रमाण में डाल जो पाक किया जाता है उसे लेह, अवलेह, प्राश (चाटने योग्य होने से) या रसक्रिया कहते हैं। लाक्षा के क्वाथ को लाक्षारस तथा केवल जल के क्वाथ को उष्णोदक कहते हैं।

सचित्र आयुर्वेद में विज्ञापन दे कर लाभ उठाइये।

आयुर्वेद में दूध का आसुरी प्रयोग

और

रसायन विधि अथवा कायाकल्प

ले०—लक्ष्मण सीताराम खेर

अप्रैल, सन् १९३७ ई० में रामनवमी के लगभग (सेवा निवृत्त होने के दस महीने बाद) मुझे शीत ज्वर (Influenza) हुआ, और उसी सिलसिले में त्रिदोष होकर मेरी तबियत बहुत बिगड़ गई। ज्वर तो एक सप्ताह में अच्छा हो गया लेकिन कमजोरी बहुत बढ़ गई। सात सेर वजन एकदम कम हो गया और भूख लगना तो इस तरह से बन्द हो गया मानो जिगर ने इस्तीफा दे दिया हो। वैद्यों और डॉक्टरों की बहुत-सी दवायें खाईं, लेकिन न तो कमजोरी ही गई और न वजन ही बढ़ा। छाती धड़कने लगी और घबराहट होने लगी। इतने में सितम्बर का महीना आ गया और जहाँ-तहाँ मलेरिया वालों की चारपाइयाँ बिछने लगीं। एक तो मैं पहले से ही दुर्बल था तिसपर भी मलेरिया का आक्रमण हो गया। फिर तो पूछना ही क्या है। जोर का बुखार आया। चार-पाँच रोज के बाद ज्वर तो बिदा हो गया, लेकिन कमजोरी पहले से भी ज्यादा बढ़ गई। सात सेर वजन और घट गया। शरीर में केवल अस्थि-पंजर शेष था। उठना-बैठना भी दूभर हो गया। घटते-घटते वजन एक मन नौ सेर रह गया। उस समय मैं मध्यप्रांत में सागर जिले की दमोह तहसील में था। जब वहाँ के वैद्यों और डॉक्टरों के इलाज से कुछ फायदा न हुआ तो मैं ५-११-३७ को दमोह छोड़कर फतेहपुर चला गया। वहाँ पर मेरे भाई पुलिस कप्तान थे, अब भी हैं।

जलवायु के परिवर्तन से मुझे कुछ फायदा मालूम पड़ा; दो-तीन सेर वजन भी बढ़ गया; और थोड़ा बहुत चलने-फिरने भी लगा। उसी समय मेरे परम मित्र राय बहादुर श्री पं० हरिहरनाथ जी मुट्ठू मुझे देखने आये। उन्होंने राय दी कि मुझे काशी निवासी आयुर्वेदभारतण्ड, वैद्य-रत्न श्रीयुक्त च्यम्बक शास्त्रीजी से अपनी चिकित्सा करानी चाहिये। यद्यपि गत २७ वर्षों से शास्त्री जी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और मेरे ऊपर उनका बहुत प्रेम

है, फिर भी निराश होने के कारण मेरी बुद्धि पर ऐसा परदा पड़ गया था कि मुझे स्वयं न सूझा कि पहले से ही उनकी शरण में जाऊँ। अपने मित्र के सुझाने से मैं अविलंब बनारस जाने के लिये तैयार हो गया।

शास्त्री जी अलौकिक-प्रतिभाशाली वैद्य थे उनको बुद्धि सर्वसौगामी और अनुभव अद्वितीय था। वे साक्षात् शरीर धारी आयुर्वेद ही थे। बनारस जाकर मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझे प्रेम पूर्वक देखा और दवाई दी। तीन-चार दिन तक दवाई खाने के बाद मैं फिर उनसे मिलने गया, तो उन्होंने दूध का प्रयोग कराने की आज्ञा दी और कहा कि इससे शरीर निरोग होकर गुलाबी हो जायगा। तदनुसार, ८ दिसम्बर, सन् १९३७ ई० को एक कमरे में बन्द करके उन्होंने मुझसे कहा कि इस दवाई को तीनों समय सेवन करके जितना पी सको उतना दूध पिया करो। दूध गर्म करके एक उबाल आते ही निकाल लिया जाय और पीने लायक होने पर बिना शक्कर या शहद मिलाये ही पी लिया जाय। ऐसा कहकर उन्होंने कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करा दिये और कहा कि हवा से बचना। मेरे कमरे से मिला हुआ जो स्नान-गृह था उसी में शौच जाने की उन्होंने आज्ञा दी और दूध को छोड़कर अन्य सब पदार्थों को—पानी तक को—छूने से मना कर दिया।

उसी हालत में लगातार चालीस दिन तक मैं उसी कोठरी में रहा। पहले दिन सुबह हवा खाकर, कुछ देर बाद, तीन पाव दूध पिया। फिर तीन-तीन घण्टे बाद थोड़ा-थोड़ा दूध पीता रहा। उस दिन कुल ढाई से दूध पिया गया। दवा सुबह, शाम और रात को सोते वक्त दी जाती थी। दूसरे दिन से बढ़ाते-बढ़ाते, ग्यारहवें दिन से मैं लगभग दस सेर दूध में रोज पीने लगा। तिस पर भी शास्त्री जी का आग्रह था कि दूध अधिक पीना चाहिये। दवा देखिये तो रत्ती भर और असर ऐसा कि एक गिलास दूध पी लेने के बाद आधा या पौन घण्टा बीतते

ही दूसरा गिलास पीने की इच्छा होने लगती थी। शास्त्री जी का कहना था कि जिस रोज दूध पीने की इच्छा न हो उस रोज उसकी तीन चार खुराकें (डेढ़ दो सेर) एकदम पीकर वमन कर डालो तो फिर रुचि होने लगेगी। परन्तु दवा का गुण ही ऐसा विलक्षण था कि दूध न पिऊँ तो गला सूखने लगता था। इसलिये दूध पिये बिना काम नहीं चलता था। ठंडा पानी पीना तो दूर रहा, छूने तक की सुमनियत थी। दवा के साथ एवं शौचादि के लिये गर्म पानी दिया जाता था।

मैंने सुना था कि शास्त्री जी दूध का आसुरी प्रयोग कराते हैं अर्थात् दवा के बल पर अलोक विश्रुत परिमाण में दूध पिलाते हैं। एक रोगी को हमने २८ सेर दूध पिलाकर अच्छा किया ऐसा वे स्वयं कहा करते थे। मेरे मित्र राय बहादुर श्रीधुत् स्वरूप नारायण जी सेशन जज, बनारस, के ज्येष्ठ पुत्र, जो हाल ही में शास्त्री जी से इलाज करा चुके थे १४, १५ सेर दूध रोज पीकर ४० दिन के बाद अच्छे हुये थे। अस्सी के एक भारवाड़ी साहब ने भी शास्त्री जी से इलाज कराया था। वे २० सेर दूध रोज पिया करते थे। ४० दिन में उनका वजन २० सेर अधिक बढ़ गया था।

लेकिन मुझे १० सेर से ज्यादा दूध नहीं पिया जाता था। यकृत की खराबी से ऐसा होता है यह विचार कर शास्त्री जी ने अधिक दूध पीने का आग्रह छोड़ दिया। उन दिनों मुझे रोज दस बारह दस्त हुआ करते थे, फिर भी आठ दस दिन दूध पीने के बाद रोज आधा या पौन सेर के हिसाब से वजन बढ़ने लगा, चालीस दिन पूरे होनेपर २७ जनवरी, १९३८ ई० को जब शास्त्री जी ने मुझे पथ्य दिया तो उस समय मेरा वजन १४, १५ सेर बढ़ चुका था। केवल मांस ही नहीं बढ़ा, बल्कि मुर्दार भाव भी, जो शरीर पर छा गया था, दूर होकर शरीर में रक्त संसार होने लगा। उस रोज केवल दो तोले पुराने चावल का भात, अरहर की दाल के पानी के साथ, अदरक की चटनी लगाकर, खाने के लिये मुझे दिया गया था धीरे-धीरे मेरी खुराक बढ़ाई गई और १० रोज बाद मैं यह खुराक पेट भर खाने लगा। ग्यारहवें दिन सुबह को नौम के पानी से स्नान किया और शाम को पालकी में बैठकर शास्त्री जी के घर गया।

जब मैं दमोह में था तो बुखार उतर जाने पर वहाँ के वैद्य ने मुझे लगातार ३६ रोज दवा के साथ मट्ठा पिला

कर रखा था। खुली वायु में टहलने और रात को मैदान में सोने की इजाजत थी। मट्ठे के साथ मोसम्बी, संतरा आदि रसीले फल भी खाया करता था। जब वैद्य की दवा से कोई लाभ न हुआ तो डाक्टरों इलाज शुरू किया। बकरी के कलेजे का ताजा शोश्मा, 'हेलीवट लीवर आइल' तथा ताकत की अन्य दवायें खाईं। पर किसी से कुछ न हुआ। स्वर्ण-पर्यंटी जिसकी भूख को नहीं बढ़ा सकी; ३६ दिन तक मट्ठे का कल्प जिसके हाजमे में रती भर भी फर्क न कर सका; तथा डॉक्टरों ओषधियाँ जिसकी कमजोरी को दूर न कर सकी; वही मैं, जो अच्छी हालत में भी आधा सेर या तीन पाव से अधिक दूध नहीं पचा सकता था, शास्त्री जी की दवा से, रोज दस-बारह दस्त होने पर भी, दस-दस सेर दूध कैसे हजम कर सका, यह बड़ा आश्चर्य है। वास्तव में, इससे शास्त्री जी की बुद्धि की विलक्षणता, उनके आयुर्वेद-ज्ञान की गम्भीरता और उनके अनुभव की विशालता प्रकट होती है। यह एक गूढ़ रहस्य है।

खुली हवा में रहकर और ताजा रसीले फल खाकर तो तन्दुरुस्ती ठीक नहीं हुई, पर एक बन्द कमरे में, जिसमें वायु और स्वर्ण-किरणों के आने के लिये कोई छोटा-सा छेद भी नहीं था, चालीस दिन रहकर भी शरीर स्वस्थ हो गया और वजन बढ़ गया—यह आश्चर्य नहीं तो क्या है? यदि नये और पुराने वैद्य शास्त्रों के अभिमानों आचार्यों ने इन बातों पर मार्मिक विचार किया, तो लोक का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। विशेषकर उन डॉक्टरों और वैद्यों को विचार करना चाहिए जो आयुर्वेद को मानते तो हैं, पर जो यह समझते हैं कि उसके सिद्धांतों में अर्वाचीन शास्त्रों के अनुसार कुछ परिवर्तन हो जाना चाहिए।

इस संसार में स्वास्थ्य ही प्रधान है। प्रतिशत ९० रोग इसी के बिगड़ जाने से होते हैं। इसलिए; उपर्युक्त समस्या पर गंभीर विचार की आवश्यकता है। विलायत से चली हुई लहर के साथ-साथ बढ़ने में कोई लाभ नहीं। अपने शास्त्र का पर्यालोचन होना चाहिए। शास्त्री जी के दुग्ध प्रयोग की चर्चा मैंने एक अंग्रेजी के लेख (Miracle of milk treatment in Ayurved) में की है, जो 'लीडर' और 'हितवाद' में प्रकाशित हो चुका है।

इस प्रकार खाना मिलने पर धीरे-धीरे शक्ति आने

लगी। पौष्टिक ओषधि भी लेता रहा, तथापि गर्मी के मौसम में वजन कुछ गिरने लगा। इस कारण ७-५-३८ को मैं नैनीताल चला गया। कमजोरी तो थी ही; रात को बरेली में बाहर मैदान में सो रहा था कि जोर की ठंडी हवा लगने से मुझे जुकाम हो गया और नैनीताल में पहुँचकर जोर का बुखार आया। शास्त्री जी को सब समाचार लिख भेजा। उत्तर आया कि बिना देखे दवाई नहीं दी जा सकती। जेठ मास की गर्मी में नैनीताल से बनारस की यात्रा करना मेरे लिये नितान्त असम्भव था, इसलिए वहीं रहकर डॉक्टरों इलाज कराया। कुछ दिनों बाद बुखार तो उतर गया, पर कमजोरी बनी ही रही। नैनीताल जाने से पहले महामना पण्डित मदन मोहन जी मालवीय द्वारा कराये गये कायाकल्प के विषय में सभी प्रकार की झूठी-सच्ची कथाएँ श्रवणारों में पढ़ने को मिली थीं। शास्त्री जी से पूछने पर मालूम हुआ कि मुझे भी कायाकल्प कराने का अधिकार है; परन्तु अगले जाड़ों से पहले वह विधि नहीं हो सकती थी, इसलिए वह बात वैसे ही रही। नैनीताल की जलवायु से कमजोरी कम होने लगी। लेकिन न तो वजन बढ़ा और न शरीर में उत्साह पैदा हुआ: इतने में हर हिटलर के जुल्म से जर्मनी से निकाला हुआ एक यहूदी डॉक्टर नैनीताल आ गया। उससे मिलकर कुछ दिन उसका इलाज कराया। कुछ फायदा भी हुआ, लेकिन जिगर की हालत में कोई फर्क न आया, घबराहट भी ज्यों की त्यों बनी रही। अब इस बात की चिन्ता हुई कि कहीं बीमारी फिर से न लौट पड़े।

दशहरे के लगभग (२६-९-३८) को मैं नैनीताल से बनारस गया और शास्त्रीजी से मिला। मिल कर उनसे कायाकल्प के सम्बन्ध में फिर से बातचीत छेड़ दी। शास्त्री जी ने कहा कि उम्र के लिहाज से और व्याधि से मुक्त होने के लिये रसायन-विधि कराने में कोई बाधा नहीं हो सकती। कायाकल्प का ही शास्त्रीय नाम रसायन विधि है।

२५-१०-३८ को कायाकल्प कराने का अन्तिम निश्चय हो गया। निश्चय तो हुआ, लेकिन अपेक्षित सामग्री एकत्रित करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अन्त में मित्रों की सहायता से सब प्रबन्ध ठीक हो गया।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट के मतानुसार रसायन विधि

दो प्रकार की होती है—(१) कुटी प्रावेशिका और (२) वातातपिक। पहले प्रकार में कुटी में रहकर और दूसरे में खुली हवा तथा रोशनी में रहकर रसायन का सेवन करना होता है। पहले प्रकार को श्रेष्ठ माना गया है, इसलिए मैंने भी अपनी चिकित्सा के लिये इसे ही पसन्द किया। अब मैं यह बतलाऊँगा कि कुटी क्या चीज है।

साधारण बोलचाल में कुटी का अर्थ पर्णकुटी या मठिया होता है। पर यहाँ पर यह अर्थ नहीं है। अमरकोष में लिखा है “वासः कुटी द्वयोः शाला समाः।” यहाँ पर भी यही अर्थ अभिप्रेत है—क्योंकि चरकादि ग्रन्थों में जिस ढंग से कुटी का वर्णन किया गया है, उससे शाला का ही बोध होता है।

रसायनविधि के लिये त्रिगर्भा कुटी की आवश्यकता होती है। एक के ऊपर दूसरी और दूसरी के ऊपर तीसरी, चारों तरफ से तथा ऊपर-नीचे ढकी हुई कोठरी का नाम ‘त्रिगर्भा कुटी’ है। उदाहरण के लिये यदि पहली कुटी १२×१५×१० फीट परिमाण की हो तो दूसरी २४×३०×२० फीट परिमाण की तथा तीसरी ३६×४५×३० फीट परिमाण की होनी चाहिए। जिस गाँव में अकाल और संक्रामक रोग न हों, वहाँ साफ-सुथरी जगह देखकर उत्तर या पूर्व की ओर, ऐसे स्थल में कुटी बनानी चाहिए, जहाँ धुआँ और धूल न आता हो तथा जहाँ साँप जैसे विषैले जानवर न रहते हों। कुटी की दीवारें मोटी होनी चाहिए। वह देखने में सुन्दर हो और सब ऋतुओं के लिये उपयुक्त हो। वह कोलाहल से दूर होनी चाहिए और स्त्रियों तथा धूर्त लोगों का उसमें प्रवेश न होना चाहिए। चिकित्सा की सम्पूर्ण सामग्री मौजूद रहनी चाहिए; वंश भी समीप रहे और ब्राह्मण भी पड़ोस में हों। मेरे लिये १२००) खर्च करके जो बाँस, घास तथा मिट्टी की कुटी बनायी गयी थी, वह सब ऋतुओं के लिये उपयुक्त नहीं थी। फिर भी केवल बनाने की चीजों को छोड़कर इसमें शेष सब बातों का विचार रखा गया था।

रसायन विधि के लिये तीन चीजों की जरूरत पड़ती है—(१) आँवला, (२) ताजा घी, (३) शहद। घी निकालने के लिये काली गाय का दूध शाम को जमा दिया जाता था और रोज़ प्रातः काल तैयार किया जाता था। बढ़िया आँवला और शहद का भी इन्तजाम हो गया था।

इस तरह से तैयार की हुई कुटी में, हजामत बनवाकर,

राम द्वेषादि मानसिक विकारों को छोड़कर और वमन विरेचनादि से शरीर शुद्ध करके, वल आने पर, रसायनेच्छक धैर्य धारण करके अटल निश्चय के साथ, कुलदेवता का पूजन और ब्राह्मणों की परिक्रमा करके, उत्तरायण के शुक्ल पक्ष में शुभ दिन देखकर, प्रवेश करें और शान्त चित्त से प्राणिमात्र का कल्याण सोचते हुए रसायन लेना शुरू करें—ऐसा शास्त्रों का वचन है।

शरीर-शुद्धि के साधन ५ प्रकार के हैं—(१) स्नेहन, (२) स्वेदन, (३) वमन, (४) विरेचन और (५) आध्मापन। इन्हीं को पंचकर्म या 'संशोधन' कहते हैं। इनमें से पहले दो स्वतंत्र साधन नहीं हैं, बल्कि शेष तीन प्रमुख साधनों के सहायक हैं। इन पंचकर्मों का जिक्र महामना श्री पं० मदन मोहन जी मालवीय ने कायाकल्प कराने के बाद अपने लेखों में किया है, जो समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने लिखा था कि समय के अभाव के कारण पंचकर्म नहीं करा सके थे। पर वाग्भट ने साफ लिख दिया है कि शरीर शुद्धि के बिना रसायन विधि उसी प्रकार निष्फल है, जिस प्रकार मैले कपड़े पर रंग चढ़ाना।

संशोधन के लिये आयुर्वेद ने शरीर के तीन भाग किये हैं—(१) 'जत्रु' अथवा हंसली के ऊपर का भाग (२) 'छाती' जिसमें अनेक प्रमुख अन्तःकरणों का समावेश होता है और (३) 'आमाशय'। पहला भाग आध्मापन, दूसरा वमन और तीसरा विरेचन से शुद्ध किया जाता है।

अब शंका यह उठती है कि जब शरीर औषध प्रयोग अथवा लंघनादि से शुद्ध किया जा सकता है, तो इस पाँच प्रकार के द्राविणी प्राणायाम से क्या लाभ? इसका समाधान चरक ने इस प्रकार किया है—

“दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।

जिताः संशोधनैर्युत न तेषां पुनरुद्भवः॥”

(१) तीनों प्रमुख संशोधनों के लिये जरूरी जिसका पहला कर्म स्नेहन है, उसका प्रारम्भ (दुग्ध-प्रयोग के ठीक एक साल बाद) ता० ८ दिसम्बर, १९३८ को किया गया। स्नेहन के लिये सर्वोत्तम पदार्थ घी, तेल, चर्बी और मज्जा होते हैं। इनमें से किसी एक का प्रयोग शारीरिक शक्ति और ऋतु के अनुसार किया जा सकता है। उत्तम, मध्यम और अधम शक्ति के अनुसार दिन में ६, ६ घण्टे, १२, १२ घण्टे या २४ घण्टे में स्नेहन का प्रयोग किया जा सकता है।

८ दिसम्बर को प्रातःकाल मुझे १ छटाँक ताजा घी पिलाया गया। घी पिलाने के बाद मुझे आज्ञा हुई कि जब प्यास लगे, तब गर्म पानी पीना, दिन में न सोना, पर आराम करना। १२ घण्टे के बाद जब मुझे भूख लगी, तो खिचड़ी दी गयी। दूसरे दिन से घी की मात्रा दूनी कर दी गयी और बाद में तिगुनी कर दी गयी। सात दिन बाद स्नेहन बन्द कर दिया गया—क्योंकि आयुर्वेद का कथन है कि सात दिन पश्चात् घी सात्त्विकीभूत हो जाता है और स्नेहन के योग्य नहीं रहता।

(२) आठवें दिन स्वेदन कराया गया। चरक ने १३ प्रकार के स्वेदों का वर्णन किया है—उनमें से मुझे कुम्भी स्वेद दिया गया। पहली रात को, ताजा उखाड़ी हुई पाँच वनस्पतियों को पानी में उबाला गया। प्रातःकाल लगभग ८ बजे यह पानी बाल्टियों में भरा गया और मूँज की रस्सी से बुनी हुई खाट के नीचे रख दिया गया। मुझे उस खाट पर चित्त सुलाया गया और अच्छी तरह से कम्बलों से ढँक दिया गया। इसके बाद लोहे के टुकड़े खूब गर्म करके उस पानी में छोड़े गये, जिससे भाप उठने लगी और लगभग आध घण्टे में मुझे बड़े जोर से पसीना आया। आँखों को भाप से बचाने के लिये केले के पत्तों से ढँक दिया गया था। छाती पर भी केले के पत्ते लगा दिये गये थे। एक घण्टा में जब खूब पसीना निकल आया, तो शरीर पोंछ कर गर्म पानी से स्नान कराया गया। स्वेदन के पश्चात् भी पहले की तरह खिचड़ी ही खाने को दी गयी।

(३) दूसरे दिन प्रातःकाल शरीर-शुद्धि के प्रथम प्रमुख साधन 'वमन' का प्रारम्भ किया गया। लगभग ८ बजे आकण्ठ दुग्धपान कराया गया। तदनन्तर, मदन-फल का चूर्ण शहद में मिलाकर गर्म पानी के साथ पीने को दिया गया। थोड़ी देर बाद वमन शुरू हो गया। एक बार वमन होने के पश्चात् फिर दूध पिलाया गया, जिससे फिर वमन हुआ। लगभग सोलह सेर दूध पिलाया गया, जिससे सात-आठ वमन बड़े जोर से हुए। लगभग दो या ढाई सेर कफ निकला, पर जब पित्त आने लगा, तो वमन फौरन बन्द की गयी। आयुर्वेद में वमन के लिये पित्त और विरेचन के लिये कफ दर्शन की मर्यादा रखी है। यदि इसका विचार नहीं रखा जाता, तो जिह्वा या तो अन्दर चली जाती या बाहर निकल आती। इसको ठीक करने के लिये यह आवश्यक है कि कोई अन्य व्यक्ति रोगी के

सामने खड़ा फल खाये। वमन के उपरान्त मुझे चिलम पिलाकर चारपाई पर सुला दिया गया।

वमन से जो शरीर में अशक्तता आ जाती है, उसे दूर करने के लिये 'संसर्जन क्रम' अथवा पथ्य का विधान है। यह क्रम दो प्रकार का होता है—(१) पेयादि और (२) तर्पणादि। मुझे पहला क्रम दिया गया था। इस क्रम के लिये दिन के दो भाग करते हैं और उन्हें अन्नकाल कहते हैं। पहले अन्नकाल में तो वमन कराया गया था। दूसरे अन्नकाल से तीन अन्नकाल तक अर्थात् डेढ़ दिन तक चावल या मण्ड पीने को दिया गया। इसे संस्कृत में 'यवागू' कहते हैं। अग्रिम तीन अन्नकाल तक पतला चावल या 'विलेपी' खाने को दी गयी। नाम मात्र के लिये घी और नमक दिया गया था। फिर तीन अन्नकाल तक थोड़ी-सी मूंग की दाल के साथ चावल खाने को दिया गया। फिर, अगले तीन अन्नकाल तक मांस-रस के साथ भात देना चाहिए ऐसा चरक का मत है। लेकिन; सम्प्रदाय के अनुसार दाल-भात और मँथी का शाक अदरक की चटनी के साथ खाने को दिया गया। इस क्रम में गर्म पानी पीना पड़ता था। चरक के कथनानुसार चावल लाल धान का होना चाहिए। परन्तु; वैसा धान जल्दी मिलता न था, इसलिए पुराना चावल काम में लाया जाता था। इस प्रकार ६ रोज व्यतीत होने पर साधारण भोजन देना शुरू हुआ और धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा बढ़ाते-बढ़ाते चौदहवें दिन से हल्का और भारी, नमकीन और मीठा, सभी तरह का खाना दिया जाने लगा।

(४) इस प्रकार संसर्जन क्रम समाप्त होने पर विरेचन की तैयारी हुई। इसी सिलसिले में पहले पाँच दिन तक पूर्ववत् स्नेहन कराया गया और छठे दिन स्वेदन कराया गया। छहों दिन केवल खिचड़ी खाने को दी गयी। एक दिन बीच में छोड़कर आठवें दिन सुबह को मुझे (१) हड़ का चूर्ण (२) सेंधा नमक (३) आँवले का चूर्ण (४) गुड़ (५) वच (६) वायविडंग (७) हल्दी (८) पीपल और (९) सोंठ सम भाग गर्म पानी के साथ पीने को दी गयी। तीन घण्टे बाद दस्त आने लगे और लगभग १ बजे तक आध-आध घण्टे बाद दस्त आते रहे। दस्तों की परमावधि ३० है। यदि पाखाने में पहले ही कफ के दर्शन हो जाय, तो पहले ही बन्द कर देना चाहिए। पहले दिन काफी दस्त नहीं हुए थे, इसलिए दूसरे दिन फिर वही दवा

दी गयी। कफ दिखाई देने पर विरेचन बन्द कर दिया गया और दूसरे अन्नकाल से लेकर दो-दो अन्नकाल के बाद पेयादि क्रम देकर आठ-दस रोज के बाद साधारण भोजन देना शुरू कर दिया गया।

(५) तदनन्तर, अन्तिम शुद्धि विधान 'आध्मापन' की तैयारी के लिये फिर स्नेहन और स्वेदन कराया गया। फिर आध्मान की दवाई दी गयी। यह दवाई नली या सरकण्डे के पोले टुकड़े से रोगी की नाक में फूँकी जाती है। पर शास्त्री जी ने मुझे ही दवा सूँघने का आदेश दिया। दवा सूँघते ही छींकें आने लगीं, आँखों में पानी भर आया, नाक भी भर गयी, गला दुखने लगा और जुकास के सब लक्षण दिखाई देने लगे। दवा तो एक बार ही सूँघी थी, पर उसका असर तीन रोज तक रहा। तीन रोज बाद सर्दी के सब लक्षण दूर हो गये। इस दौरान में खाने को हल्का भोजन दिया जाता था।

इस प्रकार पंचकर्मों की समाप्ति होने पर शरीर में ताकत लाने के लिये मुझे दिन में तीन बार जौ का भात घी के साथ खाने को दिया जाता था। उससे तीन-चार दिन में ही शरीर बलिष्ठ और तेजयुक्त प्रतीत होने लगा। तब अच्छा दिन देखकर 'पुण्याहवाचनादि' विधि करके ता० २६ जनवरी, सन् १९३६ को दो पहर के दो बजे मैंने कुटी में प्रवेश किया और उसी दिन से रसायन का सेवन करने लगा।

शास्त्री जी ने मुझे पहले जता दिया था कि प्रयोग पहले पहल हो रहा है—उसका अनुभव अभी नहीं किया गया। परन्तु, विधि शास्त्रविहित है, इसलिए घबराने की आवश्यकता नहीं। इससे फायदा अवश्य होगा, हानि नहीं हो सकती। शास्त्री जी की आयुर्वेद में अटल श्रद्धा है। इसलिए; वे जो कहते थे मैं वही करने के लिये हर समय तैयार रहता था।

आयुर्वेद के मूल ग्रंथों में और वाग्भट के अष्टांग-हृदय में रसायनविधि के अनेक प्रकार लिखे हैं। कुछ प्रयोग तो ऐसे हैं, जिनके पूरे होने में साल भर लग जाता है। वाग्भट की आमलकी रसायन इस दृष्टि से अच्छी है। इसकी तैयारी का विधान 'अष्टांगहृदय' में बताया गया है; जो इस प्रकार है—नीरोग और कृमि रहित पलाश के पेड़ को, जो न कोमल हो और न पुराना हो, जड़ से उखाड़ कर, उसके प्रकाण्ड में ऊपर से दो हाथ नीचे तक आँवले के बराबर

गोल छेद करके, एक के ऊपर दूसरा इस प्रकार २७-२८ आँवले उस छेद में डालकर छेद को उसी लकड़ी से बन्द कर दें। उस दण्ड के ऊपर-नीचे, चारों तरफ, कमल वाली झील के कीचड़ से दो अंगुल मोटा लेप करें और उसके ऊपर दर्भ लपेट दें। फिर रात को ऐसी कोठरी में जहाँ हवा न जाती हो, वनोपलों की आग में, उस दण्ड को जलावें। सुबह को उस दण्ड में से आँवले निकाल लें और उन्हें रसायनेच्छुक पुरुष को उसकी कुटी में, ताजा घी और शहद के साथ पेट भरकर प्रतिदिन सुबह को एक बार, ऐसे तीस दिन तक दें। भूख लगने पर काली गाय का दूध समय-समय पर पीने को दें। ठण्डा पानी वर्जित है। ऐसा करने से ग्यारहवें दिन रसायन सेवी के बाल, नाखून और दाँत झड़कर गिर जायेंगे। थोड़े दिन बाद वह पुरुष देखने में सुन्दर, बुद्धिमान् और बलवान् होकर कुटी से बाहर निकलेगा।

इस रसायन-प्रयोग का कौन अधिकारी है—इस समस्या पर सुश्रुत और वाग्भट ने विचार किया है। दोनों का मत है कि पूर्व या मध्य वय में इसका प्रयोग करना चाहिए, बीच में या तदुपरान्त नहीं। वाग्भट सोलह साल तक बाल्यावस्था और ६६ साल तक मध्यावस्था मानते हैं। पर सुश्रुत २० से २२ वर्ष तक पूर्व वय और ५० से ६६ वर्ष तक मध्य वय मानते हैं। शास्त्री जी का भी यही मत है।

शरीर-शुद्धि के बाद मैं २६ जनवरी, १९३६ से ७ अप्रैल, १९३६ तक कुटी में रहा। यह कुटी-निवास का वृत्तान्त बड़ा रोचक है।

मैं सबसे भीतर की कोठरी में रखा गया था। यहाँ बिल्कुल अँधेरा था। इसलिए; यहाँ और कुटी के बाहर के दोनों घेरों में एक-एक घी का दीपक रात दिन जला करता था। बाहरी घेरे का द्वार पूर्व की ओर, बीच के घेरे का उत्तर की ओर और सबसे भीतर वाले घेरे का द्वार पूर्व की ओर था। इस कारण हवा और रोशनी भीतर नहीं पहुँच पाती थी। किसी आदमी को अन्दर आने की इजाजत न थी, क्योंकि भय था कि कहीं उसकी साँस से वह थोड़ी हवा भी, जो दीवार के छिद्रों से आती थी, दूषित न हो जाय। मैं न तो कुछ लिख सकता था और न पढ़ सकता था। दूसरे और तीसरे घेरे में प्रातःकाल दो घण्टे धार्मिक पुस्तकों और मंत्रों का पाठ हुआ करता

था, दोपहर बाद लगभग एक घंटे भागवत का पाठ होता था और सायंकाल को थोड़ी देर रामायण का पाठ होता था—मैं अपनी कोठरी में यह सब सुना करता था। मैं खादी की धोती पहनता था, खादी ही ओढ़ता और कुछ दिन तक रात को लकड़ी की चौकी पर कम्बल ओढ़ कर सोया करता था। बाद में मुझे निवाड़ की खाट मिल गयी। शास्त्री जी ने अपने शिष्य श्रीयुत् पं० श्रीनिवास शास्त्री और उनके शिष्य श्रीयुत् नारायण शास्त्री को मेरी सेवा में नियुक्त कर दिया था। नारायण शास्त्री का यह काम था कि वे प्रतिदिन प्रातःकाल ओषधि तैयार करते थे और जब उनके गुरु श्री निवास शास्त्री मुझे देख जाते थे, तो वह दवाई मुझे देते थे। दिन भर के लिये वे मुझे नसीहत दे जाते थे। उनका कहना था कि निश्चिन्त रहो और संसार का हित चिन्तन करो। मैं मन ही मन प्रार्थना किया करता था और गीता के श्लोकों का पाठ किया करता था। शाम को दोनों साथ-साथ आते थे और दिनभर का हाल सुनकर टेलीफोन से शास्त्री जी को बताते थे। कभी-कभी मेरी प्रार्थना स्वीकार करके शास्त्री जी स्वयं मुझे देखने आते थे।

बनारस शहर से ५ मील की दूरी पर मेरे परम मित्र श्री दामोदर जी जोशी का एक गाँव है, जिसका नाम रामरे-पुर है। इस गाँव में एक विशाल बाग है, जिसके चारों तरफ एक ऊँची दीवार खिंची हुई है। बाग के भीतर एक बाड़ा है। इस बाड़े से १०० या १५० फीट की दूरी पर कुटी की रचना की गयी थी। इसी बाड़े के एक कमरे में टेलीफोन की स्थापना की गयी थी और इसी के दो-तीन कमरों में नारायण शास्त्री, सब ब्राह्मण मंडली और आश्रित वर्ग के साथ रहा करते थे। वहीं एक आलमारी में नारायण शास्त्री ने औषधालय बना लिया था।

जिस रोज मैंने कुटी में प्रवेश किया, उस रोज (पकाये हुए) १६ आँवले, डेढ़ छटाँक घी और दो छटाँक शहद के साथ खाये। ऊपर से तीन पाव दूध पिया। रात को फिर दूध पिया। दूसरे दिन फिर सुबह को बीस आँवले, दो छटाँक घी और ढाई छटाँक शहद के साथ खाये। दिन में लगभग तीन सेर दूध पिया। तीसरे रोज २३ आँवले, दो छटाँक घी और तीन छटाँक शहद के साथ खाये। दिन में दूध पिया। पर उसी रात को जोर का पातो बरसा और बाहरी दोनों कोठरियाँ टपकने लगीं। मुझे

भी कुछ सर्दी लग गयी, नाक बहने लगी और नाड़ी का वेग बढ़ गया। पहले तो यह समझा गया कि रसायन के प्रभाव से शरीर में परिवर्तन हो रहा है, इसलिये चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु, शीघ्र ही अजीर्ण के लक्षण प्रकट होने लगे और यह प्रकट हो गया कि उसका कारण शहद की अधिक मात्रा है। तब तो सब लोगों को बहुत चिन्ता हुई, क्योंकि आयुर्वेद में मधु के अजीर्ण को दुःसाध्य बतलाता है। शास्त्री जी ने तुरन्त ही रसायन का सेवन कुछ काल के लिये बन्द करा दिया। वे एक चूर्ण देते थे, जिससे धीरे-धीरे भूख बढ़ने लगी और मैं दूध पीने लगा। थोड़े दिन बाद अल्प मात्रा में रसायन का प्रयोग फिर शुरू कर दिया।

अजीर्ण के कारण शरीर दुर्बल हो गया था, कमजोरी बढ़ गयी थी और नींद नहीं आती थी। रात-रात भर जागता रहता था। फिर भी मैं अपने निश्चय पर अटल रहा—इसे परमात्मा की दया और शास्त्री जी का आशीर्वाद ही कहना चाहिए। तीस दिन तक बराबर बिना रसायन लिये कुटी से बाहर न निकलूँगा—ऐसा मेरा निश्चय था। वृत्रासुर वध के लिये जिस प्रकार दधीचि ऋषि ने वज्र निर्माण के लिये अपने शरीर की हड्डियाँ इन्द्र को अर्पण कर दी थी, उसी प्रकार रसायन प्रयोग के लिये मैंने अपना शरीर शास्त्रीजी को अर्पण कर दिया था।

इस प्रकार ५३ दिन सब से भीतरी कुटी में रहने के बाद २३ मार्च, १९३६ को शास्त्री जी की आज्ञा से मैं दूसरे घर में आया। यहाँ हवा और रोशनी कुछ अधिक थी। आठ दिन इस घरे में रख कर ३१ मार्च, १९३६ को शास्त्री जी मुझे तीसरे घर में ले गये। वहाँ जाते ही संसर्जन क्रम शुरू करा के चार-पाँच रोज में साधारण भोजन दिया जाने लगा। हजामत बनवायी गयी और स्नान कराया गया। ७ अप्रैल, १९३६ को देवताओं का दर्शन कराते हुए शास्त्री जी मुझे कुटी से बाहर वहाँ ले गये, जहाँ नारायण शास्त्री रहा करते थे। तीन चार रोज वहाँ रह कर मैं ११ अप्रैल को अपने काम से रायबरेली गया और १५ रोज बाद २६ अप्रैल को फतेहपुर आया।

कुटी से बाहर निकलते समय मेरा शरीर दुर्बल तो जरूर था, लेकिन उस पर ललायी और कान्ति थी। वर्ण तो इतना गौर हो गया था कि कुछ लोग कहते थे कि ऐसा कभी देखा ही न था। इस बात का सब को अचरज मालूम होता था। लेकिन; यह रसायन का ही प्रभाव था। क्षुधा बहुत जोर से लगती थी। पाचन शुद्धि हो कर वजन तेजी से बढ़ने लगा। तीन-चार महीने तक यही हालत रही। नैनीताल से लौटने पर मेरा वजन १५० पौंड था, अब १६० पौंड है। कुटी से बाहर आते समय वजन १०८ पौंड था।

वाग्भट्ट ने रसायन का जो फल लिखा है, वह ज्यों का त्यों नहीं मिला; फिर भी आज जैसी मेरी तबीयत है, वैसी बीस साल पहले तक कभी नहीं रही। इस समय मेरी अवस्था ५८ वर्ष ८ माह है और ऊँचाई पाँच फीट दस इंच है। इस अवस्था में इतना वजन बढ़ जाना आश्चर्यजनक है। स्वानुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि यदि रसायन विधि निर्विघ्नता से पार लग जाय, तो जो फल शास्त्र में लिखा है, वह अवश्य मिलेगा। फलश्रुति अलंकार युक्त होते हुए भी सचाई से दूर नहीं है।

मुझे जो फल प्राप्त हुआ, वह शास्त्री जी के प्रसाद और आशीर्वाद का रूपान्तर है। इससे बढ़कर शास्त्रीजी का क्या अनुग्रह हो सकता है? इस उपकार से मैं कभी उक्लान नहीं हो सकता। इसी प्रकार श्रीनिवास शास्त्री और श्रीनारायण शास्त्री के उपकारों को भी मैं कभी नहीं भूल सकता। इसके अतिरिक्त जिन सज्जनों ने कुटीनिर्माण तथा अन्य सामग्री जुटाने में सहयोग दिया है, उनका भी मैं आभारी हूँ।

सर राधाकृष्णन ने अपने पटना वाले भाषण में कहा था कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में संसार की संस्कृति को बहुत ऊँचे दर्जे तक पहुँचा दिया गया था। आध्यात्म विद्या में ही नहीं, बल्कि भौतिक विज्ञान में भी उसने बहुत उन्नति की थी। आज नये वस्त्र धारण कर के जो शास्त्र इस संसार में उतर आये हैं, उनमें से अनेक प्राचीन भारत में अत्यन्त श्रेष्ठ पद पर पहुँच चुके थे, इस में शंका करने की आवश्यकता नहीं है। आजकल भी इन शास्त्रों के ज्ञाता पंडित इस देश में विचरते हैं—इस बात का परिचय हमको एक अंग्रेज ने जिसका नाम ब्रैडबरी फिलिप्स था। अपने एक लेख में दिया है, जो 'Aryan Path' (आर्यन पथ) नामक पत्र में, अगस्त, १९३५ के अंक में, "Lime Juice mustard Oil" शीर्षक के नीचे प्रकाशित हुआ है। इसी लेख को 'लीडर' और 'हितवाद' ने भी मेरे आग्रह से उद्धृत किया है। हमारे ऋषि-मुनि जिज्ञासा और पात्रता की कठिन परीक्षा लिये बिना विद्यादान नहीं करते थे, पर आज तो प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक प्रकार की विद्या प्राप्त करने का अधिकारी माना जाता है। और, दोनों के समान विद्यादान को भी पात्रता की अपेक्षा है। इस सिद्धान्त का परिचय कराने के लिये यूरोप में एक महा-युद्ध तो समर्थ न हो सका, संभव है दूसरा भी न हो। हमारा दुर्भाग्य कि जिस संस्कृत भाषा में हमारा ज्ञानभांडार और हमारा सर्वस्व है—हमारा ही नहीं, सारे संसार के कल्याण का बीज निहित है, उसी का हमारे देखते-देखते उत्तरोत्तर लोप हो रहा है।

अर्श :: उनका निदान, लक्षण और चिकित्सा

वै० छगनलाल रायजी

इस लेख के लेखक सूरत के वैद्य छगनलाल चुनीलाल रायजी अर्श और भगन्दर की आयुर्वेदिक चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं। यह विद्या उन्हें वंश परम्परा से प्राप्त हुई है। इस लेख में आपने संहिता और प्रत्यक्ष दर्शन से अर्श का निदान और लक्षण सादी भाषा में लिख कर अन्त में वही चिकित्सा लिखी है जिसका व्यवहार वे अपने चिकित्सा-कर्म में करते हैं। आशा है, विज्ञ वाचक इससे लाभ उठावेंगे

—स० संपादक

अर्शों के भेद तथा निदान

पृथग् दोषैः समस्तैश्च शोणितात् सहजानि च ।

अर्शास्ति षट् प्रकाराणि विद्याद् गुदवलित्रये ॥

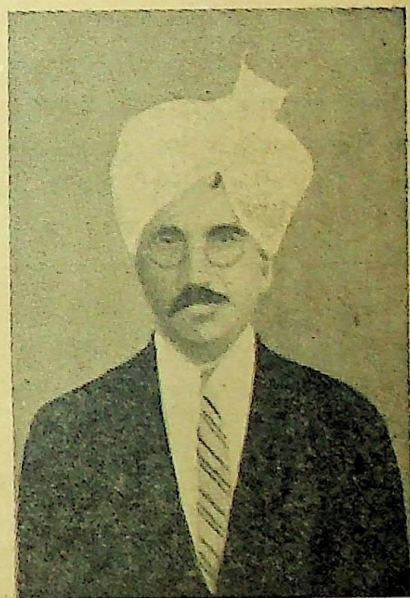
—माधव निदान

अर्श का प्रसिद्ध नाम बवासीर या मूलव्याधि है। इसके छः भेद हैं—प्रत्येक दोष से पृथक्-पृथक् होने वाले तीन, तीनों दोषों के समवाय से होने वाला एक, रक्त प्रधान एक और सहज नाम जन्म से होनेवाला एक अर्श मुख्यतया मलद्वार के अंगभूत तीन आवर्तों या वलियों पर होते हैं। इन आवर्तों के नाम ये हैं : प्रवाहणी, विसर्जनी और संवरणी ।^१

वायु आदि दोष त्वचा, मांस और मेद एवं स्थानीय रक्त को दूषित कर अपान नाम मलद्वार आदि स्थानों पर^२ विभिन्न आकृति के मांसांकुरों अर्थात् मांस की वृद्धियों को उत्पन्न करते हैं। इन्हें अर्श कहते हैं। दोष-भेद से इनके उत्पादक कारण अधोलिखित हैं।

कषाय, कटु, तिक्त, रूक्ष (रूखे-सूखे), अति शीत और अति लघु अन्नपान का सेवन, अल्प भोजन, तीक्ष्ण-मादक द्रव्यों का उपयोग, अति मैथुन, अति अनशन, शीत

प्रदेश में बैठ रहना, थकावट पहुँचे ऐसा अतिश्रम, शोक, अति वायु अथवा अति धूप में फिरना इन कारणों से वातज अर्श होते हैं ।



लेखक

कटु, अम्ल, लवण (खारे) और उष्ण पदार्थों का सेवन, व्यायाम, अग्नि के पास किंवा धूप में बैठना या फिरना, उष्ण देश, उष्ण काल, क्रोध, मदिरापान, ईर्ष्या—ये पित्तार्श के कारण हैं ।

मधुर, पिच्छिल, शीत, अम्ल, लवण और गुरु द्रव्यों का सेवन, श्रम न करना, दिवाशयन, सदा कोमल शय्या या गद्दी पर बैठे रहना, प्रातः पूर्व दिशा के वायु का सेवन, शीत देश, शीत काल, निश्चिन्तता—ये कफज अर्श के कारण हैं ।

१—सचित्र आयुर्वेद के सुविदित लेखक वैद्य रणजित रायजी ने अपनी 'छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा, लेखमाला' में, सचित्र आयुर्वेद के जुलाई, १९५१ के अंक में पृष्ठ १७-१९ पर इन आवर्तों का प्राचीन और नवीन मत से विवरण दिया है। प्रेमी पाठक उस प्रकरण को एक बार पुनः देख जायें—स० संपादक ।

२—'आदि' पद से अपत्यपथ (योनि,) नासिका आदि का ग्रहण है ।

पृथग्दोषोत्थ अशों के जो कारण कहे हैं वे मिलकर त्रिदोषज अशों को उत्पन्न करते हैं। इनके और सहज अशों के लक्षण समान होते हैं।

अशों के पूर्वरूप

जिस पुरुष को अश होने वाले हों उसमें अश होने के पूर्व ये लक्षण प्रकट होते हैं : विष्टम्भ (विबन्ध और उदर में स्तब्धता) के साथ अन्नपान का पचन, दीर्घत्व, उदर में गुड़गुड़ी, शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होता जाना, अति उद्गार, जाँघों का शैथिल्य, मल का क्षय (अल्पता); ग्रहणी (संग्रहणी) अथवा पाण्डुरोग की भ्रान्ति; किंवा उदर रोग, ग्रामवात, अजीर्ण जन्य वायु या जलोदर से वस्ति-प्रदेश के उत्सेध (उभरना) की भ्रान्ति।

अशों के लक्षण

वात प्रधान अश के अंकुर-शुष्क, स्याव रहित, मन्द-मन्द एवं चिऊँटी काटती हो ऐसी वेदना से युक्त, मुर्झाए-से काले-लाल, जिन्हें मोड़ा न जा सके ऐसे, कठिन, रुखे-सूखे, फीके, खुरदरे (गाय की जीभ-जैसे), टेढ़े-मेढ़े, अणीदार, एक दूसरे से भिन्न आकृति वाले; जिनमें कड़ियों के मुख टूट गये तथा खुण्डे हों ऐसे; जिनका देखाव कुन्दुर (बिम्बी; गुजराती-गिलोड़ा) बर, छुहारे या कपास के फल-सदृश हो ऐसे; कोई कदम्ब के फूल-जैसे; छोटी-बड़ी अनेक अणियों वाले एवं कई सरसों के समान पीली और बारीक फुन्सियों वाले होते हैं। इन अशों के कारण माथा, पसली, कमर, जाँघ तथा अण्ड-सन्धियों (वक्षण) में रोगी को अति वेदना होती है। उसे छींक, उद्गार, मल-मूत्र का विबन्ध, हृदय जकड़ गया हो ऐसी वेदना, अन्न पर अरुचि, खाँसी, श्वास, अन्न का पचन बहुत देर में होना, कानों में गनगनाहट और चक्कर होते हैं।

इन अशों से पीड़ित रोगी को टट्टी पत्थर-जैसी कठिन, कुछ शब्द-सहित, कुछ पतली, द्रव, पीडायुक्त, ज्ञागवाली और जोर करने पर कठिनाई से होती है। रोगी की चमड़ी, नाखून, विष्ठा, मूत्र और आँखें काली पड़ जाती हैं। अश के कारण गुल्म, तिल्ली इत्यादि रोग हो जाते हैं।

पित्त की अधिकता से होने वाले अशों के अंकुर आगे से आसमानी रङ्ग के और शेष भाग में लाल-पीले-काले होते हैं। उनमें से पतला लहू बहता है। उनकी गन्ध मुँद-जैसी होती है। उनका स्वरूप तोते की चोंच,

यकृत के टुकड़े अथवा जोंक के मुख-जैसा होता है। उनके कारण रोगी को ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, भोजन पर अरुचि, शरीर में जलन और गुदपाक होता है। उसे अपक्व और रक्त मिश्रित टट्टी होती है। उसकी चमड़ी, नख, नेत्र आदि हरे, पीले और हलदी के रङ्ग के होते हैं।

कफ के आधिक्य से होनेवाले अशों के अंकुर महामूल अर्थात् गहरी जड़ वाले होते हैं। वे भरावदार, थोड़ी वेदनावाले; श्वेत, लम्बे अथवा ऊँचे उभरे हुए, ठोस; स्निग्ध, न मुड़ सकें ऐसे, गोलाकार, मल-द्वार पर जिनके कारण भार मालूम पड़े ऐसे, स्थिर, चिकने, भीने, कोमल, जिनमें मीठी-मीठी खाज आवे ऐसे, जिन पर स्पर्श से सुख हो ऐसे एवं पनस (कटहल) की गुठली के समान देखाव वाले होते हैं। उनके कारण पेड़ू (वस्ति-प्रदेश) और नाभि पर खँचाव की-सी पीडा होती है। उनके कारण मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रयन्त्र के रोग होते हैं। रोगी के नेत्रादि श्वेत होते हैं।

सन्निपात तथा सहजात अश तीनों दोषों से उत्पन्न अशों के मिलित लक्षणों वाले होते हैं। कारण, उनके हेतु तीनों दोष होते हैं।

रक्त के प्रकोप से होनेवाले अशों के अंकुर पित्त के आधिक्य से होने वाले अशों के तुल्य होते हैं। इनकी आकृति बट के अंकुरों तथा रस्ती के समान होती है। कई अश प्रवाल की गाँठों के मध्य भाग के सदृश लाल रङ्ग के होते हैं। शीघ्र के समय रक्तार्श के अंकुरों से मल के दबाव के कारण उष्ण रक्त की धारा निकलती है, जिससे रोगी मेढक-सरीखा पीला हो जाता है।

वातादि भेद से रक्तार्श के लक्षण

जिस रक्तार्श के रोगी में पतला, लाल और फेन (झाग) युक्त लहू पड़ता हो, कमर, जाँघ और मलद्वार पर शूल होता हो, दुर्बलता बहुत आ गयी हो, एवं अश के अंकुर किन्हीं रुखे-सूखे भोज्य द्रव्यों के सेवन इत्यादि से हुए हों तो ये रक्तार्श वातप्रधान दोषों से हुए हैं यह समझना चाहिए।

जिस रक्तार्श के रोगी को शिथिल (ढीला), श्वेत, पीली, स्नेहयुक्त (चिकनी) और ठण्डी टट्टी होती हो और अंकुरों में से गाढ़ा, तन्तुयुक्त, श्वेत और चिकना लहू बहता हो, रोगी की गुदा स्यावयुक्त और चिकनी रहती हो,

अन्न का पचन न होता हो तो रक्ताश में कफ का सम्बन्ध है यह भानना चाहिए ।

पित्ताश और रक्ताश के लक्षण एक समान ही देखने में आते हैं ।

अर्शों की त्रिदोषात्मकता

पञ्चात्मा सारतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम् ।

सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥

तस्मादर्शासि दुःखानि बहु व्याधिकराणि च ।

सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कुच्छ्रतमानि च ॥

च० चि० १२।२४-२५

मलद्वार के तीनों आवर्त नाम प्रवाहणी, विसर्जनी और संवरीणी अर्श के अंकुरों की उत्पत्ति में विकृत हुए होते हैं । इसी प्रकार पाँचों बाल, पाँचों पित्त और पाँचों कफों का इस रोग में प्रकोप हुआ होता है । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यास—ये पाँच वायु के भेद हैं । हृदय, मलद्वार नाभि, कमर और सम्पूर्ण शरीर इनकी विकृति के स्थान हैं । आलोचक, रञ्जक, साधक, पाचक और भ्राजक—ये पाँच प्रकार के पित्त हैं । ये अनुक्रम से नेत्र, यकृत, हृदय, उदर और त्वचा में रहते हैं । कफ के पाँच भेद ये हैं—अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक । दोषों के सभी भेदों का प्रकोप एवं तीनों ही वलियों की विकृति अर्श रोग में कारण होने से अर्श दुःखदायक तथा अनेक रोग (उदररोग और अग्निमान्द्य आदि) उत्पन्न कर सारे शरीर में पीड़ा उत्पन्न करनेवाले होते हैं । उनकी चिकित्सा इसी कारण कठिन होती है ।

अर्श की सुख साध्यता के लक्षण

अर्श के अंकुर यदि गुद की पहली वली में हुए हों, केवल एक दोष के प्रकोप के कारण हुए हों, और जिन्हें हुए एक वर्ष बीता हो तो वे अर्श साध्य हैं (चिकित्सा से मिट सकते हैं) ।

कष्ट साध्य अर्श के लक्षण

जो अर्श दो दोषों से हुए हों, जिनके अंकुर गुद की दूसरी वली पर फूटे हों एवं जिन्हें हुए एक वर्ष बीत चुका हो वे कष्टसाध्य होते हैं । अथ च—

जो अंकुर पहली (बाहर की) वली पर हुए हों, जिनका कारण दो दोषों का प्रकोप हो वे कष्ट साध्य होते हैं । एवम्—

जिनके अंकुर एक दोष के प्रकोप से हुए हों तथा जिनका प्रादुर्भाव दूसरी वली पर हुआ हो वे भी कष्टसाध्य होते हैं ।

असाध्य अर्श के लक्षण

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् ।

जायन्तेऽर्शासि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥

च० चि० १२।२८

जो अर्श तीनों दोषों से हुए हों, अथवा जो सहजात नाभ जन्म से हुए हों (वा रस में मिले हों), तथा जिनके अंकुर तीसरी वली में भी जा पहुँचे हों वे असाध्य होते हैं । तथापि रोग यदि चतुष्पाद-संपत्ति युक्त हो अर्थात्—वैद्य, औषध रोगी और परिचारक इन चारों में जो गुण होने चाहिए वे गुण हों; संक्षेप में रोगी का अग्नि प्रदीप्त हो तो रोग कुछ अंश में निवृत्त होता है—दब जाता है । परन्तु, ये साधन अच्छे (गुणवान्) न हों तो रोगी के जीवन की आशा व्यर्थ है ।

असाध्यता के अन्य लक्षण

जिस अर्शरोगी के हाथ, पैर, मलद्वार, नाभि, मुख और अण्ड कोश पर सूजन आ जाय तथा जिसके हृदय और पसलियों में वेदना होती हो तो उसका रोग नहीं मिटता । अपरं च, जिस रोगी को तृषा, अन्न पर अरुचि तथा शूल हों, जिसका रक्त बहुत निकल चुका हो और शरीर पर शोथ होकर जिसे अतिसार हो गया हो, उस रोगी का नाश किये बिना रोग नहीं हटता । इसी कारण—

तेषां प्रशमने यत्नमाशु कुर्याद्विचक्षणः ।

तान्याशु हि गुदं बद्ध्वा कुर्युर्बद्ध गुदोदरम् ॥

च० चि० १२।३२

अर्शसां प्रशमे चित्तमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् ।

तान्याशु हि गुदं बध्म कुर्युर्बद्ध गुदोदरम् ॥

—पाठान्तर

बुद्धिमान् पुरुषों को अर्श के उपचार का यत्न शीघ्र करना चाहिए । कारण, अर्श चालू रहे तो गुदके अन्य रोग वर्ध्म तथा बद्ध गुदोदर हो जाते हैं । अस्तु, अब अर्श की चिकित्सा देखिए ।

वातिक अर्श का उपचार—

रोगी को पहले संडास में बैठावे । टट्टी होने पर अर्शयुक्त भाग बाहर आ जायगा । टट्टी की शक्का न हो

तो रोगी को लेटा कर प्रवाहण करने को कहें। इससे भी रुग्ण भाग बाहर आ जाता है। अब अंकुरों को भली-भाँति धो दें। रक्त गिरता हो तो फिटकिरी के पानी से धोएँ। अथवा दो बाल हीराकसी पानी में डालकर उसके फाहे रखें। बाद में फिटकिरी के पानी से धोएँ और अंकुरों को बाहर रहने दें। दो-दो घण्टे से फिटकिरी के पानी के फाहे रखते रहें। जब अंकुर (मस्से) फूल कर बाहर हो जायें तब औषधोपचार करें। इसमें ये औषध दें। अपामार्ग के बीज दो तोला, सौवर्चल दो तोला, धमासा दो तोला, सज्जीखार दो तोला। इनका बारीक चूर्ण ले सोलह तोला तैल और उससे चार गुना गाय का मूत्र मिला चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि दें। जब मूत्र का भाग जल कर केवल तेल शेष रह जाय तब उतार कर शीशी में भर लें। इस तेल में रूई भिगो मस्सों पर रखें। इससे मस्से सूख कर झड़ जाते हैं।

पित्ताधिक अर्शका उपाय

रोगी को टट्टी के लिए बैठा कर अंकुर बाहर निकालें। पश्चात् बेरी के मूल के काढ़े से उन्हें धोएँ और कड़वी तोरई के पत्तों का रस निकाल उसमें माजूफल का चूर्ण डाल उसमें रूई भिगो मस्सों पर रखें। दो-तीन दिन इस प्रकार करने से मस्सों की वेदना कम हो जाती है।

अन्य उपाय—माजूफल, अफीम, हीरादक्खन और कपूर सम भाग लेकर गाय के घी में मलहम बनाएँ तथा मस्सों पर लगावें। इससे लहू बन्द होगा तथा मस्से मुर्झा जायेंगे।

तीसरा उपाय—अंकुर अन्दर हो और रोगी को वेदना होती हो तो पहले रोगी को एरण्ड तैल का हलका जुलाव दें। बाद में निमोली का तेल, मुर्दासंग, राल और सुपारी का चूर्ण ले तेल में द्रव्यों को बारीक घोंट इस तेल की पिचकारी गुदा में दें। इससे मस्सों की सूजन कम होकर वेदना तुरन्त शान्त होगी।

कफजन्य अर्श का उपचार

मस्सों की वेदना शान्त करनी हो तो एरण्ड बीजकी मज्जा (गिरी), श्वेत साबुन, कत्था, निमोली, फिटकरी और मेंहदी के पत्तों का रस ले सब औषधों को घोटें। मरहम जैसे हो जाने पर मस्सों पर चुपड़ें। इससे दो दिन में वेदना शान्त हो जाती है।

अन्य उपाय—कड़वी तोरई के बीज १० तोला, माजू-

फल १ तोला, अरणी के मूल १ तोला, हीरा दक्खन १ तोला, कपूर १ तोला सब वस्तुओं को बारीक कपड़छन चूर्ण कर गाय के मक्खन में मलहम बनाएँ और मस्सों पर लगाएँ। इससे मस्से सूख जाते हैं। यह मलहम हम अपने दवाखाने में वर्षों से उपयोग में ला रहे हैं। इससे मस्से नष्ट हो जाते हैं—झड़ते नहीं।

तीसरा मलहम—तबकी हड़ताल १ तोला, कत्था ३ तोला, कपूर दो आना भर। गाय के घी में मलहम बनाएँ। अर्श पर लगाएँ। इससे अर्श सूख जाते तथा रोग मिट जाता है। लहू गिरता हो तो खाने को दो आनी भर फिटकरी पानी में दें। या नागकेशर १ तोला, इलायची १ तोला, भिसरी २ तोला, मुलतानी मिट्टी १ तोला। इनका चूर्ण बना मक्खन के साथ दें। इससे लहू गिरना बन्द होता है।

शोथ और शूलयुक्त अर्श को प्रथम चित्रकक्षार और बिल्वफल के कल्क द्वारा सिद्ध तैल से मृदु करें। कुलत्थ और चावल के आटे की पुल्टिस (उपनाह) से सेक करें। घोड़े की लीद से सिद्ध किया तैल मस्सों पर लगाएँ।

अर्श झाड़ने के उपचार

हलदी १ भाग, निर्मली १ भाग, चन्दन का बुरादा १ भाग, और सोमल २ भाग को घोट कर गुटी बनायें। यह गुटी अंकुरों पर चुपड़ें। यह औषध बड़ी सावधानी से लगानी चाहिए। कारण, पहले दिन जिस मस्से पर दाग लगाया हो उसी स्थान पर दूसरे दिन दाग न लगाना चाहिए। अन्यथा, आसपास दूसरा दाग लगकर व्रण हो जायगा। चार-पाँच दिन यह औषध लगाने से मस्से काले पड़ जायेंगे। पश्चात्, चावल का आटा १ तोला, हलदी १ तोला, घी १ तोला—योग्य मात्रा में जल डाल कर उपनाह (पुल्टिस) बनाएँ। पाँच-छः दिन उपनाह लगाने से चिपटा हुआ अंकुर झड़ जायगा। बाद को नीचे लिखे मलहम लगाएँ।—पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, मुर्दासंग १ तोला, कपीला १ तोला और कत्था १ तोला; गाय के घी में मलहम बनाकर लगाएँ।

दूसरा उपचार—लाल सोमल, श्वेत सोमल, सुवर्ण गेरिक, कपूर इन द्रव्यों को केले के पानी में मिला मस्से पर दाग लगाएँ। पाँच-छः दिन में मस्से जल जायेंगे। बाद को प्याज और चावल के आटे का उपनाह बना बाँधें। इससे

मस्से निर्मूल हो जायेंगे। यह उपाय चालू करने पर रोगी को नीचे लिखे छाल के क्वाथ बनाने के लिए झड़बेरी के मूल और बबूल की छाल दें। यह उपचार हमने कई वर्षों के अनुभव से सिद्ध किया है।

अन्य उपाय—बुझा चूना, सज्जीखार, पापड़खार सम भाग लें बारीक धोंट कर मस्सों पर दाग करें। मस्से जल जायेंगे। पश्चात् नीचे लिखा मलहम लगाएँ।—
राल १ तोला, शतधौत घृत १० तोला; मिलाकर थोड़ा गरम करें।

जो मस्से दूसरी वली में हों और बाहर न आते हों उन्हें हम सुई से बाँधकर उसमें डोरा पिरो देते हैं। इस क्रिया को 'मस्से बाँधना' कहा जाता है। जो डोरा पिरोया जाता है उसे थूहर के दूध में भिगोकर सुखा लेते हैं। मस्से को सुई से बाँधकर डोरा मस्से में ही रहने दें। इससे अन्दर का मस्सा खिचकर बाहर आ जाता और झड़ जाता है। डोरा पकड़ कर धीरे-धीरे बाहर की ओर खींचें। मस्सा बाहर आवे कि थूहर के दूध में हलदी घिसकर उसका दाग करें। पाँच दिन में मस्से झड़ जायेंगे। बाद में डोरे पर नीचे लिखा मलहम चुपड़ें।
कल्था १ तोला, राल १ तोला, हरताल ३ तोला; गाय के घी में मलहम बना कर चुपड़ें।

इसी पद्धति से हम भगन्दर के नासूर (नाड़ी व्रण) में डोरा पिरोकर उसको खुला करते हैं। इस क्रिया द्वारा नाड़ीव्रण और गुदा के बीच की चमड़ी का भाग कटना चाहिए। कटने के बाद उसे रुझाना चाहिए। रुझाने के लिए नीचे लिखा निम्बादि तैल रुई में भिगोकर लगाना चाहिए। नीम के पत्ते ४० तोला, मीठा तेल ४० तोला, मुर्दासंग २ तोला; तैल-पाक विधि से तैल तैय्यार करें।

अर्श के लिए धूनी (धूपन)

पुरुष के बाल, साँप की केंचुली, बिल्ली की चमड़ी,

आक की जड़, शमी वृक्ष के पत्ते—सब का चूर्ण कर २ तोला घी डाल उसकी धूनी दें। अथवा—

तैडु (गुजराती-टीवह), विडङ्ग और देवदारु इन्हें घी में मिला इनकी धूनी दें। अथवा—

चूहे के बाल, बड़ी कटेरी के फल, असगन्ध, पिप्पली और तुलसी—इन्हें घी में मिला धूनी दें। अथवा—

सींग के फूल (वर्षा में मरे हुए ढोरो के पड़े सींगों पर फूल-सा निकल आता है वह), बिल्ली की बिछा, सूअर की बिछा—इनकी धूनी दें। अथवा—

हाथी की लीद, इन्द्रियव, राल और गूगल इनमें घी मिला उसकी धूनी दें।

अर्श पर लेप

हलदी की अच्छी गाँठ ले उसे थूहर के दूध में रखें। सात दिन इस प्रकार दूध में रखें। दूध रोज बदलते रहें। बाद उसे सुखा, घोट कर रखें। गाँठ न लेकर हलदी को पहले से ही घोट कर भी दूध पिलाया जा सकता है। इसका मस्सों पर लेप करें। अथवा—

पिप्पली और हलदी गाय के पित्त में घोट उसका लेप करने से भी मस्से सूख जाते हैं। अथवा—

सिरस के बीज, कूठ, पिप्पली, सैन्धव, गुड़, त्रिफला—सम भाग ले आक के दूध में घोटें। बाद में थूहर के दूध में घुटाई करें। सँभाल कर मस्सों पर लगाएँ, इससे मस्से सूख जायेंगे। अथवा—

हरताल, मायूफल और आक की जड़ घिस कर लेप करें। इससे अर्श की वेदना शान्त होती है और सूजन दूर होती है। अथवा—

आक के पत्ते, थूहर की डंडी, कड़वी तुम्बी के पत्ते और करञ्ज—इन्हें बकरी के मूत्र में घोट कर लेप करें। इससे मस्से झड़ जाते हैं।

मृद्भक्षण जन्य पाण्डुरोग

एक अनुभव

वैद्य प्रभुभाई

भोज्य द्रव्यों के समान मृत्तिका भी शरीर में जाकर रस-भेद से तत्तत् दोष को प्रकुपित करती है। तद् यथा—कषाय-रस मृत्तिका वायु को, लवण-रस पित्त को और मधुर-रस कफ को प्रकुपित करती है। तत्तद्रस प्रधान मृत्तिका के अतियोग से हुए दोष-प्रकोप की प्रथम स्मरणीय विक्रिया महास्रोत के रसवह स्रोतों पर होती है। पक्व हुए अन्नरस का ग्रहण महास्रोत में स्थित जिन स्रोतों से होता है उनका यहाँ 'रसवह स्रोत' शब्द से ग्रहण है। नव्य मत से प्रोटीनों के रसगत अंश एमाइनो एसिड नामक परिणत द्रव्यों तथा शर्कराओं का ग्रहण केशिकाओं से एवं स्नेहों के पक्वांश का ग्रहण पयस्विनी (लेक्टिअल) नामक स्रोतों से होता है। दोनों ही स्रोत रसांकुरिका (विल्लार्ड) संज्ञक महास्रोत की कला के सूक्ष्म उभारों के अन्दर रहते हैं। इन उभारों के कारण महास्रोत भीतर से मलमल के सदृश मृदु-स्पर्श होता है। नवीनों के मत से जो स्रोत 'लिम्फ' का वहन करते हैं वे तो रसवह हैं ही, रक्त (ब्लड) का वहन करने वाले स्रोत भी आयुर्वेद-मत से रसवह स्रोत ही हैं। कारण, 'ब्लड' का द्रव अंश 'प्लाज्मा' तथा 'लिम्फ' दोनों रासायनिक स्वरूप की दृष्टि से सर्वथा समान हैं। एवं, शरीर के पोषण-तर्पणादि जो कर्म आयुर्वेद में रस धातु के कहे हैं वे लिम्फ के अतिरिक्त 'प्लाज्मा' पर भी घटित होते हैं। अपने प्राकृत कर्म करने के लिए हृदय से प्रस्थित हो, सर्वशरीर में संचरण कर पुनः हृदय में आना—रस का यह लक्षण भी प्लाज्मा पर सविशेष चरितार्थ होता है। सो, ये दोनों ही द्रव्य आयुर्वेद के रस-धातु समझने चाहिए। अतश्च, नव्यमत से जो रक्त वहन करने वाले स्रोत हैं वे 'प्लाज्मा' का भी वहन करने वाले होने से आयुर्वेद के भी रसवह स्रोत हैं। रक्तवह स्रोत नव्य मत से क्या है इसका विचार किसी अन्य लेख में करेंगे।

अस्तु, शरीरान्तर्गत अन्य स्रोतों के सदृश रसवह

स्रोतों का भी दोष-प्रकोप-वश अवरोध होता है। प्रकर-णान्तर में ऐसे अवरोध को स्रोतो वैगुण्य, स्रोतो दुष्टि, स्रोतोरोध आदि नाम ग्रन्थों में दिये गये हैं। स्रोत के अवरोध का अर्थ दोष-प्रकोप-वश स्रोत के अन्तर्गत विवरका अवकाश न्यून होना है। दोष-भेद से विवरान्तर्गत अवकाश के न्यून होने का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। वायु का प्रकोप होने पर स्रोतो वैगुण्य अनेक प्रकार से हो सकता है। तद् यथा, एक प्रकार यह होना संभव है कि—इन स्रोतों के घटक परमाणुओं का (कोषों-सेलों का) कार्य (कृशता-एट्रॉफी) होने से स्रोत की परिधि अल्प हो कर अन्तर्गत विवर भी अल्प हो जाता है। किंवा, वात का प्रकोप होने से यह स्थिति भी स्रोतों के संकोच में कारण-भूत हो सकती है कि उनका स्तम्भ (संकोच, कॉन्ट्रैक्शन, स्पैज्म) हो जाय। तीसरी स्थिति वातवश स्रोतो वैगुण्य में यह हुआ करती है कि, वात के प्रभाव से स्रोत के बाह्य (जिसका वहन उस स्रोत द्वारा होता है वह) द्रव्य शुष्क हो जाय। वात के इस कर्म को संहिताओं में 'वर्त' कहा है। इस पद का अर्थ टीकाओं में पिण्डीभाव बताया है। पक्वांश में मल का वर्त हो कर शूलादि लक्षण होते हैं; मूत्राशय नाम मूत्रयन्त्र में इसी प्रकार मूत्रगत मलों का वर्त (सिकता, अश्मरी) हो कर तत्तत् लक्षण होते हैं। याकृत् पित्त के मार्ग में इसी भाँति पित्त का वर्त होकर पित्ताश्मरी और तज्जन्य शूलादि लक्षण होते हैं।

कफ से स्रोतोरोध का स्वरूप यह होता है कि, कफ नाम पोषक रस किंवा उसका मल ही इन स्रोतों की भित्तियों में—उनके बनाने वाले परमाणुओं में अतिमात्र संचित हो जाता है। परिणाम इसका भी वही होता है—स्रोत की परिधि की अति पुष्टि होती है, यह वृद्धि जैसे बाहर की ओर होती है, वैसे अन्दर—विवर की दिशा में भी होती है और विवर अल्प हो जाता है। यह कफज स्रोतो वैगुण्य है।

पित्त से स्रोत किंवा उसकी अन्दर की कला का शोथ होता है। उसके अङ्गभूत उत्सेध (उभार) के कारण विवर की जो अल्पता होती है उसकी व्याख्या करने की विशेष आवश्यकता नहीं। वह स्वयं स्पष्ट है।

तीनों ही दोषों में किसी से आर्तववह स्रोत (फैलो-पियन ट्यूब) का अवरोध होने से गर्भ बीज आदि का पोषण नहीं हो पाता और बन्ध्यात्व होता है। नवीन चिकित्सा में बन्ध्यात्व में इस स्रोत के अवरोध की परीक्षा की जाती है। प्रसंग भङ्ग-भय से इस विषय का विस्तार यहाँ नहीं किया जाता। वाचक क्षमा करें।

स्वयं महास्रोत का दोष प्रकोपवश वैगुण्य हो तो उस कारण से भी रसवह स्रोतों के मुखों का अवरोध होता है। इस पक्ष में कफ-कृत अवरोध में एक स्थिति यह भी होती है कि कफ (बलगम) की श्लेष्मकला पर व्याप्ति हो जाती है। अंग्रेजी में इसे 'गेस्ट्रो-इण्टेस्टाइनल केटार' कहते हैं।

हाँ, तो इस प्रकार मृद्वक्षणशील व्यक्ति के शरीर में जाकर मृत्तिका रस-भेद से तत्तद्दोष प्रकोप कर उक्त संप्राप्त्यनुसार रसवह स्रोतों का अवरोध उत्पन्न करती है। परिणामतया, जो रस बनता है उसका सम्यक् ग्रहण नहीं हो पाता। अन्नरस का ग्रहण न होने से रसादि धातुओं की समुचित पुष्टि न होकर वे क्षीण (रूक्ष) और दुर्बल (शारीर-मानस श्रम करने की शक्ति एवं रोग का आक्रमण सहन करने की शक्ति जिनकी अल्प हो गयी हो ऐसे) हो जाते हैं। परिणाम में वे तत्तद् रोग के गम्य हो जाते हैं।

मृत्तिका भक्षण से धातुक्षय का एक अन्य भी कारण होता है। और वह यह कि मृद्वक्षण जन्य दोष-प्रकोप से जैसे उल्लिखित प्रकार से रसवह स्रोतों का वैगुण्य होता है, वैसे पाचक तथा आमाशय गत रज्जक पित्तवह स्रोतों का भी वैगुण्य होता है। परिणामतया अन्नपान का पचन यथावत् नहीं होता; अथ च, रज्जक पित्त के हीनयोग और रस से रक्त की पुष्टि भी समीचीन नहीं होती। रस-रक्त के क्षय से स्वभावतः उत्तर धातुओं के पोषण में भी बाधा होती है। धातुओं का क्षय, रौक्ष्य और दौर्बल्य होने से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों की अपने-अपने विषयों में यथायोग्य प्रवृत्ति नहीं होती। ओज, वर्ण और कान्ति क्षीण होते हैं। अन्त में पाण्डुरोग होकर उसके उपद्रवभूत अक्षिकूट, मुख, उदर, शाखाद्वय (हाथ-पैर) और लिङ्ग में

शोथ होता है। कोष्ठ में कृमियों की उत्पत्ति तथा कफ और रक्तमिश्र मल की प्रवृत्ति होती है।^१

हारीत कहता है : मृद्वक्षण से भयंकर पाण्डुरोग होता है। यह पाण्डुरोग धातुक्षयकारी तथा कृच्छ्रसाध्य होता है। मृद्वक्षण से स्रोतों का पूरण एवं अयथावत् रस-रक्त संवहन होता है। परिणामतया, शरीर की पुष्टि सम्यक् नहीं होती। मृद्वक्षण से हुआ दोष-प्रकोप अति बलवान् होता है। वह कभी-कभी जीवन की आशा को भी शीघ्र नष्ट कर देता है। इसमें अन्तरग्नि (जठ-राग्नि) अति मन्द हो जाती है। कभी-कभी द्रवमल प्रवृत्ति भी होती है।

भावमिश्र लिखते हैं : मृद्वक्षणोत्थ पाण्डुरोग में तन्द्रा, आलस्य, कास, श्वास, अरुचि, शूल और सकफ मलप्रवृत्ति ये लक्षण होते हैं।

नीचे हम अपने औषधालय में कुछ काल पूर्व चरकोक्त पद्धति से चिकित्सित एक रोगी का वृत्तान्त देते हैं। आशा है, आयुर्वेद के विद्यार्थी तथा नवीन चिकित्सक इससे लाभ उठावेंगे।

नाम—श्रीना . . . ; वय—११ वर्ष; प्रवेश-तिथि—

३-११-५२ ; क्रमाङ्क—२६२३।

दर्शन-परीक्षा—त्वचा-श्याव ; नख-पाण्डुवर्ण ; नेत्र-श्याव, अक्षिकूटपर शोथ, अल्पतेज ; शरीर-कान्तिहीन, क्षीण ; मुख-शून (शोथ-युक्त) ; गण्ड (कपोल, गाल)—शून ; अधःशाखा—(पैर)—शून ; नाभि-शून ; मेढ्र (शिश्न), वृषण तथा गुद—शोथयुक्त ; जिह्वा—मलिन ; दन्त-विशेष नहीं।

स्पर्श-परीक्षा—यकृत—पर्शुकाग्रों के नीचे दो अंगुल वृद्धि ; प्लीहा—पर्शुकाग्रों के नीचे एक अंगुल वृद्धि ; उदर—कठिन, आध्मात (आध्मानयुक्त) ; नाड़ी—वातपित्त-प्रधान, क्षीण, गति ७८ प्र० मि०।

प्रश्न-परीक्षा—उरःशूल, कास के वेग के समय शूल में वृद्धि ; आहार-रूक्ष, मृद्वक्षण का शील (आदत) ; कोष्ठ—तीव्र विबन्ध, प्रति तीसरे दिन एक बार मलप्रवृत्ति,

१—देखिये च० चि० १६।२७-३०। इस प्रकरण में चरक ने यह भी कहा है कि—अपने रौक्ष्य के कारण मृत्तिका अन्नपान तथा परम्परया रसादि धातुओं को रूक्ष बना देती है।

मल में गण्डूपद कृमि तथा रक्तदर्शन ; अग्नि-विषम ; थोड़ा भी चलने से श्वास (क्षुद्रश्वास) ; अतएव रोगी घर में मृत्पिण्ड के समान पड़ा रहता था । ११-२ मास नव्यमत से चिकित्सा कराके रोगी लेखक के पास आया था ।

मृद्भक्षणोत्थ पाण्डुरोग का चिकित्सा-क्रम बताते हुए प्रारम्भ में ही चरक ने कहा है :

निपातयेच्छरीरात्तु मृत्तिकां भक्षितां भिषक् ।

युक्तिज्ञः शोधनेस्तीक्ष्णैः प्रसभीक्ष्य बलाबलम् ॥

च० चि० १६।११७

—योजना-कुशल वैद्य को मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोगी का बलाबल देख कर तीक्ष्ण विरेचन द्रव्य देकर भक्षित मृत्तिका का शोधन करना चाहिए । इस सूत्रानुसार प्रथम ही शोधनार्थ अश्वकञ्चुकी (प्रधान द्रव्य जयपाल) ४ गोली सुखोष्ण (सुहाते, कुनकुने) जल के अनुपान से दी । साथ में शोथ-उपद्रव का अनुबन्ध होने से पुनर्नवामण्डूर ६-६ वल्ल (१ वल्ल=३ गुञ्जा) प्रातः-सायं दूध के अनुपान से दिया गया^१ । एक पुड़िया स्रोतोरोध के निवारणार्थ ४ गुञ्जा कृष्णमरिच तथा ४ गुञ्जा आरोग्यवर्धनी की दी ।

१—पुनर्नवा मण्डूर का पाठ यह है : पुनर्नवा, त्रिवृत्, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, विडङ्ग, देवदारु, चित्रक-मूल, कुष्ठ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरीतकी, विभीतक, आमलक, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रयव, कटुकी, पिप्पलीमूल, मुस्ता—प्रत्येक ४-४ तोला ; मण्डूर भस्म—सर्वसम (८० तोला) । मण्डूर को अष्टगुण (१२८० तोला) गोमूत्र में पका गाढ़ा होने पर शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला तीन घण्टा मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोली बनावें । (सिद्धयोग-संग्रह-चरक का किञ्चित् परिवर्तित पाठ) । इसमें त्रिवृत्, हरीतकी, दन्तीमूल और कटुकी ये मल और पित्त के विरेचक तथा पुनर्नवा यह मूत्र विरेचक द्रव्य होने से शोथोपद्रुत पाण्डुरोग में इसका विशेष व्यवहार होता है । कुछ ऐसा ही पाठ चरक में मण्डूरवटक का है । वह भी गुणकारी और सुव्यवहृत है । पाण्डुरोग में लोह की अपेक्षया मण्डूर का उपयोग अच्छा माना जाता है । शेष शुण्ठी आदि द्रव्य जाठर तथा धातुगत पाचक पित्तों की दीप्ति कर रसरक्तादि धातुओं को पुष्ट करते हैं ।

अश्वकञ्चुकी के सेवन से प्रथम दिन एक भी मल-प्रवृत्ति न हुई । दूसरे दिन पुनः यही औषध दिया गया और उस दिन कृष्णवर्ण, रक्त और कृमियुक्त दो मलप्रवृत्ति हुई । पहले रोगी को क्षुधा न लगती थी । मलशुद्धि से उसका वेग उदित हुआ और रोगी को लघु (हलका-सुपच) आहार दिया गया ।

अश्वकञ्चुकी की योजना अब एक-एक दिनके अन्तर से की गयी । रोगी को मृद्भक्षण का स्वभाव बहुत अधिक था । अतः उसके स्वजन-परिजनों को सूचना दी गयी कि रोगीको एलेचक (एलुआ) के जलसे सिक्त करके मृत्तिका दें । ऐसी मृत्तिका के सेवन से रोगीको क्रमशः मृद्भक्षण पर द्वेष (तिरस्कार) होता गया । तथापि कभी-कभी स्वजन-परिजनों की अनुपस्थिति में वह शुद्ध मृत्तिका भी खा छोड़ता था ।

पन्द्रह दिनमें शिथिल, वृषण और मुखगत शोथ अति अल्प हो गया । यकृत की वृद्धि एक अंगुल रही । प्लीहा स्पर्शगम्य न रही । कास भी न्यून हो गया । औषधि-योजना यही चालू रखी । विशेष में, कृष्ण मरिच और आरोग्यवर्धनी के साथ घण्टीमधु ४ गुञ्जा और बढ़ा दिया । इक्कीस दिन इसी चिकित्सा के अनन्तर प्रतीत हुआ कि रोगी की देह-शुद्धि सम्यक् हो गयी है । इसके अनन्तर चरक के—

शुद्धकायस्य सर्पीषि बलाधानानि योजयेत् ॥

च० चि० १६।११८

नाम, मृद्भक्षणोत्थ पाण्डुरोगी की देह शुद्धि हो जाने पर बलोत्पादन निमित्त सिद्ध घृतों की योजना करें ; इस सूत्रानुसार चरकोक्त व्योषादि घृत तोला एक प्रातः दूधके साथ देना प्रारम्भ किया गया । इस घृत का पाठ यह है :

त्रिकटु (व्योष), बल्ल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रिफला, श्वेत त्रिफला, पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, मुस्ता, लोह भस्म, पाठा, विडङ्ग, देवदारु, वृश्चिकाली (युग्मफला, गुजराती में चमार दूधेली), भागीं एक एक भाग ; घृत ५६ भाग ; दूध २२४ भाग ; घृतपाक विधि से घृत सिद्ध करें ।^१

(शेष पृष्ठ ८४२ पर)

१—घृत तैलपाक में जहाँ मूल में स्नेह (घृत, तैल) तथा द्रव द्रव्य का मान (प्रमाण) न लिखा हो, वहाँ स्नेह द्रव्यों से चतुर्गुण तथा द्रव स्नेह से चतुर्गुण लेना, यह सामान्य परिभाषा है । देखिये—च० क० १२ ; सु० चि० ३१ ;

(शेष टि० पृ० ८४२ पर)

शीतऋतु का सर्वोत्तम फल—आंवला

वैद्य पं० मोहनलाल शर्मा चतुर्वेदी, आयुर्वेदाचार्य

शीतकाल में आंवला भारतवर्ष में सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यद्यपि आंवला की गणना स्वादिष्ट फलों में नहीं की गई है; परन्तु गुणों की दृष्टि से आंवला संसार के सभी स्वादिष्ट फलों में श्रेष्ठ है। भारतीय संस्कृति में आंवला को जो गौरव प्राप्त है, वह उसके गुणों के कारण ही है। भारतीय चिकित्सा-विज्ञान-आयुर्वेद-शास्त्र में तो सर्वत्र ही आंवला का विशिष्ट उपयोग पाया जाता है। चरक-संहिता के चिकित्सा स्थान के अध्याय १ में जो रासायनिक योग हैं उनमें सबसे अधिक और गुणकारी प्रयोग आंवला के ही हैं। च्यवनप्राश, आमलकी रसायन, ब्राह्म-रसायन, धात्र्यरिष्ट, आमलक चूर्ण, आमलका वलेह, आमलक घृत, आदि अनेकों आयुर्वेदिक औषधियों के योगों में आंवला की प्रधानता है। और उनके गुण समुदाय के कारण में भी आमला का ही प्रभाव सिद्ध होता है। आंवला एक रासायनिक गुणों वाला फल है, जिसको बिना औषधि रूप के केवल फलरूप में भी सेवन करने से हर मनुष्य रसायन के श्रेष्ठ गुणों का लाभ प्राप्त कर सकता है।

आंवला के २ या ३ ताजा फलों को इसकी मौसम पर नित्य प्रति खाने से वात-पित्त और कफ सम्बन्धी सभी प्रकार के रोग दूर होकर शरीर में दोषों की समता होती है। शरीर में पुराने रक्त का शोधन होकर नूतन रक्त का संचार होता है। बल, वीर्य और श्रोज की अपूर्व वृद्धि होती है। प्रति मास सैकड़ों रुपयों के अंगूर, सेव, वेदाना, मौसम्मी, सन्तरा आदि स्वादिष्ट फलों तथा पिस्ता, बादाम, काजू, किसमिस, अखरोट आदि मेवों के खानेवाले लोगों को हम दुर्बल देखते हैं तथा उनका मुख निस्तेज दिखाई देता है; परन्तु सारे मौसम भर में केवल एक दो रुपये के आंवला खाने वाले व्यक्ति को हम स्वस्थ-सबल और सुख वदन पायेंगे। आंवला फल खाने वाले व्यक्ति के शरीर पर झुरियाँ होना तथा बालों का पकना, दृष्टि दौर्बल्य और धातु क्षीणता आदि जराबस्था के लक्षण सुदीर्घ काल पर्यन्त भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। चेहरा सुख (काश्मीरी

सेव के समान) तथा शरीर बल-वीर्य और स्फूर्ति से युक्त रहता है। आंवला के फल में इन सब गुणों के अलावा एक महान् विलक्षण रासायनिक गुण भी है जिससे कि उसके सेवन करने वाले को दीर्घजीवनी शक्ति (Vitality) प्राप्त होती है, और अंग-प्रत्यंगों में नूतन शक्ति का संचार होकर शरीर का कायाकल्प हो जाता है।

पिछले कुछ वर्ष पूर्व महामना पू० पं० मदन मोहनजी मालवीय ने जो कायाकल्प का योग सेवन किया था, वह भी आंवला का ही प्रयोग है, यद्यपि मालवीय जी इसका पूरे समय तक विधिवत् सेवन नहीं कर पाये परन्तु कुछ दिनों के सेवन से ही उनको बहुत लाभ हुआ था। स्वयं पू० मालवीय जी के कथनानुसार उनको आंवला के इस रासायनिक प्रयोग के सेवन से शरीर में धातुओं का नव-निर्माण होकर, स्फूर्ति और बल की वृद्धि तथा नेत्रों की दृष्टि (ज्योति) बढ़ने एवं सफेद बालों के काले होने का उत्तम लाभ हुआ है।

आंवला और कायाकल्प

आंवला के १५-२० ताजा फलों को पलाश की ताजा लकड़ी में छेदकर उसमें रखकर उस पर कमल उत्पन्न होने वाले तालाव की चिकनी मिट्टी का लेप कर आग में भूँजकर आंवलों को निकाल कर गुठली अलग कर गूदे को मसल कर उसमें ताजा घी और शहद मिलाकर दिन में तीन बार कुटी प्रावेशिक विधि से सेवन करने से काया कल्प हो जाता है। १०० दिन तक सेवन करने से जीर्ण-शीर्ण शरीर का कायाकल्प होकर नवयौवन की प्राप्ति होती है। पू० मालवीय जी ने इसी योग का सेवन किया था। इन सब महान गुणों के होते हुए भी आंवला सर्वत्र सुलभ और सबसे सस्ता फल है, जो कि अमीर और गरीब सबको आसानी से प्राप्त हो सकता है।

प्रस्तुत लेख में आंवला के उत्पत्ति स्थान, स्वरूप, भेद और शास्त्रीय गुणों तथा यूनानी और अरबी मतानुसार गुण-धर्मों पर विचार करते हुए आंवला के कुछ विशिष्ट योगों पर भी प्रकाश डाला गया है।

उत्पत्ति स्थान—आंवला भारतवर्ष के प्रायः सभी उष्ण भागों में पाया जाता है विशेषतः उत्तर प्रदेश क अवध, बनारस, चित्रकूट तथा मध्य भारत और विन्ध्य प्रदेश के कुछ भागों में और मध्य प्रदेश में सर्वत्र तथा बिहार एवं पूर्वी प्रदेश तथा उत्तर भारत के हिमालय पर्वत जम्बू-काश्मीर तथा दक्षिण में लंका तक पाया जाता है।

स्वरूप—इसका वृक्ष मध्यमाकार का बड़ा सुहावना होता है। जंगलों में पुराने पेड़ बड़े आकार के भी देखे जाते हैं उसकी छाल $\frac{1}{2}$ इंच मोटी, फीकी, खाकी रंग की छिलकेदार होती है। लकड़ी बड़ी मजबूत और कुछ सुखी लिये हुए होती है। आंवला के पत्ते छोटे-छोटे इमली और शमी वृक्ष के समान कुछ हरिताम्र लिए हुए पीत रङ्ग के गुच्छों में शाखाओं में सटे रहते हैं। शरद् ऋतु के प्रारम्भ में ही इसमें मौर (फूल) आने लग जाते हैं तथा फल लगना प्रारम्भ हो जाता है, इसके फल गोल चमकदार तथा छः रेखाओं से युक्त होते हैं, फल को तोड़ने पर छः कालियों में विभक्त होता है। फल कच्ची अवस्था में हरिताम्र तथा पक जाने पर हरित-पीताम्र एवं कुछ-कुछ सेव जैसी लालिमा लिये हुए होते हैं। पके हुए फलों के ऊपर कुछ-कुछ दाना भी दिखाई देता है। आंवला माघ फागुन में पककर पूर्ण गुण युक्त हो जाता है। आंवला फल के सेवन का सर्वोत्तम समय भी यही है। इस समय आंवला वृक्ष से न तोड़ा जाये तो वह धीरे-धीरे स्वयं सूखकर काले रंग का हो जाता है, तथा वैसाख जेष्ठ में तेज धूप की कड़क से स्वयं तड़क कर कलियाँ और गुठली अलग-अलग हो जाती हैं। आंवले की गुठली पर छः नोकदार रेखाएँ होती हैं, उनसे गुठली षट्कोण दिखाई देती है। गुठली बड़ी कठोर होती है जिसका कि बड़ी कठिनता से भी पूर्णरूप से चूर्ण करना सम्भव नहीं है। आंवला की गुठली में त्रिकोणाकार लम्बे और चपटे बीज होते हैं जो किंचित् श्यामता लिए हुए होते हैं। बीजों को तोड़ने पर कुछ चिकनाहट (तैल) भी होती है।

आंवला का पौधा जंगलों में प्रायः बीजसे ही होता है, उद्यानों तथा वाटिकाओं में आंवला के पौधों को कलम करके भी लगाया जाता है। जिनके फल छोटे सेव के समान चार-पाँच तोला वजन तक के होते हैं। जंगली आंवला के फल १। तोला से २।। तोला वजन तक के होते हैं। बनारस की तरफ कलमी आंवलों का अधिक प्रचार है, वहाँ का आंवला बहुत प्रसिद्ध हो गया

है। यद्यपि लोग वहाँ के आंवले को श्रेष्ठ मानने लगे हैं; परन्तु हमारी दृष्टि में, आयुर्वेद शास्त्र के संस्था प्रधान योगों के अनुसार कल्पना करने से तो जंगली आंवलों की ही श्रेष्ठता सिद्ध होती है। आयुर्वेद-शास्त्र-निर्माण युग में भी कलमी आंवले होते थे ऐसा तो कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता है। उस समय आंवला की केवल एक किस्म (जाति) ही पायी जाती थी जो कि प्रायः जंगलों में ही प्रचुर मात्रा में होती थी। इस प्रकार आयुर्वेदीय योगों में जंगली आंवलों का प्रयोग ही, आयुर्वेदीय शास्त्र कारों के मत से अभीष्ट सिद्ध होता है।

सुरक्षा और आचार आदि में कलमी आंवला भी उपयोग में लिया जा सकता है। क्योंकि उसमें गूदा अधिक और रेशा कम होने के कारण ये चीजें उत्तम बनती हैं और देखने में भी सुन्दर लगती हैं। आजकल वर्तमान विज्ञान के युग में आंवला, आम आदि फलों की कलम करने का रिवाज बहुत बढ़ गया है; यद्यपि इससे फलों के आकार-वृद्धि, सुन्दरता तथा स्वाद में तो बहुत वृद्धि हुई है परन्तु इस वर्ण संकरता के प्रभाव से फलों के गुणों में बहुत कमी हो गई है, यही कारण है कि कलमी आंवला गुणों में जंगली आंवला से कम गुण वाला होता है।

आंवला के नाम—आमलकी, धात्री, तिष्यफला, अमृता, ये संस्कृत नाम हैं। हिन्दी में—आंवला, आमला, आंवरा, और ये प्रचलित नाम हैं, बंगला में—आमला, आमरो, अमला, आमलकी ये नाम हैं। मराठी में—आंवले, आंवली, आंवल कांटों तथा गुजराती में—आंवला, आमला, आमली ये नामक हैं। पंजाबी में—आमला, अम्बुल, अम्बली, तथा अंग्रेजी भाषा में एम्बलिक मेरो बेलन (Emblie myrobalan और लेटिन में फाइलेन्थिस् अम्बलिका (Phyllanthus emblica) ये नाम पाये जाते हैं।

रस-गुण-वीर्य-विपाक और प्रभाव—आंवले में मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय, इन पाँच रसों का समुदायात्मक योग है। आंवला दस्तावर, हल्का (लघु), दीपन, पाचन, चक्षुष्य, आयुष्य, पौष्टिक, श्रेष्ठ वयःस्थापन और रसायन तथा सर्व दोषघ्न है। आंवला शीत वीर्य और अचिन्त्य प्रभाव वाला है। आंवला अपने अम्ल रस से वातको, मधुर रस और शीत वीर्य से पित्त को तथा कषाय रस और रुक्ष वीर्य से कफ को दूर

करता है। आँवला विपाक में मधुर होता है। आँवला में जो रासायनिक गुण पाये जाते हैं, वे उसके अचिन्त्य प्रभाव के कारण ही हैं। आँवला—कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, पाण्डुरोग, मद, अर्श, ग्रहणी रोग, पुराना विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहा रोग, नये उदररोग, प्रतिश्याय, वैवर्ण्य, स्वरभंग, कामला, कृमि, शोथ, तमकश्वास, वमन, नपुंसकता, हृदय और छाती का लेप (भारी रहना) तथा स्मृति विभ्रम और बुद्धि के मोह का नाश करने वाला है।

यूनानी मत के अनुसार—आँवला पहले दर्जे में शीत, दूसरे दर्जे में रुक्ष, उत्तमांगों को बलदायक, दीपन, संप्राप्ती पित्त-रक्त संशमन, चक्षुष्य तथा बालों की जड़ों को मजबूत करने वाला तथा उन्हें काला करने वाला है। प्यास शान्त करने वाला तथा अतिसार शामक है। बुद्धि, स्मरण शक्ति और दृष्टि को बल देने वाला है। हृत्स्पन्दन, हृदय दौर्बल्य और अग्निमान्द्य को दूर करने वाला है। पित्त एवं रक्त के प्रकोप को शमन करने वाला है। उपरोक्त गुण कर्म के लिए यूनानी चिकित्सा में आँवले के मुरब्बे का भी उपयोग किया जाता है।

आधुनिक विज्ञान (Modern Science) के मतानुसार आँवला के ताजा पके हुए फल में टॉनिक एसिड (Tanic acid) और जीवनीय तत्त्व (Vitamin) बी० और सी० बहुत परिमाण में होते हैं। आँवले में सांघ्राहिकता और खुश्की तथा रुक्षता, टॉनिक एसिड की प्रधानता से ही है। इसको ताजा जल्म में लगाने से खून का बहना बन्द हो जाता है। आँवला में जीवनीय तत्त्व सी० (Vitamin c.) (स्कार्विक एसिड) के द्वारा सेल कोषों के बीच के भाग को बनाने का कार्य होता है। इसी कारण आँवला कार्टिलेज, हड्डियाँ, दाँत आदि के निर्माण के लिए उपयोगी है। खून का आन्तरिक क्षय (चोट आदि से खून का बहना) भी विटामिन सी० के कारण जल्दी ही रुक जाता है। शरीर के अन्दर फैले हुए अनेक प्रकार के विष को नष्ट कर रक्तशोधन में आँवला बहुत लाभदायक है। आँवला के अन्दर जो जीवनीय तत्त्व (Vitamin) बी० और सी० हैं वे (होमोग्लोबिन Haemoglobin लालिमा, रक्ताणु और श्वेताणु के नव निर्माण पर बहुत उत्तम प्रभाव करते हैं। इसी कारण से कई विशेष प्रकार के पाण्डुरोग पर आँवला बहुत लाभदायक है, दिमाग की

खराबी, मधुमेह (Diabetes) रक्ताभिसरण क्रिया और हृदय-क्रिया पर आँवला का उत्तम प्रभाव होता है। आँवला शीतल (Colling), मूत्रल (Diuretic), मृदुरेचक (Laxative), शरीर में गर्मी (Heat) उत्पन्न करने तथा स्फूर्ति (Energy) बढ़ाने में बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

जबकि आधुनिक विज्ञान के मतानुसार सूखे फलों में विटामिन (Vitamin) बिल्कुल नहीं होते हैं वहाँ आँवला के सूखे फल में भी विटामिनों का प्रचुर परिमाण में होना परीक्षण से भी प्रत्यक्ष सिद्ध हो चुका है। और इस प्रकार ऋषियों के प्रत्यक्ष प्राप्तिपदेश एवं अनुमानगम्य प्राचीन विज्ञान के सामने केवल यन्त्रगम्य ज्ञान को प्रत्यक्ष मानने वाले आधुनिक विज्ञान को भी आत्म-समर्पण करना पड़ा है।

आँवला के प्रयोग—बैसे तो आँवला के ताजे फलों का सेवन ही सर्वश्रेष्ठ प्रयोग है परन्तु यह केवल उसके मौसम पर ही सम्भव है। अतः आयुर्वेद विज्ञान में आँवले के प्रयोगों की बहुत-सी उत्तमोत्तम विधियाँ हैं जिनके द्वारा मौसम पर तैयार किये हुए रासायनिक योगों का पूरे वर्ष भर आवश्यकतानुसार सेवन कर आँवला के अद्भुत गुणों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इतना ही नहीं अपितु आँवला के साथ अन्य ओषधियों के मिश्रण से उनके गुणों में भी आशातीत वृद्धि हो जाती है।

च्यवनप्राश—आयुर्वेद में च्यवनप्राश का महत्त्व बहुत है, च्यवनप्राश के अनेक रोगों के नष्ट करने की विलक्षण शक्ति से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इसमें शक्तिवर्द्धन (Tonic) गुणों का अपूर्व भण्डार है। भारतीय लोग बिना चिकित्सक की राय लिये भी स्वेच्छा से च्यवनप्राश का सेवन कर लाभ उठाते हैं। च्यवनप्राश के योग में आँवला की प्रधानता के कारण ही उसमें इतने रासायनिक गुण हैं। महर्षि च्यवन के च्यवनप्राश सेवन से जरावस्था का युवावस्था में कायाकल्प हो जाना केवल आश्चर्य की बात नहीं है। अपितु, आज भी उसका विधिवत् सेवन कर कायाकल्प का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। वैद्यनाथ च्यवनप्राश के उत्तम-उपादानों से बने होने के कारण उसमें उपरोक्त सभी रासायनिक गुण प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। वैद्यनाथ च्यवनप्राश की अत्यन्त प्रसिद्धि का भी यही कारण है।

वैद्यनाथ च्यवनप्राश का निर्माण और सेवन विधि—बेलमूल, अरणीमूल, सोनापाठा, गम्भारीमूल, पाटलामूल, खरेंटो, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पीपल छोटी, गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, काकड़ा-सींगी, भूमि आंवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्करमूल, अंगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागर-मोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा, इलायची छोटी, चन्दन सफेद, कमलफूल, बिदारीकन्द, अडूसामूल, काकोली, क्षीर-काकोली और काकनासा, प्रत्येक को ४-४ तोला लेकर जौकूट दरदरा कर एक बड़े ताम्बे के कलईदार बर्तन में एक द्रोण (१०२४ तोला) जल डाल ५०० नग जंगली ताजे आंवले जल से धोकर कपड़े में ढीली पोट्टली बांधकर उसे जल में डालकर अग्नि पर रखकर पकावें। आंवले के पक जाने (उबल जाने) पर अलग निकाल कर क्वाथ को कपड़े से छान लें। आंवलों की गुठली अलग करके एक अच्छे कलईदार या मिट्टी के बर्तन पर पाट (सन) का कपड़ा (टाट) बांध कर उस पर थोड़े-थोड़े आंवले रखकर हाथों से दबाकर (मसलकर) छान लें। इस छने हुए आंवले के गूदे को कलईदार ताम्बे की बड़ी कड़ाही में डालकर उसमें २४ तोला गाय का घी और २४ तोला तिल-तैल डालकर लकड़ी के कोंचे से बार-बार चलाते हुए अग्नि पर भूजें (सेकें), जब आंवलों से घी अलग होने लगे, तब नीचे उतार कर अलग बर्तन में निकाल कर रख लें। पश्चात् छने हुए क्वाथ में २०० तोले स्वच्छ चीनी डालकर अवलेह योग्य चाशनी बनायें। चाशनी बन जाने पर उसमें उन सिंघे हुए आंवले के गूदे को मिलाकर पश्चात् कुछ समय तक पका कर उतार कर रख लेना चाहिए। ठण्डा हो जाने पर उसमें २४ तो० उत्तम शहद मिला कर वंशलोचन असली १६ तो० छोटी पीपल ८ तो०, नागकेशर, दालचीनी, छोटी इलायची-बीज और तेजपत्ता प्रत्येक एक एक तोला, इन सबका सहान पीसा हुआ चूर्ण प्रक्षेप रूप में मिलाकर इसे घी से चुपड़े हुए काँच या चीनी के इमरतबान में भरकर रखें। इस च्यवनप्राश को सुबह १। तोला से २।। तोला तक की मात्रा में खाकर धारोष्ण या गरम दूध पीना चाहिए। बिना दूध के अवलेह रूप में भी खाया जा सकता है। यह च्यवनप्राश श्रेष्ठ रसायन कहा गया है। यह विशेषतः कास, स्वास और क्षय (T. B.) को दूर करता है। क्षत-क्षीण और वृद्ध लोगों के लिए

उत्तम बल वर्द्धक (Tonic) रसायन है। बालकों के अंगों का विकास करता है। स्वरभंग, उरोरोग, हृद्रोग, वात रक्त, प्यास, मूत्र तथा शुक्र के दोषों को दूर करता है। मेधा (ग्रहणशक्ति), स्मृति (याददाश्त), कान्ति, आरोग्यता, आयु की वृद्धि, स्त्रियों में अत्यन्त प्रहर्ष, इन्द्रियों के बल की वृद्धि, अग्नि वृद्धि, वर्ण की स्वच्छता, वायु का अनुलोमन होना आदि लाभ होते हैं। इस रसायन को कुटी प्रावेशिक विधि से सेवन करने पर जराजीर्ण शरीर वाला मनुष्य भी जराकृत जीर्णशीर्णता जन्म कुरूपता को दूर कर नवयौवन को प्राप्त करता है।

वैद्यनाथ आमलकी रसायनः—आंवलाके चूर्ण में आंवला के रस की सौ बार भावनाएँ देकर उसे सुखाकर चूर्ण करके उसमें चतुर्थांश लौह भस्म मिलाकर पीसकर आधातोला से एक तोला तक की मात्रा में मधु और चीनी मिलाकर—केवल प्रातःकाल चाटना चाहिए। पथ्य और सात्म्याहार (मूँग का गूष अथवा दूध के साथ घी मिले साठी चावल) करते हुए इस रसायन को लगातार तीन वर्ष तक सेवन करने से बढ़ाया रहित १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। सुनने मात्र से ही याद करने की स्मरण शक्ति होती है। सब प्रकार के रोग शान्त होते हैं। शरीर में पहुँचा हुआ विष भी अविष हो जाता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग पत्थर की तरह दूढ़ हो जाते हैं। आमलकी रसायन का यह योग अत्यन्त प्रसिद्ध और बहुत बार का परीक्षित है। इसके थोड़े दिन सेवन करने वाले लोगों की भी अत्यन्त लाभ होते हुए देखा गया है।

आंवला के सरल और गुणकारी प्रयोग

१—आंवला के ताजे फलों के २ तोले रस में आधा तोला शहद मिलाकर सेवन करने से मधुमेह में अच्छा लाभ होता है तथा आंवला के २ तोले रस में आधा तोला चीनी मिलाकर पीने से रक्त-पित्त, पाण्डुरोग, रक्तार्श आदि विकारों में बहुत लाभ होता है।

२—सूखे आंवले के २।। तोले मोटे चूर्ण में आधा सेर पानी डालकर रात भर मिट्टी के बर्तन में भिगो दें। प्रातः काल चार तह के कपड़े से छानकर उस जल से आँखों को धोने से सभी प्रकार के नेत्ररोग शान्त होकर नेत्रों की ज्योति बढ़ती है, तथा मुख की पीडिकाएँ व्यंग आदि दूर होकर मुँह की कान्ति बढ़ती है।

३—सूखे आंवला के चूर्ण में सम भाग मिश्री मिलाकर आधा तोला की मात्रा में सुबह-शाम ठंडे जल से सेवन करने से सभी प्रकार के रक्त तथा पित्त के विकार, प्रमेह, कब्जित अम्ल पित्त, छाती की जलन आदि अनेक विकार शान्त होते हैं।

४—आंवला के एक छटाँक मोटे चूर्ण को दो सेर जल में भिगोकर उस जल से शिर को धोने से उत्तमाङ्ग (शिर) को विशेष बल प्राप्त होता है। गिरते हुए वालों की कमजोर जड़ें मजबूत होकर बाल घने, लम्बे और कोमल होते हैं। सफेद बाल काले होते हैं। प्राचीन समय में आंवले के जल से शिर धोने का आम रिवाज प्रचलित था और आज भी महाराष्ट्र में इसका प्रचार है।

५—आंवला के चार सेर ताजा रस में एक सेर तिल तैल तथा एक पाव आंवला का कल्क डालकर तैल पाक विधि से तैल बनाकर छानकर रख लें। इस तैल को नित्य—प्रति बालों में लगाने से बाल लम्बे, घने, तथा काले होते हैं। शिर और मस्तिष्क ठंडा रहता है तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है।

आंवले का मुरब्बा :—आंवला के ताजा सुपरिपक्व बड़े फलों को ५५ सेर परिमाण में लेकर उनको बारीक कीलों से बने गोंदने से चारों तरफ गोंदकर चूने के पानी में रात भर भिगो दें। प्रातःकाल स्वच्छ जल से धोकर कलईदार बर्तन में पानी डालकर मामूली हल्का उबाल देकर उतार कर टोकरी में डालकर पानी अलग निकाल कर रख लें। पश्चात् आंवलों को साफ जगह पर कपड़ा बिछाकर उसपर डाल कुछ देर धूप में पानी सूखने दें। इसके पश्चात् उस आंवलों के पानी में ५५ चीनी की चाशनी बना कर उसमें आंवलों को डालकर बर्तन में भरकर एक सप्ताह तक रखें, चाशनी में आंवले डुबे रहें यह आवश्यक है। पश्चात् आंवलों को उस चाशनी में से निकाल कर टोकरी में डालकर कुछ देर रखा रहने दें। तथा उस चाशनी में ५७११ सेर चीनी और मिलाकर गाढ़ी शरबत जैसी चाशनी बनाकर उसमें आंवलों को डालकर रसगुल्लों की तरह पकावें। आंवले डालने से चाशनी पतली हो जाती है। अतः उसे पुनः शरबत जैसी होने तक पकाना चाहिए।

पश्चात् उतार कर कपड़े से ढांककर ठण्डा होने तक रहने दें। ठण्डा हो जाने पर चाशनी सहित आंवलों को स्वच्छ इमरतवान में भरकर वायु अवरोधक ढक्कन लगाकर रख दें। मुरब्बा बनने के १०-१५ दिन बाद ही उसका सेवन करने से वह विशेष स्वादिष्ट तथा लज्जत दार होता है। इसके सेवन से पित्त विकार, रक्तदोष, प्यास, आन्तरिक गर्मी, जलन, दिल और दिमाग की कमजोरी, आदि अनेक विकार शान्त होते हैं। आंवला के मुरब्बा पर चांदी या सोने के बर्क लगाकर खाने से हृदय और मस्तिष्क को विशेष बल प्राप्त होता है। ग्रीष्म काल में बहुत से लोग पित्त (गर्मी) शान्ति और प्यास के शमन के लिए आंवले के मुरब्बा का सेवन करते हैं।

बाजारू बिक्री के लिए बनाये जाने वाले मुरब्बे इतनी विधि पूर्वक न बनाये जाने से इतने अच्छे सिद्ध नहीं होते हैं। बाजारू बिक्री के लिए मुरब्बा बनाने वाले लोग पहले आंवला को गोंदकर पानी में ज्यादा उबालकर उसकी खटाई निकाल देते हैं। इसके अलावा पहले डाली जाने वाली चाशनी में भी खटाई आ जाने से उसे भी दुबारा मुरब्बा में नहीं डालते हैं। ऐसा करने से उनका उद्देश्य आंवला के मुरब्बा की खटाई को बिल्कुल दूर कर उसे अधिकाधिक मोठा (स्वाद्विष्ट) बनाना ही है ताकि भोली-भाली जनता उसे बढ़िया समझे। परन्तु आंवलों को उबाल कर उनका पानी फेंक देने से फिर आंवला के मुरब्बा में गुण ही क्या रहेंगे। आंवला के गुणों की रक्षा का ध्यान रखकर उपरोक्त विधि से तैयार किया हुआ आंवला मुरब्बा ही श्रेष्ठ और गुणदायक होता है। अतः पूर्व गुणों के लिए प्रमाणित निर्माता के द्वारा बनाये गये मुरब्बे को ही सेवन करना चाहिए या उपरोक्त विधि से स्वयं बना लेना चाहिए।

आंवला के विषय में संक्षेप में यही निष्कर्ष सिद्ध होता है कि आंवला किसी भी रूप में खाया जाये उसके गुणों का प्रभाव मानव शरीर पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है। भारत जैसे गरीब देश की जनता को ताकत के इंजेक्शनों और विटामिनों की गोलियों के भ्रम से दूर रहकर सबसे सस्ते और सर्वोत्तम फल आंवला के गुणों से लाभ उठाना चाहिए।

हृदय-शूल

(Angina Pectoris)

कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव, साहित्यमहोपाध्याय

मानव-शरीर में कभी-कभी ऐसी भयंकर एवं तीव्र बीमारियाँ होती हैं ; जिसे रोगी सहन करने में असमर्थ तो होता ही है अच्छे-से अच्छे चिकित्सक भी रोगी की छटपटाहट देख कर किर्कटव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। साथ ही बीमारियाँ भी इतनी तीक्ष्ण (Acute) होती हैं कि यदि उनका तत्काल उपचार न किया जाय तो रोगी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। हृदय भी एक ऐसी ही तीव्र घातक बीमारी है जो सीधे हृदय से सम्बन्धित है।

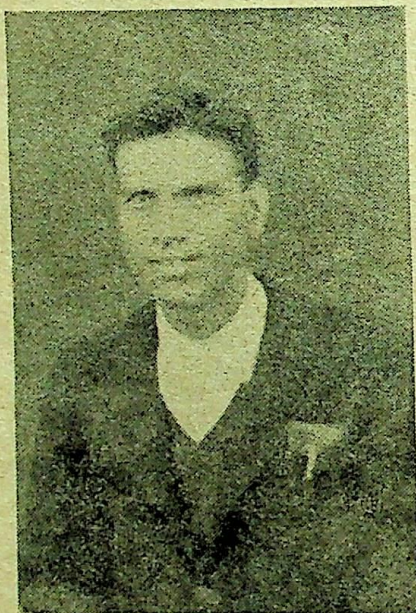
जब कभी इस बीमारी का कठोर आक्रमण होता है तो हृत्पिण्ड और धमनियों (Arteries) में तीव्र-असह्यवेदना होकर चेहरा फीका-पीला पड़ जाता है और उद्वेग एवं यन्त्रणा से रोगी छटपटा कर कुछ ही घण्टों में प्राण खो देता है।

इस भयंकर व्याधि के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व हमें हृदय और उससे निकलने वाली धमनियों का हाल, हृदय के कार्य और उसका शरीर से सम्बन्ध जान लेना अत्यावश्यक है

शरीर विज्ञान के अनुसार हृदय रक्ताभिसरण संस्थान (Blood circulatory system) का प्रधान अवयव है; जो छाती के खोखले भाग में दो फेफड़ों के बीच

जरा बाईं ओर को झुकी हुई-सी स्थिति में है। इसका आकार अपने हाथ की मुट्ठी के बराबर तिकोनी शकल में है और लम्बाई-चौड़ाई तथा मुटाई क्रमशः ५ इञ्च × ३½ इञ्च × २½ इञ्च एवं वजन १० से १२ औंस है। इसका चौड़ा भाग (Base) ऊपर की ओर और सकरा भाग (Apex) नीचे की ओर कुछ बाईं तरफ को झुका हुआ रहता है।

इस हृदय पर चारों ओर से पेरिकार्डियम नामक दोहरी झिल्ली का एक आवरण रहता है जिसके बीच में एक तैलयुक्त पदार्थ भरा रहता है। हृदय के आकुञ्चन और प्रसारण के समय यह पदार्थ हृदय को घर्षण से बचाता है यही इसकी उपादेयता है।



लेखक

हृदय का भीतरी खोखला भाग स्नायु के एक खड़े पर्दे के द्वारा दो भागों में बट गया है जिनका सम्बन्ध एक दूसरे से कुछ नहीं रहता। इसके दाहिने भाग में शुद्ध और बाँये भाग में अशुद्ध रक्त सञ्चित रहता है। इन प्रत्येक भागों के बीच पुनः एक आड़ा पर्दा रहता है जिसके

द्वारा यह फिर दो भागों में बटे रहते हैं। प्रत्येक बाजू के निचले और ऊपरी हिस्से के बीच एक-एक छेद रहता है जिसमें एक ही ओर खुलने वाला पर्दा (Valve) पाया जाता है। इसके ऊपरी हिस्से को प्राहक

कोष्ठ (Auricle) और निचले भाग को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं।

नीचे के दो चित्र आपको इस प्रकरण के समझने में सहायता देंगे। चित्र नं० १ से आप हृदय की वास्तविक स्थिति तथा उसका शेष शरीर से सम्बन्ध

और चित्र नं० २ से हृदय का विस्तृत आकार एवं उसके हिस्से देखिये।

ग्राहक कोष्ठ की अपेक्षा क्षेपक कोष्ठ आकार में बड़े होते हैं और फेफड़ों तथा अन्य भागों की छोटी केश वाहिनियों (Cappillaries) में रक्त भेजना इनका काम होता है। इस प्रकार हृदय प्रत्यक्ष रूप से चार भागों में बटा हुआ होता है।

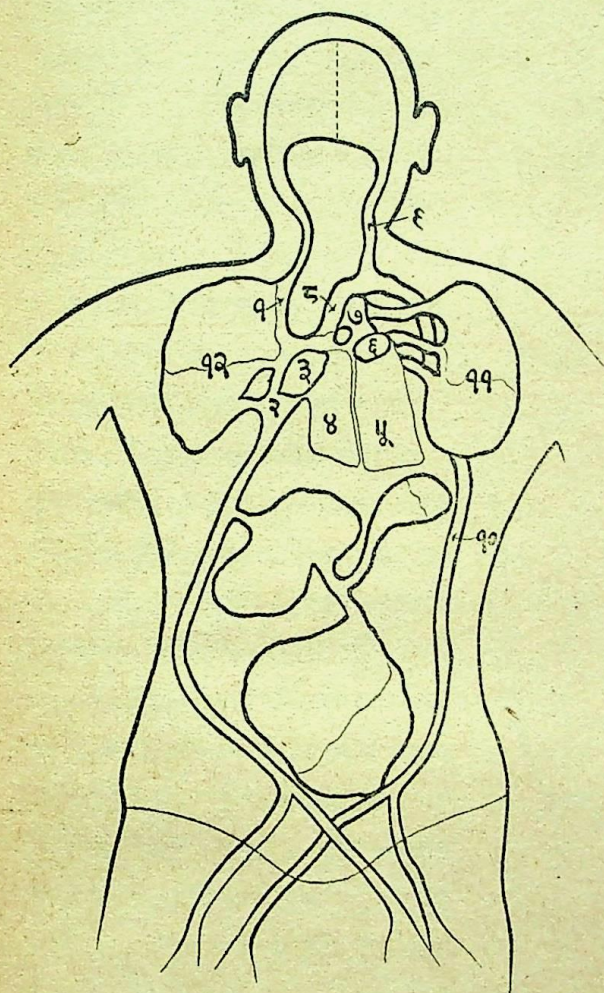
हृदय निम्न प्रकार से क्रियाशील होता है—

पहिले दोनों ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ते हैं। इनसे निकलने वाली आकुञ्चन लहर जब क्षेपक कोष्ठ तक पहुँचती है तो इन क्षेपक कोष्ठों में आकुञ्चन होता है। इसके बाद एक अत्यन्त स्वल्पकाल के लिये हृदय विश्रान्ति लेता है जिसमें उसके स्नायु फैल जाते हैं और खोखला भाग रक्त से भर जाता है। इस प्रकार हृदय में आकुञ्चन क्रिया (Systole) और प्रसरण क्रिया (Diastole) निरन्तर होती रहती है जिसे हृदय-स्पन्दन (Heart-Beat) कहते हैं। यह स्पन्दन गति युवकों में प्रति मिनट ७२ बार, बालकों में प्रति मिनट १४० बार और वृद्धों में प्रति मिनट ६० बार होती है।

वाँए क्षेपक कोष्ठ के ऊपरी ओर से महा धमनी (Aorta) नामक शुद्ध रक्तवाहिनी नली निकलती है और पीछे की ओर कमानी बनाती हुई हृदय के पीछे से नीचे की ओर चली जाती है। महा धमनी के पर्दे से सटे हुए ऊपरी भाग को रक्त पहुँचाने वाली दो (Coronary) हृदय-धमनियाँ इस महाधमनी से निकलती हैं।

महाधमनी के महराव से जो (Arch of Aorta) कहलाता है, एक बड़ी धमनी निकलती है और दो भागों में बट जाती है—

१. दाहिनी ग्रीवा धमनी (Carotid Artery) जो गर्दन में से होकर ऊपर जाती है और गर्दन तथा सिर के दाहिने भाग को रक्त पहुँचाती है।



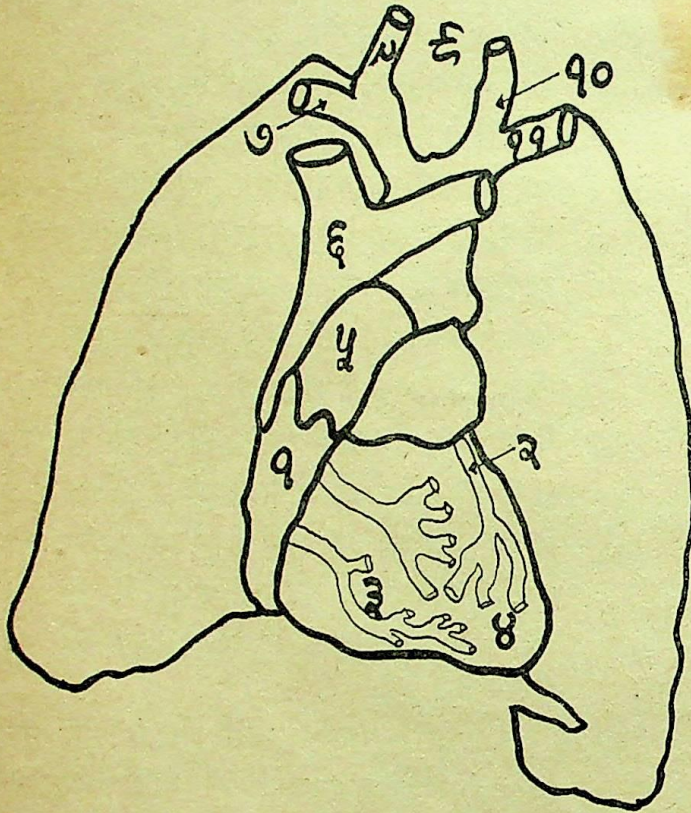
परिचय

चित्र नं० १

१. ऊर्ध्व महाशिरा। २. अधो महाशिरा। ३. दाहिना ग्राहक कोष्ठ। ४. दाहिना क्षेपक कोष्ठ। ५. बाँया क्षेपक कोष्ठ। ६. बाँया ग्राहक कोष्ठ। ७. फुफुस की धमनी। ८. महा धमनी। ९. मस्तक की शीर वाली धमनी। १०. जठर की धमनी रक्त ले जाते। ११. फफुस। १२. फफुस।

२. दाहिनी अधोजत्रु धमनी (Sub-clavian Artery) जो गले की हड्डी के पीछे से दाहिने हाथ में जाती है।

इसी प्रकार बाईं ओर भी बाईं ग्रीवा-धमनी तथा बाईं अधोजत्रु-धमनी निकलती है जो सिर और गर्दन के बाएँ भाग में शुद्ध रक्त पहुँचाती है।



परिचय

चित्र नं० २

१. दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Right auricle)
२. बायाँ ग्राहक कोष्ठ (Left auricle)
३. दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Right Ventricle)
४. बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left Ventricle)
५. महाधमनी (Aorta)
६. ऊर्ध्वमहा सिरा (Superior Vena Cava)
७. दाहिनी अधोजत्रु धमनी (Subclavian)
८. दाहिनी ग्रीवा धमनी (Carotid Artery)
९. श्वास नलिका (Trachea)
१०. बाईं ग्रीवाधमनी (Carotid artery)
११. बाईं अधोजत्रु धमनी (Subclavian artery.)

वक्षस्थल के भाग में महा धमनी के दोनों वाजू से अनेक शाखायें फूटती हैं जो वहाँ रक्त पहुँचाने का काम करती हैं। बाद में यह महा धमनी, छाती और उदर गह्वर के बीच रहनेवाले श्वास पटल (Diaphragm)

नामक स्नायु मण्डल में होकर उदर गह्वर में जाकर जठर धमनी, यकृत धमनी एवं प्लीहा धमनी नामक तीन शाखाओं में बट जाती है। यही महाधमनी उदर के निचले भाग में मूत्र पिण्ड, अन्तर्द्वियों आदि अवयवों में रक्त पहुँचाने के लिए अनेक भागों में बट जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह महाधमनी सारे शरीर को रक्त पहुँचाने का कार्य करती है।

शरीर का अनुपयोगी तत्त्व शिराओं (Veins) में जमा होता रहता है। छोटी-छोटी शिराएँ एक दूसरे से मिलकर बड़ी शिरा में परिवर्तित हो जाती हैं। शरीर के निम्न भाग का अशुद्ध रक्त अधो महा-शिरा और ऊपरी भाग का अशुद्ध रक्त ऊर्ध्व महाशिरा में जमा होता है। इस प्रकार शरीर का सारा अशुद्ध रक्त इन दोनों शिराओं के मार्ग से हृदय के दाहिने वाजू में पहुँच जाता है। ऊर्ध्व महाशिरा को Superior Vena Cava और अधो महाशिरा को Inferior Vena Cava कहते हैं।

तो, जब हृदय-शूल होता है तब इस महाधमनी (Aorta) से उत्पन्न दोनों Coronary arteries में भयानक संकुचन के साथ गहरा दर्द होता है। इस प्रकार के शूल को अंग्रेजी में Angina Pectoris और आयुर्वेद में हृत्शूल कहते हैं।

भेद और निदान

यह तीन प्रकार का होता है—

१. हलका
२. लघु शूल (Ongina Minor)
३. तीव्र शूल (Ongina Major)

हलके शूल—में वक्षोऽस्थि के नीचे दबाव एवं खिचाव सा मालूम होता है। बेचैनी, उद्विग्नता, चेहरे पर पीलापन, मूर्च्छा के भाव आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। तकलीफ और उसके स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं लगता। शरीर धीरे-धीरे कमजोर होता जाता है। यह बहुत अधिक मानसिक और शारीरिक श्रम के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

लघु शूल—एकाएक कलेजे में दर्द उठना और बाँई ओर को फैल जाना। यह स्नायुप्रधान पुरुषों और स्त्रियों को अधिक होता है। कारण—अधिक तम्बाकू खाना-पीना।

तीव्र शूल—वक्षस्थल में भयानक यंत्रणादायक दर्द, ऐसा मालूम होना मानो कोई हृत्पिण्ड को चिमटे से दबा रहा हो, गर्दन और बाँए बाजू में दर्द फैल जाना, चेहरा सूखा हुआ-सा और पीला पड़ जाना, बहुत ज्यादा पसीना आना, बेचैनी और मृत्यु की संभावना; डकार और बार-बार पेशाब लगना। कारण—ज्यादा परिश्रम, उद्वेग, उदर में वायु की अधिकता।

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण

आयुर्वेद में हृदय शूल, पार्श्व शूल, वस्ति शूल आदि सभी शूलों का विस्तार से वर्णन मिलता है। वैसे तो यह सभी शूल सभी दोषों से युक्त होते हैं, किन्तु, माधवाचार्य इन सब के मूल में “वात” को प्रधान मानते हैं—

“सर्वेभ्यस्तेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः”

हृदय शूल के कारणों पर भाव मिश्र कहते हैं—

कफ पित्तावरुद्धस्तु मारुतो रस वर्द्धितः।

हृत्स्थः प्रकुरुते शूलमुच्छ्वास्यवरोधकम्।

स हृच्छूल इति ख्यातो रस मारुत कोपजः॥

(कफ तथा पित्त से रुकी हुई और रस से बढ़ी हुई हृदय में बहने वाली वायु से श्वास रुकती है तब शूल उत्पन्न होता है। रस और वायु से उत्पन्न हुआ यह शूल हृत्शूल कहलाता है)

इससे स्पष्ट है कि जब कफ और पित्त वायु को विकृत कर उसकी गति का अवरोध कर देते हैं और जब रस उस वायु को गति देने का प्रयत्न करता है तो यही हृदय में शूल उत्पन्न कर देता है।

आगे माधवाचार्य ने लिखा है—

वस्तौ हृत्पार्श्व पृष्ठेषु स शूलः कफ वातिकः

कुक्षौ हृत् नाभि मध्येषु स शूलः कफ पैत्तिकः

दाह ज्वर करो घोरो विज्ञयो वात पैत्तिकः

(मूत्राशय, हृदय, पार्श्व और पीठ में शूल हो तो कफ वातज; कोख, हृदय और नाभि में शूल हो तो कफ पैत्तिक; तथा दाह और ज्वर हो तो वात पित्तज शूल समझिए)

आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार हृदयशूल किन दोषों को लिए हुए है इसका निर्णय चिकित्सक को अवश्यमेव कर लेना चाहिए। साथ ही साथ यह देख लेना भी अनिवार्य है कि हृदय-शूल स्वतंत्र व्याधि के रूप में है अथवा किसी अन्य पीड़ा के फलस्वरूप। इस लेख में हम उसे प्रधान व्याधि मानकर ही चले हैं।

चिकित्सा

एलोपैथी में हृदयशूल के लिए माफीन विथ एद्रोपिन या एमिनो फाइलीन के इन्जेक्शन शूल-शमन के लिए दिए जाते हैं: साथ ही एमिनो फाइलिन नियो गार्डिनल, न्यूरो-ड्रेसेन्टीन, बेलाडिनल आदि

औषधियों का मौखिक प्रयोग (Oral use) किया जाता है।

ईथिल आयोडाइट या एमिल नाइट्रेट सूंघने के काम में आते हैं।

आयुर्वेद में—दोषों पर विचार रखते हुए नीचे का प्रयोग उत्तम है—

(१) मृगशृंग भस्म (या पुट पाक) १ या २ रत्ती गौ घृत के साथ।

रोग की तीव्र अवस्था में इसके साथ थोड़ा सा मकरध्वज भी मिलाया जा सकता है।

(२) मृगशृङ्ग भस्म के साथ जवाहरमुहरा पिष्टी दीजिए।

(३) स्वच्छन्द भैरव रस अर्जुन काथ के साथ दीजिए।

वायुकेमिक योग

तेज दर्द में—मेगनेशिया फॉस गर्म पानी में।

दस-दस मिनट की अन्तर से दीजिए। शक्ति=उच्च।

यदि बेहोशी हो तो मॉग फॉस के साथ केलिफेंस पर्याय क्रम से लाभ करती है।

पथ्य और परिचर्या

रोग के आक्रमण के साथ ही रोगी को पूर्ण विश्रान्ति देने की व्यवस्था होना अनिवार्य है। रोग दब जाने के बाद भी रोगी को पथ्य और परिचर्या की सावधानी बरतनी चाहिए। अन्यथा, रोग का पुनराक्रमण संभावित है। ऐसा कोई भी काम जो रोगी की शारीरिक अथवा मानसिक उत्तेजना में सहायक हों। अथवा जिनसे रक्तसंचार की अभिवृद्धि आशंकित हो, वर्जित हैं : जैसे—जोर से बोलना, गाना-बजाना, जीने चढ़ना आदि।

कुछ लोगों का ऐसा ख्याल रहता है कि मादक वस्तुओं का उपयोग इस अवस्था में लाभप्रद है। किन्तु ध्यान रहे कि मादक वस्तुएँ हृदय की उत्तेजना बढ़ाती हैं। अतएव हृदय पर उनका कुप्रभाव ही पड़ता है। शराब पीना, कॉफी या चाय का सेवन, तम्बाखू या जर्दा खाना-पीना, गरम मसाला, मिर्चा आदि का प्रयोग सभी कुछ रोगी को वर्जित है। हलकी और शीघ्र पचने वाली वस्तुएँ हैं—गौ-दुग्ध मुनक्का आदि का प्रयोग करायें।

(पृष्ठ ८३२ का शेष)

व्योषाद्य घृत के प्रयोग से रोगी के वर्ण और कान्ति में अच्छा परिवर्तन हो गया। क्षुधा भी अच्छी लगने लगी। रोगी में चपलता आ गयी। घृत अभी चालू है। इस घृत के अतिरिक्त मृज्ज पाण्डुरोग में अन्य भी एक घृत नागकेशरादि विहित है। इसका पाठ अधोलिखित है—
नागकेशर, यष्टी मधु, पिप्पली, यवक्षार, दूर्वा—प्रत्येक

(पृष्ठ ८३२ की शेष टिप्पणी)

अ० सं० क० ८। तदनुसार यहाँ घृत तथा दुग्ध का उक्त प्रमाण लिया गया। सामान्य परिभाषानुसार ही मूल में आये 'व्योष' और 'त्रिफला' शब्दों से तीन-तीन द्रव्य मिलित का एक-एक भाग लिया गया। जहाँ इन गणों में आये द्रव्यों का निर्देश गण वाचक शब्द से न होकर पृथक्-पृथक् द्रव्यके रूप में हो वहाँ इनमें प्रत्येक एक-एक भाग लेना चाहिए।

एक-एक भाग ; घृत सर्व द्रव्यों से चतुर्गुण ; जल घृत-से चतुर्गुण ।^१

चरक-संहिता में इसी प्रकरण में आगे कहा है कि ; जिह्वा और मन के लौल्य के कारण रोगी मृदूक्षण से परावृत्त न हो तो उसे—विडङ्ग, एला, अतिविषा, निम्बपत्र, पाठा—इन द्रव्योंके क्वाथ से, किवा—बैंगन, कटुकी, कुटजत्वक् और मूर्वा—इन द्रव्यों के क्वाथ से मृत्तिका को भावित करके दें। इनसे मृत्तिका के प्रति द्वेष भी होता है, साथ ही उसके अवगुणों का परिहार भी।

विज्ञ वाचक इस विषयमें अपने अनुभव प्रकाशित करें।
(‘आरोग्यसिन्धु’ से परिवर्धित) अनु०—वैद्य रणजित राय

१—मूल में द्रव द्रव्य का निर्देश नहीं है। अतः स्नेहपाक की परिभाषानुसार जल का ग्रहण करना चाहिए। पूर्व लिखित परिभाषा से इसका प्रमाण स्नेह से चतुर्गुण लेना चाहिए।

पुनर्नवादि मण्डूर

वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेद-विशारद

पुनर्नवा त्रिवृत् व्योष विडंगं दाह चित्रकम् ।
कुष्ठं हरिद्रे त्रिकला दन्ती चव्यं कलिगकाः ॥
कटुका पिप्पलीमूलं सुस्तंचेति पलोन्मितम् ।
मण्डूरं तु समञ्चूर्णात् गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥
कोलवत् गुटिकाः कृत्वा तन्नेगालोड्यना पिबेत् ।

सि० यो० सं०

अर्थात्—पुनर्नवा की जड़, निशोध, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, वायविडंग, देवदारु, चित्रक के मूल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, हरें, बहेड़ा, आंवला, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पिपलामूल और नागरमोथा, प्रत्येक का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण १-१ तोला, मण्डूर भस्म ४० तोला लेकर गोमूत्र (मण्डूर भस्म से आठ गुना) में पकावें। जब वह गाढ़ा होने लगे, तब नीचे उतार कर उसमें उपरोक्त काष्ठौषधियों का चूर्ण मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बना सुरक्षित रख लें।

मात्रा-अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम। शोथ रोग में गो-मूत्र के साथ, पाण्डु रोग में पुनर्नवा स्वरस के साथ और उदर रोग में जल के साथ दें।

पुनर्नवा मण्डूरकी गोलियां देखने में रक्ताभ या कृष्णाभ हुआ करती हैं। यह वर्ण मण्डूर भस्म की उत्तमता पर निर्भर है। स्वाद में साधारणतया तीक्ष्ण तथा चरपरी होती है, जिस पात्र में ये गोलियां रखी रहती हैं, उसे सूँघने से गो-मूत्र जैसी गंध मालूम होती है। पुनर्नवादि मण्डूर में उत्तम भस्म मिलायी गयी है या नहीं यह जानने के लिए इसकी एक गोली को चूर्ण कर पानी में डाल दें, यदि भस्म उत्तम बारितर होगी तो गोली का चूर्ण जल पर तैरने लगेगा। यही इसकी उत्तमता का परिचय है।

पुनर्नवादि मण्डूर रस में कटु-तिक्त विपाक, में कटु और वीर्य में कुछ शीतल और उष्ण होता है। यह मूत्रल, दीपन, पित्तशामक, रक्तवर्द्धक, रक्त प्रसादक, मेध्य, कफ वातहर, शूलहर, चक्षुष्य, त्वग्दोषनाशक, कृमिनाशक, वातानुलोमक, रसायन और यकृत-क्रियाभिबर्द्धक है।

मण्डूर और पुनर्नवा का यह रासायनिक योग शरीर में खून को बढ़ाता है और सृजन को नष्ट करता है, यह इसका प्रधान कार्य है। इसके उपयोग से दस्त और मूत्र साफ-साफ आने लगते हैं शरीर में रक्त की गति नियमित हो जाती और नवीन रक्त उत्पन्न होता है।

उपयोग

जिन रोगियों को बहुत समय से रक्तक्षय या पाण्डु हो; उन्हें प्रायः सर्वांग शोथ होने लगता है और शरीर पीला हो जाता है। ऐसी दशा में पुनर्नवादि मण्डूर का सतत प्रयोग शोथ और रक्त-क्षय दोनों की निवृत्तिकर रोगी को स्वस्थ—सबल बना देता है।

जब कभी किसी को जलोदर हो जाता है, तो उस समय भी वृक्कों द्वारा अधिक जल शरीर से निकालने के लिए चिकित्सकगण इसका उपयोग करते हैं। कभी-कभी पेट में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, जो अन्त्रस्थ रसादि को चूषण करते रहते हैं, जिससे रक्ताणु नहीं बन पाते। परिणाम यह होता है कि रोगी का शरीर पाण्डु या कामला रोग-पीड़ित मालूम होने लगता है। इस कृमि को नष्ट करने के लिए भी पुनर्नवादि मण्डूर अत्युपयोगी है।

कभी-कभी वातरक्त, कुष्ठ या रक्त-पुष्टि के कारण चर्म रोग हो जाते हैं, या कभी-कभी अशुद्ध पारदादि या डाक्टरी दवाओं के कुपरिणाम स्वरूप त्वचा पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं, रोगी इस व्याधि से परेशान हो जाता है। इस रक्त-कुष्ठ को शान्त करने के लिए पुनर्नवादि मण्डूर सारिवाद्यासव के साथ सेवन करने से अपूर्व लाभ करता है। पुनर्नवादि मण्डूर में सारक और ग्राहक दोनों गुण हैं। अतएव जब बहुत पतले दस्त हो रहे हों, या अशं रोग में जब कठिनता से दस्त निकलता हो तब पुनर्नवादि मण्डूर का उपयोग अवश्य करना चाहिए, इससे आश्चर्य गुण देखा गया है। कोई-कोई चिकित्सक इसे राजवक्ष्मा में जब रोगी के मुँह से रक्त आने लगता है उस अवस्था में

रक्तावरोध तथा क्षतरोपण के लिए इसका उपयोग करने को कहते हैं, वैद्यों को इसकी परीक्षा करनी चाहिये।

पुनर्नवादि मण्डूर में मण्डूर, गोमूत्र और पुनर्नवा तीनों ही परम मूत्रल हैं। मण्डूर में साधारण लोहे से अधिक मूत्र निकालने की क्षमता है। इसी तरह गोमूत्र में यूरिया का परिमाण अधिक होने से वह भी मूत्रल है।

पुनर्नवा मण्डूर के कारण शोथ नाश का कार्य यकृत क्रियाभिवर्धन से बढ़े हुए मूत्रातिरेक द्वारा होता है। गोमूत्र, देवदारु, आमलकी, कुटकी एवं इन्द्रजौ यकृत की क्रिया को प्रभावित करते हैं।

पुनर्नवा मण्डूर शोथ, कुष्ठ मुस्तक वृक्कों की निस्पन्दनोपरान्त प्रचूषण गति को मन्द करके अधिक मूत्रराशि बाहर फेंकते हैं। परिणाम यह होता है कि जहाँ-जहाँ जल संचय धातुओं में हो जाता है, वह लौटने लगता है और शोथ कम होने लगता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रक्त की वाहिनी प्राचीरों की संकुचनशीलता में वृद्धि होने तथा शोथ के कारण उनमें उत्पन्न प्रवेक्ष्यता की विकृति—जिसके कारण जलीयांश धातुओं में भरने लगता है—नष्ट हो जाती है। इससे शोथ उत्पन्न होने की प्रवृत्ति रुक जाती है। वृक्क या उदर के सर्वांग शोथों में यह बहुत लाभप्रद कहा गया है।

पुनर्नवादि मण्डूर श्वसन-संस्थान पर भी महत्वपूर्ण कार्य करता है। लोहांश की उपस्थिति से यक्ष्मा में यक्ष्मिकाओं के कारण रक्तवाहिनियों में क्षत होने के कारण होनेवाले रक्तप्लीवन को रोकता है तथा श्वास पेशियों के आक्षेप को नष्ट करके श्वास क्रिया को सुधारता है जिससे

कास की प्रवृत्ति रुक जाती है। जिस प्रकार वाहिनी प्राचीरों को यह सबल करता है, वैसे ही अन्य प्राचीरों को सबल करके वहाँ के कृमियों या मलबन्ध को नष्ट कर देता है। इसके कारण कृमि-विकार या अर्श समूल नष्ट हो जाते हैं।

नव्य मत

पुनर्नवा की आधुनिक खोज होने से इसकी अपूर्व शोथघ्न गुणों का परिचय 'घोष' की 'मेटेरिया मेडिका' में निम्न-लिखित है—

Punarnava has been used in India as a Remedy for dropsy (शोथ) from time immemorial. But only recently a thorough investigation of the drug has been done. Intravenous injection of the alkaloid produces a distinct & persistent rise of blood pressure & a marked diuresis. The diuresis is chiefly due to the action of Punarnavine on the renal epithelium, partly to the rise of blood pressure.

ये शब्द चोपड़ा, घोपाल और घोष आदि विद्वानों के अनुभवों के आधार पर हैं, जो पुनर्नवा शोथनाशक है, इसे मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। कदाचित् यदि उनके प्रयोग इस दिशा में असफल रहते, तो पुनर्नवा के शोथ हर गुण परक आचार्यों के वाक्यों का आज का समाज आदर न करता! जैसा कि अर्जुनत्वक् के हृद्य होने पर भी नहीं हो रहा है।

—:०:—

वैद्यनाथ मोतीभस्म

दिल और दिमाग को पुष्ट करने की बेजोड़ दवा है। यह सौम्य और शीतवीर्य है। नाक,

मुँह, मलद्वार और गर्भाशय से गिरने वाले रक्त को बन्द करती है। मूल्य—१ तो० ५०),

दो आना भर ६।—), एक आना भर ३३), दो पैसा भर १॥=)

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

स्वास्थ्य - सूक्तियाँ

वैद्य रामलखन मिश्र

- १—संसार का प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख धर्म के बिना नहीं हो सकता, इसलिये प्रत्येक आदमी को धर्म का पालन करना जरूरी है।
- २—हिंसा, चोरी, शास्त्रविरुद्ध इच्छा, चुगली, कटुभाषण, असत्य भाषण, असम्बद्ध वचन, शारीरिक पीड़ा, दूसरे को मारने का विचार, किसी को नीच निगाह से देखना—ये १० पापकर्म शरीर, वाणी या मन से त्याग देना चाहिये।
- ३—शुभचिंतक मित्रों की सेवा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये। लेकिन अशुभ चाहने वाले लोगों की भी विपत्ति के समय सेवा करना उचित है।
- ४—बेकार, रोगी और शोकवाले की शक्ति के अनुसार सहायता करना आवश्यक है।
- ५—किसी भी तरह की सहायता चाहनेवाले को विमुख न करें, न उसका अपमान करें और न उस पर झूठा कलङ्क लगावें।
- ६—अपकार करनेवाले शत्रु का भी उपकार चाहना योग्य है। सम्पत्ति और विपत्ति में एक रंझ-सा रहना चाहिये। कारण में डाह करना चाहिये, फलमें नहीं। जैसे राम लखपति किस कारण से हुआ, उस कारण से श्याम को लखपति होने का डाह करना योग्य है। श्याम को यह डाह न करना चाहिये कि राम लखपति क्यों हो गया?
- ७—समय देख कर थोड़ा और मधुर बोलना चाहिये। परिचित मनुष्यों को देखते ही मुस्कुराकर खुद पहले बोलना चाहिये।
- ८—किसी को अपना शत्रु तथा अपने को किसी का शत्रु नहीं बतलाना चाहिये। अपमान तथा मालिक की अप्रीति प्रकट न करनी चाहिये, इस से महान् हानि होती है।
- ९—अकेले अपने आपको सुखी करने की इच्छा खराब है। सब लोगों पर आँख बन्द करके विश्वास न करना चाहिये और न सब लोगों पर अविश्वास ही करना चाहिये।
- १०—दूसरों को प्रसन्न करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि पहले उसका आशय जानें और फिर उसी आशय के अनुसार आचरण करें।
- ११—इन्द्रियों का एक दम दमन न करना चाहिये और न उनके बिल्कुल वसमें हो जाना अच्छा है। हर काम में मध्यम रहना बहुत अच्छा है।
- १२—धर्म, अर्थ और काम से शून्य जीवन बिताना अच्छा नहीं है।
- १३—पाँचवें दिन हजामत बनाना तथा नाक, कान, आँख, गुदा आदि मलके स्थान को खूब साफ करना चाहिये। सुन्दर कपड़े पहनो, लेकिन चमक पैदा करनेवाले कपड़े न पहनो। सुगन्धित द्रव्य लगावो, लेकिन तेज—कड़ी सुगन्ध से परहेज करो।
- १४—नदी को तैर कर पार करना, आगकी लपट के सामने जाना, संदिग्ध जानवर की सवारी करना खतरनाक है।
- १५—मुंह बन्द करके हँसना, जम्हाई लेना या छींकना हानिकारक है।
- १६—बिना कारण नाक खुजलाना, दाँतों से अँगुली दबाना या जमीन का खोदना—बुरी आदतें हैं।
- १७—शारीरिक कार्य, बातचित या मानसिक विचार, थकावट से पहले ही बन्द कर देना चाहिये।
- १८—सूर्य की तरफ न देखो, सिर पर रख कर बोझा न ले चलो, अत्यन्त महीन चीज को, तेज रोशनी को खराब वस्तु को और अप्रिय चीजों को आँख से ज्यादा न देखो।
- १९—शरीर के किसी भाग से, मुंह से या नाखूनों से बाजा न बजाओ। मुँह की धुँआँ से बचो, शराब न पीओ तथा पराई स्त्रियों से दोस्ती मत करो।
- २०—इस संसार का सोच-फिक्र करना बेकार समझ कर जैसे बुद्धिमान लोग आचरण करें, वैसे ही आचरण करना बुद्धिमानी है।

२१—मनुष्य का सबसे उत्तम आचरण यह है कि मनको को बश में रखे, शक्ति के अनुसार दान देता रहे, चित्त और इन्द्रियों के अधीन न रहे, परमार्थ में स्वार्थ बुद्धि रखे।

२२—जो आदमी रोज इस बात को याद रखता है कि मेरा दिन कैसे व्यतीत हो रहा है, अर्थात् आज का दिन बिना बरबाद काम तो नहीं गया—वह आदमी कभी दुःखी नहीं होता।

२३—नीचे लिखे वेगों के रोकने की चेष्टा न करो :—

(१) अपान वायु, (२) पायखाने की हाजत, (३) पेशाब की हाजत (४) छींक, (५) प्यास, (६) भूख (७) नींद, (८) खाँसी, (९) थकावट, (१०) दमा, (११) जम्हाई, (१२) आँसू, (१३) जल्दी, (१४) मैथुनेच्छा—इन चौदह वेगों को रोकने से अनेक तरह के रोग पैदा हो जाते हैं।

२४—नीचे लिखे वेगों को जहाँ तक बन सके रोको :—

(१) लोभ, (२) ईर्ष्या, (३) द्वेष, (४) दूसरे की निन्दा, (५) मोह आदि। इन वेगों को रोकनेवाला सदा सुखी रहता है।

२५—नीचे लिखी बुरी आदतों से बचो :—

(१) मुंह ढँक कर सोना, इससे मुंहसे निकली हुई जहरीली हवा फिर साँस द्वारा शरीर में वापिस जाकर अनेक तरह के रोग पैदा कर देती है।

(२) सिनेमा, थियेटर आदि का अधिक देखना, इससे खून और आँखें खराब हो जाती हैं।

(३) रात को कमरे के सब दरवाजे बन्द करके सोना, इससे खराब गैस शरीर में घुस कर तन्दुरुस्ती बिगाड़ती है।

(४) अनुपयुक्त स्थान में थूकना या नाक साफ करना, इससे रोग फैलते हैं।

(५) बिना हाथ धोये खाना, इससे रोग के कीड़े पेट में चले जाते हैं।

(६) मक्खियों या अन्य जीवों से छुआ भोज्य पदार्थ खाना इससे रोग के कीड़े पेट में चले जाते हैं।

(७) किसी के साथ या किसी के मुंह का भोजन खाना, इससे एक की बीमारी दूसरे को पकड़ती है।

(८) तिनका, कलम और पेन्सिल आदिको दाँतों से चबाना, इससे रोग के कीटाणु पेट में चले जाते हैं।

(९) बिना अच्छी तरह चबाये जल्दी-जल्दी भोजन करना इससे मन्दाग्नि की बीमारी हो जाती है।

(१०) एक बार में बहुत पानी पीना या प्यास को बिल्कुल मारना, इससे अजीर्ण हो जाता है।

(११) अधिक खाना, इससे हैजा हो जाता है।

(१२) मैले कपड़े पहनना, इससे खुजली हो जाती है।

(१३) कूड़ा-करकट जहाँ-तहाँ डालना, इससे गंदगी और रोग फैलते हैं।

(१४) मैला, कूड़ा-करकट या बच्चों का पायखाना सड़क पर फेंकना, इससे सड़क गन्दी हो जाती है और और महल्ले में बीमारी फैल जाती है।

(१५) दाँतों को साफ न रखना, इससे दाँतों का मैल पेट में जाकर मन्दाग्नि पैदा करता है।

(१६) अधिक विषय भोग करना, इससे क्षय रोग हो जाता है।

(१७) चिन्ता करना, इससे पागलपन हो जाता है।

(१८) शोक से चश्मा लगाना, इससे आँखें कमजोर हो जाती हैं।

(१९) दुःखी रहना, इससे बुद्धि और शक्ति नष्ट हो जाती है।

(२०) डरना, इससे दिल कमजोर हो जाता है।

(२१) विदेशी वस्त्र पहनना, देश की गरीबी बढ़ती है।

इन वाक्यों के पठन-मनन और तदनुसार आचरण करने से आपको लाभ तो होगा ही, साथ ही आज के तथाकथित वैज्ञानिकों द्वारा तवाविष्कृत (?) कहे जाने वाले स्वास्थ्योपयोगी बहुव्ययसाध्य उनके नियमों का मूलाधार का भी पता लग जायगा, कि उसका मूलाधार आयुर्वेद ही है।

स्वास्थ्य और वायु

डा० कुलरंजन मुखर्जी

(१)

हमारा फुफुस प्रति श्वास में खुली हवा से ऑक्सीजन ले लेता है और हर निःश्वास में वायु के साथ रक्त से लिया हुआ कार्बोनिक एसिड विष को निकाल देता है। हमारा जीवन इस श्वास-प्रश्वास क्रिया पर निर्भर करता है।

ऑक्सीजन शरीर के भीतर जा कर भोजन के साथ मिलता है और उसे दग्ध कर देता है। अगर इस ढंग से भोजन ऑक्सीजन के साथ न मिले, तो भोजन शरीर के कोई काम नहीं आता है। इसलिये वाइटाइन आदि की तरह वायु भी एक प्रकार का भोजन है। ऑक्सीजन सिर्फ भोजन को दग्ध कर देता है यह बात नहीं है। यह शरीर के भीतर जाकर शरीर के विष और दुषित पदार्थ को भी जला देता है।

इसलिए श्वास-प्रश्वास जितना गहरा होता है उतना ही ज्यादा ऑक्सीजन शरीर में आ जाता है और उतना ही कार्बोनिक एसिड विष शरीर से निकल जाता है। इस उद्देश्य को साधन करने के लिये हमारे महाज्ञानी ऋषि-मुनियों ने प्राणायाम की विधि बानाये हैं।

हम जो श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं उसमें हमारे फेफड़े का एक तिहाई भाग ही काम में आता है। बाकी दो तिहाई भाग बेकार ही रहता है और यह बेकार हिस्सा जो श्वास के साथ फैलता नहीं है वह पर्याप्त व्यायाम का कमी के कारण क्रमशः दुर्बल हो जाता है। किसी-किसी का कहना है कि दुनिया में मरने वालों की संख्या में एक तिहाई लोग फेफड़े के कारण से मरते हैं। इसलिये दीर्घ जीवन लाभ करने के लिये ऐसा कुछ करना चाहिए, जिससे फेफड़े का यह बेकार अंश काम में आये। प्राणायाम से यह उद्देश्य सिद्ध होता है।

बहुत दिनों तक प्राणायाम के अभ्यास करने से दोनों फेफड़े शक्तिशाली हो जाते हैं। फेफड़े का संकोचन और प्रसारण की क्षमता में वृद्धि होती है और श्वास-प्रश्वास भी दीर्घ हो जाता है। यह देखा गया है कि जिसे श्वास-प्रश्वास जितना दीर्घ है, वह उतना ही दीर्घ जीवन लाभ

करता है। इसलिए, स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्राणायाम का महत्त्व अमूल्य है।

प्राणायाम करने से स्नायुयन्त्र शान्त और सबल हो जाता है। इसलिए नियमित रूप से प्राणायाम करने से स्नायुविक उत्तेजना, उद्वेग तथा मानसिक चंचलता चली जाती है। अच्छी नींद आती है। आत्म संयम की शक्ति बढ़ जाती है। इसलिए ; हमारे शास्त्र में प्राणायाम को योग कहा जाता है। दर असल में इससे देह में नवीनता अटूट स्वास्थ्य, मन की एकाग्रता और रोग रहित ऐसा आनन्दमय जीवन लाभ होता है कि रोग वहाँ साकने तक नहीं पाता है। प्राणायाम के योग से ये सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

पूरक, रेचक और कुम्भक ये तीन के मिलने से प्राणायाम होता है। धीरे-धीरे वायु ग्रहण करने को योग की भाषा में पूरक, फेफड़े में रोकने को कुम्भक और धीरे-धीरे वायु निकलने को रेचक कहते हैं। पूरक में जितना समय लगाया जाता है, उससे चौगुना समय कुम्भक में लगाना चाहिए रेचक में पूरक का दुगुना समय देना उचित है।

किन्तु ; बाहर-से ली हुई वायु तभी काम में आती है, जब वह निर्मल होती है। अगर वायु दुषित हो तो लाभ के बदले हानि ही होती है। वायु दुषित रहने पर ग्रहण करने से खून विगड़ जाता है और ; ज्यादा दिन तक सेवन करने से क्लान्ति, अग्निमन्द और फुफुस के अनेक रोग प्रकट होते हैं। खराब भोजन करने से जैसा हर एक प्रकार का रोग उत्पन्न होता है, दुषित वायु ग्रहण करने से भी ऐसा फल हो सकता है। इसलिए स्वास्थ्य रक्षा के लिए हमेशा निर्मल वायु ग्रहण करना बहुत जरूरी है।

(२)

हमेशा खुली हवा प्रश्वास के साथ ग्रहण करना जितना आवश्यक है खुले चमड़े के ऊपर खुली ठंडी हवा का स्पर्श मिलना भी उतना ही आवश्यक है। प्रश्वास के साथ निर्मल वायु ग्रहण करने से जैसा लाभ होता है चमड़े के ऊपर उसी प्रकार ठंडी हवा के स्पर्श से लाभ होता है।

वास्तव में खुले चमड़े के ऊपर नियम के अनुसार ठंडी हवा ग्रहण करना ही एक ढंग का इलाज है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे वायुस्नान कहा जाता है।

वायु स्नान ग्रहण करने से स्नायु में ताकत आ जाती है और इसके फलस्वरूप सारा शरीर ताकतवर हो जाता है। क्योंकि हमारे देह-यन्त्र को स्नायु ही प्रधान परिचालक है। ठंडी हवा के प्रभाव से जब स्नायु यन्त्र ताकतवर हो जाता है तब शरीर का तमाम काम ठीक रूप से होता है।

वायु-स्नान से प्रधान लाभ यह होता है कि इससे सुनिद्रा आ जाती है। स्नायुविक उत्तेजना चली जाती है और स्वस्थ ढंग से चिन्ता करने की ताकत मिलती है। नियमित रूप से वायु स्नान लेने पर ध्यान की क्षमता बढ़ जाती है और जीवन की हर एक समस्या आसानी से हल हो जाती है।

किन्तु इससे सबसे ज्यादा लाभ यह होता है कि ठंडी हवा के स्पर्श से बहुत अच्छी तरह भूख लगती है। आज कल के सभ्य समाज में बहुत-से आदमी को सारी ज़िन्दगी में भूख कंसी है यह बात जानने का मौका ही नहीं मिलता है। हमेशा बन्द घर में रहना ही इसका एक प्रधान कारण है। अगर ये लोग बहुत सवरे बिछौने छोड़कर करीब दो मील टहल कर लौट आ सकें तो भूख में फर्क देखकर आश्चर्य में पड़ जायेंगे।

हर एक स्थान पर वैज्ञानिक खोज से यह प्रमाणित हुआ है कि नियमानुसार वायु स्नान ग्रहण करने से ताकत बढ़ जाती है, बड़ापा दूर हो जाता है और रोग के साथ लड़ने की ताकत बढ़ जाती है।

इसलिए; किसी-किसी का कहना है कि फुफुस द्वारा खुली हवा ग्रहण करने से जो लाभ होता है, खुले चमड़े पर खुली हवा ग्रहण करने से उससे कम लाभ नहीं होता है।

(३)

किन्तु; वायु स्नान हमेशा यथा संभव खुले वदन में लेना और जब बाहर की हवा चलंत, शुष्क और शरीर का ताप ठंडा रहता है, तभी वह लेने से ठीक-ठीक लाभ होता है।

साधारणतः हर रोज एक घंटा वायु स्नान करना काफी है। किन्तु वास्तव में इसका कोई खास समय नहीं है। जितनी देर तक वायु स्नान किया जाय, उतना ही लाभ होता है। ग्रीष्म प्रधान देश में कमीज न पहन कर काम करने से भी वायु स्नान का लाभ बहुत अंशों में आ जाता है। जिन्हें सुविधा हो वे बरामदे में बैठ कर आफिस का काम

कर सकते हैं। घर बनाने के समय घर में इतने बड़े जंगले का रखना आवश्यक है जिससे घर और बाहर में कोई मकान न हो।

सोने के समय में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें हर प्रश्वास वायु के साथ विशुद्ध वायु भीतर जा सके। हमारे शयन घर में हमारे जीवन का आधा समय बीत जाता है। इसलिए; ऐसे स्थान में बिछौना करना चाहिए जिसमें खुली हवा अवधि गति से आ जाये।

किन्तु अफसोस की बात यह है कि बहुत से आदमी सोने के घर को माल गुदाम की तरह काम में लाते हैं। कोई-कोई मनुष्य सोने के घर को चीजों से इस तरह बोझाई कर देते हैं कि उनके घर की हवा भारी हो जाती है। बहुत से लोग ठंड लगने के भय से घर की खिड़कियों को अच्छी तरह बन्द करके घर को एक संदूक बना कर सोते हैं। इन सब लोगों को ठंड लगने की आदत ज़िन्दगी में नहीं आती है।

वास्तव में ठंडी हवा से शरीर को बचाकर चलने से कभी मनुष्य ठंड से छुटकारा नहीं पा सकता है। सर्दी से छुटकारा मिलने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि धीरे-धीरे शरीर में ठंडी हवा लगाना। चमड़े को ऐसा बनाना चाहिये कि किसी प्रकार के ठंड से ठंडा न लगे। सर्दी से छुटकारा मिलने का यही प्रधान उपाय है।

पहनने का कपड़ा ऐसा होना चाहिए कि जिससे उसके भीतर वायु आती-जाती रहे। घरमें रहने के समय हमेशा इस तरह का कपड़ा पहनना उचित है। रात में सोते समय छोटी धोती या लुङ्गी पहन कर सोना चाहिए।

वायु स्नान से जैसी स्वास्थ्य में उन्नति होती है रोग आराम में भी वैसा ही काफी लाभ होता है।

रोगी को खुले बरामदे में रखने से अधिकांश अवस्था में रोग जल्दी कम हो जाता है। जब रोगी के शरीर में जलन और बेचैनी रहे, तब रोगी को खुले बरामदे में आने से थोड़े समय में ही उसकी बेचैनी चली जाती है और रोगी सो जाता है।

नये रोग में रोगी के शरीर को गले तक ढक कर बरामदे में रखना उचित है। किन्तु; गर्मी के मौसम में रोगी जितना आवरण चाहे उतना ही देना चाहिए। बहुत से आदमी

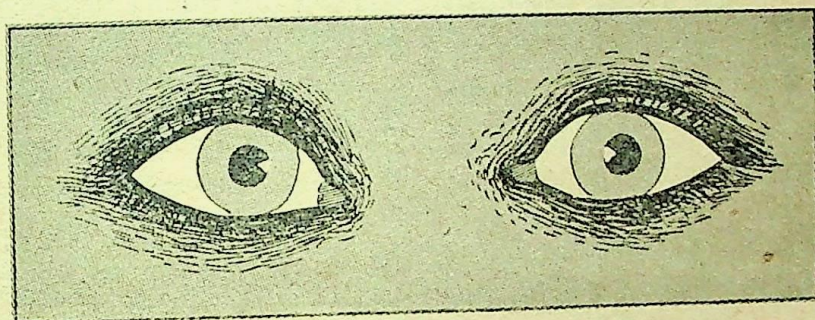
(शेषांश पृष्ठ ८४९ पर)

आँखों की रक्षा कैसे करें

शरीर के अंग-प्रत्यंग से मिलकर ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है। किसी भी अंग के विकृत होने से शरीर तो नष्ट हो ही जाता है वरन् सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है। प्रकृति की सुकुमार प्रवृत्ति ने मानव-सौन्दर्य के विकास का पूर्ण ध्यान रखकर ही उसकी रचना की है। जिस प्रकार दाँत न रहने से मुख पोपला होकर वृद्धावस्था के चिह्न स्पष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार नेत्र भी नष्ट होने पर मनुष्य को असहाय तो बना ही देते हैं साथ ही मनुष्य के

उस काजल के साथ जस्त फूल के बर्तन में तांबे के पैसे घिसकर व छानकर रख लें और काजल में जरा-सा डालकर लगाते रहने से सभी नेत्र-रोग दूर हो जाते हैं। गर्मी की ऋतु में गुलाब जल की बूंद कभी-कभी डालते रहने से नेत्र ठण्डे रहते हैं और गर्मी का कोई विकार नेत्रों को नहीं व्यापता। कपूर को जलाकर भी काजल बनाते हैं, वह भी ठण्डा रहता है।

इतने पर भी यदि कभी आँख दुखने आये तब पहिले



सौन्दर्य को भी नष्ट कर देते हैं। किसी-किसी के नेत्र इतने आकर्षक होते हैं कि पूरे मुखमण्डल पर अपना व्यापक प्रभाव डालकर उसे आकर्षक बना देते हैं। किसी के सुन्दर मुख पर की चिमंधी, नन्हीं आँखें उसे कुरूप कर देती हैं। सारांश यह कि नेत्र ही हमें संसार के सौन्दर्य की अनुभूति प्रदान करते हैं और साथ ही हमारे सौन्दर्य का वर्धन भी करते हैं। अतः हमें पूर्ण रूप से उसकी रक्षा का उपाय करना चाहिये। बालक के जन्म के कुछ समय पश्चात् से ही उसकी आँख में काजल डालना आरम्भ कर देना चाहिए। अनेक स्त्रियाँ गीला काजल डालती हैं, वह भी ठीक है। परन्तु, सबसे सरल उपाय काजल का यह है कि शुद्ध सरसों के तेल में शुद्ध स्वच्छ रुई की बत्ती जलाकर फूल के बर्तन के ऊपर उसकी स्याही जमने दें और गरम-गरम ही बालक की आँख में डालें। इससे नेत्रों की ज्योति बढ़ती व नेत्रों का आकार भी सुन्दर होता है। काजल लगाने के पश्चात् यदि हाथ की हथेली को दीपक पर गरम करके आँखें सेंक दी जायें तो न केवल सदा से ही आँखें बचेंगी वरन् भारी पलकें भी हल्की हो जाती हैं। जब बालक बड़ा हो जाय तब

दो-तीन दिन कोई दवा नहीं करना। फिर घीकुंआर का गाभा, अफीम, फिटकरी, अम्बा हल्दी, पठानी लोध्र सबको थोड़ा-थोड़ा लेकर घीकुंआर के गाभे के साथ मिला लें। फिर एक कटोरी में आग पर पकावें। इसके पश्चात् एक साफ कपड़े की पोटली में रखकर यह पोटली आँखों पर फेरें और थोड़ा-थोड़ा रस आँख के अन्दर भी जाने देना चाहिये। इससे शीघ्र ही आँख की सुखी कटकर आराम मिलता है।

एक और आँख का आजन है—चिड़चिड़ा (अपामार्ग) की जड़, मसी या काकजंघा की जड़, पुत्रवाली स्त्री का दूध और बछड़ेवाली गाय का घी लें। याद रहे—पुत्रीवाली का दूध और बछिया (मादा) वाली गाय का घी न हो। इन चारों वस्तुओं को फूल की थाली में रगड़-रगड़ कर एकरस कर दो। आजन तैयार होने पर लोहे की डिब्बी या घोंघे में रख लें। यह आजन अत्यन्त उपयोगी है। इसके लगाने से माड़ा, फूली, दुष्टि की कमजोरी, रतौंधी, डरका आदि नेत्र-रोगों को आराम मिलता है।

हमारे राष्ट्र-जीवन का हास

श्री विष्णुदत्त पुरोहित

‘अहं ब्रह्मास्मि’, ‘तत्त्वमसि’, योग शिचत्तवृत्ति निरोधः एवं ‘अहिंसा परमो धर्मः’ आदि माननेवाले सिद्धान्तों का देश भारत, समूची पृथ्वी पर सब से निराला एवं सुगम राष्ट्र जीवन के अवयवों द्वारा अपनी, अपने देश की एवं संसार की शुभकामना में ही अपना अधिकांश समय यापन किया करता था। काल-कर्म (प्रारब्ध) के द्वारा भारत में सत्तान्ध राजकीयों द्वारा विलासिता को प्रश्रय दिया जाना प्रारम्भ हुआ, विलासिता एवं आध्यात्मिकता रात एवं दिन की तरह एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हैं। इह-लौकिक जड़सृष्टि में शनैःशनैः भौतिकता ने भी आध्यात्मिकता पर प्रहार प्रारम्भ किया। भारतीय मानव की मनःस्थिति में जहाँ दूसरे में एवं अपने में दिखाई देनेवाले पार्थक्य को नगण्य समझा जाता था, वहाँ उसे धीरे-धीरे प्रश्रय, प्रच्छ-न्नता के आवरण में मिलने लगा। उधर भूतकाल की आदर्शवादिता का नशा अपनी चरम सीमा पर था, और नशा तो नशा ही है, वह मानवीय चिन्तन-शक्ति को हठात् अथवा शनैःशनैः समाप्त कर दिया करता है। चिन्तन-शक्ति ही मानव की वह शक्ति है जिसके बल पर भूत काल में हमारे मनीषियों द्वारा भारतीय आदर्श संस्थापित किया गया था। उसके म्लान होने पर, अपने व पराये में विभेद परिलक्षित होने पर, अपनी तृप्ति की ओर लक्ष्य स्थापित करने पर हमारी भावनाएँ वह उदारता अपने में संजोये न रख सकी। यही कारण था कि भारतीयों को अपने शत्रुओं द्वारा दी गई पराधीनता का वरण कर भूतकालीन अपने सारे आदर्शों को तिलांजलि देनी पड़ी, समय ने तो यहाँ तक भी दिखाया कि अपने उन आदर्शों की हमने अपने ‘अहं’ को सुखी व समृद्ध बनाने के लिये खिल्ली तक उड़ाई एवं अपने उस अलौकिक राष्ट्रजीवन से संन्यास ले लिया? जिस तरह विद्युत्-शक्ति-पुंज की धाराओं का जब तक आदान प्रदान होता रहता है तबतक तो प्रकाश अनिवार्य है किन्तु, सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर भूतकालीन प्रकाश की गाथाओं के कहने मात्र से प्रकाश की अनुभूति प्रत्यक्ष तो क्या स्वप्न में भी अनुभावित नहीं की जा सकती। इसी

सिद्धान्तानुसार भारतीयों ने अपने राष्ट्र-जीवन की अनुभूतियों को केवल पुस्तकों में ही रख कर उसे अतीव गोपनीयता देनी प्रारम्भ की। तत् तत् समकालीन शत्रुओं को हमारी उन्नति का रहस्य सालूष था, कारण कि भारतीय अपने नित्य प्रति की विराट पूजा में भावों की अनुभूति एवं समर्पण का अलौकिक आनन्द उठाया करते थे। अतः, वह तो कोई गुप्त नहीं था। शत्रुओं ने उसे मूलतः विनष्ट करने में ही अपने शासन के नीव की मजबूती समझी और उनका सर्वप्रथम ध्यान हमारे भूतकालीन ज्ञान के भंडार— एवं संस्कृति पर पड़ा। जो कि हमारे द्वारा सर्वथा गोपनीय रखा जाता था, संस्कृति के साथ-साथ हमारी भाषा एवं भूषा पर भी वार हुआ। अनेकों शताब्दियाँ समाप्त हो गईं, शत्रुओं का साम्राज्य फला एवं फूला—उसकी नीव यहाँ सुदृढ़ रूप से गाड़ी गयी, और भारतीय का आमूल चूल परिवर्तन भी सम्पन्न हो गया। पर, उन विदेशी सत्ता-धारियों को उस आनन्द की क्षणिक अनुभूति भी न हुई, जो कि भूत काल में भारतीयों को हुई थी। उनमें के कुछ विचारक उसी सुख के यत्र-तत्र छिन्न-भिन्न भग्नावशेषों को इकट्ठा कर अपनी कल्पना शक्ति को दौड़ाने लगे। किन्तु, उनमें उस तत्त्व के बीज का अभाव था। अतः मात्र कल्पना को वे विश्व के सामने खड़ा करने में आज अवश्य ही सफल हुए हैं किन्तु, क्रियात्मक परिणति में तो भारतीय बीज को धारण करनेवाले पूज्य बापू ही निकले एवं इस आतंकित समय में भी उस महान आलोक की आभा का क्रियात्मक एवं शाब्दिक परिचय उन्होंने एक बार और दिया जिससे समस्त विश्व में एक बार चकाचौंध दिखलाई पड़ी और वहीं पर भारतीय राष्ट्रजीवन ने एक करबट ली, परिणाम-स्वरूप हमारा भारत आजाद हो गया और स्वतन्त्र राष्ट्रों के प्रति अपनी समकक्षता आज अनुभवित कर रहा है।

उक्त इतिवृत्त से हमें यह मालूम हो जाता है कि हमारे राष्ट्र जीवन का हास एक लम्बे समय से होता आ रहा है, तो हमें यह सोचना चाहिये कि इसका प्रारम्भ किन-किन कारणों एवं परिस्थितियों से हुआ, हास में कब प्रगति

हुई एवं क्यों हुई, प्रगति का कारण हम स्वयं थे या अन्य कोई ?

प्रारम्भ

विगत महाभारत के भीषण युद्ध के बाद से ही अथवा दुर्योधन के शासन काल से किवा महाराज परीक्षित के बाद से हमारे राष्ट्र-जीवन के हास का प्रारम्भ माना जा सकता है। ऐसा समझना हमें तब पड़ा जब कि हमने तत्कालीन अनेकों ग्रंथों में हास के चिह्न प्रमाण सहित पाये। हालां कि यहीं से हास का प्रारम्भ द्रुत-गति से नहीं हुआ—प्रत्युत हास की ओर हमारा राष्ट्र-जीवन गतिमान हो चला। हिन्दुशाही के अन्तिम क्षणों में इसमें एक उबाल आया, पर फिर भी वह मध्यम पड़ गया; किन्तु मुगलशाही के प्रारम्भ में हास ने अपना चरम रूप स्वीकार किया ही था कि शासकों के दिमाग में अपनी सांघातिक भूल सूझी एवं उन्होंने उसके निराकरणार्थ साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का सहारा लिया। यहीं से हास की गति में स्थायित्व आने लगा, जो कि फिर भी शासकों की शासन नीति में बाधक था, पर शासकों की सांप्रदायिक मनोवृत्ति अपनी चरम सीमा पर थी। अतः तत्कालीन विद्वान् शासकों ने उस रूप व गति को आन्तरिक रूप व गति में मोड़ दिया। इसी तरह हमारे सारे शासकों ने उन लोगों का ही अनुगमन किया। फिर भी महान् आश्चर्य है कि समूल नाश के प्रयत्नों की समधिक सफलता के लक्षणों की विद्यमानावस्था में भी जीवन की ज्वाला अवश्य ही तिरोहित हो गई है, परन्तु राख के नीचे आज भी अग्नि विद्यमान है, जिसे नष्ट करने का भगीरथ प्रयत्न आज भी चालू है और स्वतन्त्रता के जमाने में भी आज के शासकों का उन्हें सर्वतः समर्थन प्राप्त है, फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिल रही है, यह एक संकेत है जो कि कट्टर से कट्टर विरोधी को भी आयुर्वेद प्रशंसक बनाने का रास्ता यदि कोई ढूँढे तो सफलता निश्चित है।

कारण

आयुर्वेदीय आचार्यों द्वारा आयुर्वेद को अपनाने से पहिले अपने आप में एक भावना ठूस-ठूस कर भरने की कठोर हिदायत दे रखी है कि “नात्मार्यं, नाऽपिकामार्थ-मथ भूत दयां प्रति” इस हिदायत से जहाँ-जहाँ हम चूके हैं वहाँ-वहाँ हमने अपने राष्ट्र-जीवन के शीष में कुल्हाड़ी मारी है। द्वितीयतः, पूर्णतः अष्टांग आयुर्वेद का अध्ययन बिना किये ही वैद्यक वृत्ति अपना लेना भी राष्ट्र-जीवन का हास ही माना जायगा। ऐसे कोई एक कारण खोजे जा सकते हैं, जिनमें जाने या अजाने जीवनीय विज्ञान की उपेक्षा की जाय एवं उसके साथ ठिठोली खेली जाय, जैसी

कि जीवनीय विज्ञान के पाश्चात्य अनुसंधानकों द्वारा आये दिन ‘परीक्षणात्मकता के आवरण में खेली जा रही है। अर्थात् एक प्रयोग का बीभत्स रूप में डिडिम घोष कर थोड़े समय के बाद उसे निकम्मा बना दिया जाय।

परिस्थितियाँ एवं हास की जिम्मेवारी पर यदि विचार किया जाय तो जहाँ तक परिस्थितियों का प्रश्न है वहाँ हम पर शासन करनेवाले ‘नीयत’ ही हास का कारण बनी। किन्तु, यह एकान्ततः सत्य है कि हास की मौलिक जिम्मेवारी हम आयुर्वेदीय चिकित्सकों की ही है। टालमटोल के नाते हर एक को जिम्मेवार बनाया जा सकता है, पर वस्तु-स्थिति से कतराना उचित नहीं है।

पराधीनता में आयुर्वेद पर कई आघात हुये जिन्हें हम वैद्यों ने भी लुक-छिप कर सहे और उसी कारण से हम लोगों ने अपने में गोपनीयता को स्थान देना प्रारम्भ किया, भले ही उस समय की स्थिति में शासक शत्रुओं के साथ हमारा यह एक कूटनैतिक कदम हो। किन्तु, उन पूर्वजों के इस विद्वत्तापूर्ण एवं परिस्थिति वश विशेष कदम का हमने जो अनुकरण किया व आज तक करते आ रहे हैं, वह हमारे राष्ट्र-जीवन एवं आयुर्वेद के लिये मारात्मक लक्षित हो रहा है।

जहाँ तक राष्ट्र-जीवन का तात्पर्य है वह यही है कि राष्ट्र के समस्त नागरिकों का मन स्वस्थ हो, भावनाएँ शुद्ध हों, वास्तविक सहयोग की इच्छा हो तथा रोगोत्पादक परिस्थितियों का मुकाबला करने का संगठित प्रयत्न हो। जीवन को सही दिशा में ले जानेवाला शक्तिशाली व तर्क-सम्मत दर्शन हो एवं हमारे राष्ट्र एवं राष्ट्र के प्रत्येक प्राणी के प्रति हमारी आन्तरिक ममता हो किन्तु, उसमें व्यामोह न हो। इन्हीं तत्त्वों की वस्तुस्थिति पर हमारा राष्ट्र-जीवन सुदृढ़ रह सकता है। इसकी अवज्ञा शासन के द्वारा दण्डनीय हो तभी हम अपने राष्ट्र-जीवन की वैज्ञानिक महत्ता का अनुभव कर सकते हैं।

आजकल खुलेआम नवजवानों में ब्रह्मचर्य की मजाक उड़ाई जाती है। डॉक्टर गण इसमें सक्रिय सहयोगी हैं स्तम्भन एवं स्वलन जो कभी हमारे भारत में जीवन व मरण माना जाता था, आज उसे डॉक्टर अपने प्रयोग में सीमित मानने का दावा करते हैं, और आजकल नववयस्क समाज उन्हें अपना सिरजन हार समझ रहा है, चाहे सर्वस्व स्वाहा हो जाने के बाद शिर धुन-धुन कर क्यों न पछतावे ?

अतः समय रहते आज हम अपने राष्ट्र-जीवन के लिये अपने देश, उसकी मिट्टी, वनस्पति, धान्य, फल-पुष्प एवं भारतीय दर्शन को प्रमुखता देनी चाहिये अन्यथा हमारे राष्ट्र-जीवन का जो बीभत्स रूप बनता जा रहा है वह भया-वह हो उठेगा जो सम्भाले नहीं सम्भल सकेगा।

बच्चों का भोजन

बच्चों के पालन-पोषण के लिए जिस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है वह है "बच्चों का भोजन"। भोजन खाकर ही मानव शरीर जीवित रहता है किन्तु, बच्चे तो बड़ों की अपेक्षा बढ़ते भी हैं इसलिए उन्हें अत्यन्त बलकारी व पौष्टिक शुद्ध, आहार-बिहार मिलना आवश्यक है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बच्चे को अनाप-शनाप ठूस-ठूस के खिलाया जाये और इतना खिलाया जाये कि वह बीमार पड़ जाये। उसके कोमल अंगों की शक्ति का अनुमान रखते हुए जितना भोजन वह पचा सके और उसे शक्ति दे, उतना ही देना चाहिये। बच्चे को किस प्रकार का भोजन दिया जाए इसके लिए बालक की माँ को पूर्ण भिन्न रहना चाहिए।

बच्चों के उत्पन्न होने के दिन से लेकर नौ-दस महीने तक उसके लिए माँ का दूध ही अमृत के समान है। इसलिए नौ-दस मास तक बच्चों को माँ के दूध के अतिरिक्त कोई भी खाद्य पदार्थ नहीं देना चाहिये। यदि कोई पदार्थ दिये जायेंगे तो वे बालक को हानिकारक होंगे। कई लोगों का ख्याल है कि पाँच-छै मास के बाद बालक को हल्का अन्न अवश्य देना चाहिये और इसी विचार से माताएँ बालक को साबूदाना, दाल-भात व अन्य पदार्थ चढाया करती हैं किन्तु, इससे बच्चों को कफ, खाँसी, दस्त आदि बीमारी घेर लेती हैं। अन्नादि पदार्थ बच्चे को दाँत निकलने के पूर्व नहीं पचते। यह सत्य है कि वे पदार्थ भी पुष्टिकारक होते हैं पर उसी दशा में जब वे भोजन तत्त्व दाँतों से अच्छी तरह चबाये जाकर लार के साथ पेट में जायें। दाँत निकलने के पूर्व बच्चों की लार इस कार्य के लिए उपयोगी नहीं होती। इसलिए ऐसे पदार्थ बच्चों को नहीं देने चाहिये।

माँ यदि निरोग और पुष्ट हो तब तो बालक को माँ का दूध ही देना चाहिए किन्तु, यदि वह रोगी व निर्बल हो तो गाय का दूध देना चाहिये।

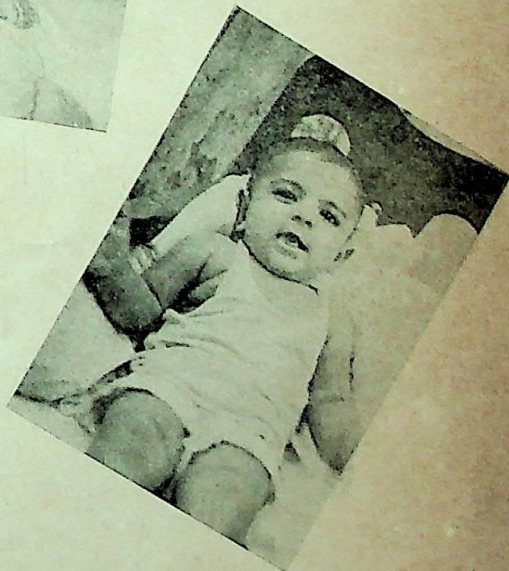
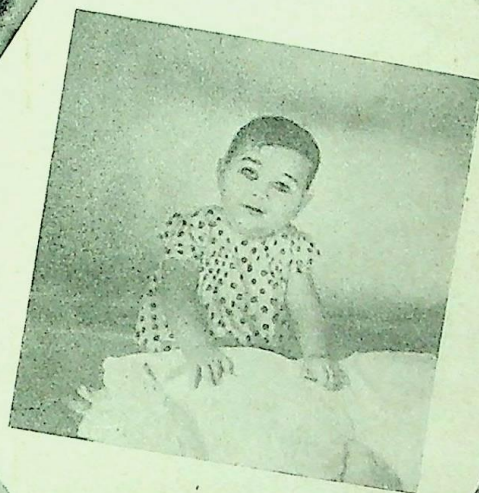
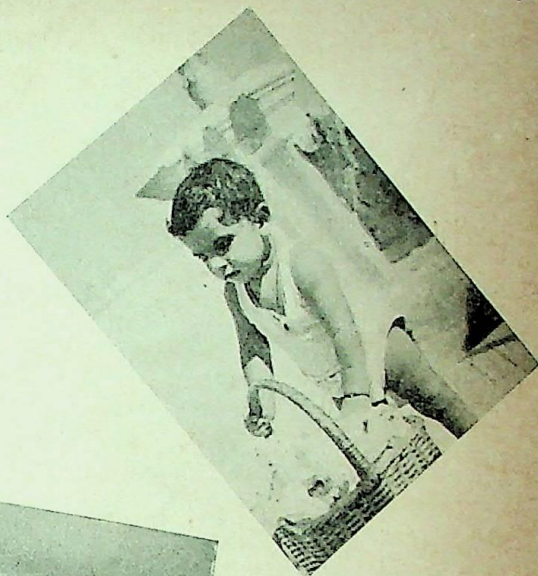
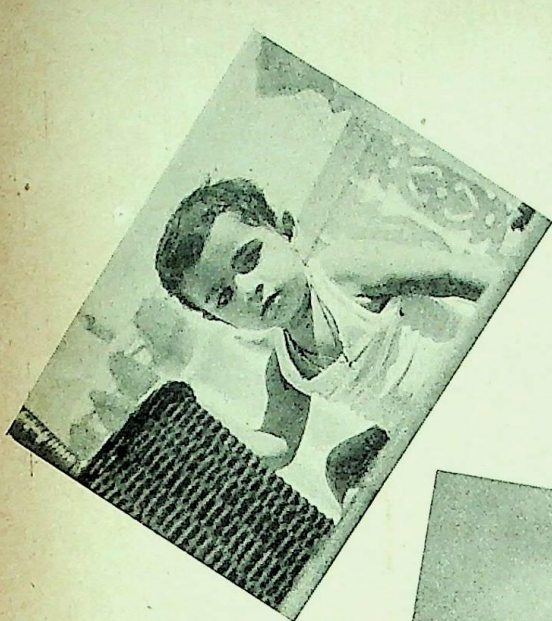
यद्यपि गाय का दूध प्रायः माँ के दूध के समान ही होता है तथापि छोटे बच्चे को शुद्ध (खाली) दूध नहीं देना चाहिये। बच्चा यदि एक मास से कम का हो तो दो भाग पानी और एक भाग दूध उबालकर देना चाहिये। खाली दूध बच्चा पचा नहीं सकेगा।

स्त्री के दूध से गाय के दूध में शक्कर और जल कम रहता है इसीसे थोड़ी शक्कर और पानी मिलाकर उसे माँ के दूध के समान बनाया जाता है। कच्चा दूध कभी नहीं देना चाहिये। उबालने से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वह सहज ही में पच जाता है, किन्तु, अधिक गाढ़ा न होने पावे। एक उबाल आने पर ही आग पर से उतार लें।

बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता है उसमें गाय के दूध को पचाने की शक्ति बढ़ती जाती है। इसलिए उसी क्रम से पानी की मिलावट भी कम कर देनी चाहिये। यहाँ तक कि नवें महीने के बाद बिल्कुल पानी नहीं मिलाना चाहिये। ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे को नियमित रूप से दूध मिले। बहुधा देखा जाता है कि बच्चा चाहे किसी भी कारण से रोता हो, माँ उसे दूध पिलाकर ही बहला देती है। फलतः आवश्यकता से अधिक दूध पेट में जाकर दस्त या कं अथवा अजीर्ण का रूप ले लेता है। सोते से जगा कर बच्चे को कभी दूध नहीं पिलाना चाहिये।

जिन वर्तनों से बच्चों को दूध पिलाया जाये उनका साफ रहना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों को दूध पिलाने की बोतल भी मिलती है उससे सुगमता तो होती है पर उसकी सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिये। प्रायः माताएँ बोतल में थोड़ा-सा दूध पड़ा रहने देती हैं, यह दूध पड़ा-पड़ा खट्टा हो जाता है और बोतल में सड़ांध आने लगती है। ऐसी बोतल में दूध पिलाने से बच्चे को अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिए बोतल को गरम पानी व ब्रुश से अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

सचित्र आयुर्वेद



एकोऽहं बहुस्याम

का
के
विश्व
हल
बुरा
देश
सब
साथ
अंध

ही
मह
यह
स्त
व
हा
जै
ज
म
है
म
है
क
अ

अ
अ
ह
स
ह
अ

पंचवर्षीय योजना आयोग और आयुर्वेद

श्री तोष

भारतीय लोक-सभा के विगत अधिवेशन में प्रधान मन्त्री का चिरसंचित स्वप्न—पंचवर्षीय योजना—साकार प्रतिभा के आवरण में आवद्ध कर दिया गया। प्रधान मन्त्री का विश्वास है कि—“यदि हम हिंसात्मक मार्ग से समस्याएँ हल करने का प्रयत्न करेंगे तो उसमें अधिक देरी होगी और बुराईयाँ बढ़ जाएँगी। इसी विश्वास के बल पर उन्होंने देश एवं देशवासियों से अपेक्षा रखी है कि—आज देश को सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम सब एक साथ मिल कर कार्य करें और जाति-पाँति, प्रान्तीयता तथा अंधविश्वास का त्याग कर दें।”

आदरणीय प्रधान मन्त्री के विश्वास को उनके तर्क ही परखा जाय तो वह अतीव सुन्दर है, और उन सरीखे महामानवों को ऐसा विश्वास रखना ही चाहिये। हम यह भी मानते हैं कि श्री. नेहरू भारत के एक महान् स्तम्भ हैं, और अन्यान्य देशों के साथ पारस्परिक एकता व सद्भावना को बनाये हुए हैं। किन्तु, जब हम उन्हें एक हाड़-मांस के मानव शरीर के रूप में देखते हैं तो जैसी मानव की प्रकृति-जन्य कमजोरियाँ औरों में पाई जाती हैं, उनमें भी हैं; और यदि ये प्राकृतिक कमजोरियाँ मानव में नहीं हों तो वह साक्षात् देवता बन सकता है। किन्तु, दुर्भाग्य है कि नेहरू देवता नहीं बल्कि मानव हैं। फिर भी उनकी मेधा अवश्य ही पारदर्शी है, और उसी पारदर्शिता के नाते उन्होंने ने सारी योजना को हिंसा व अहिंसा की कसौटी पर ला कर कसा है और अपना निर्णय भी साथ-साथ दे दिया है।

राष्ट्रपिता ने हमें अहिंसा का पाठ पढ़ाया था, एवं अपने अंतिम दिनों में उन्होंने ने स्वीकार किया था कि “मेरा व्रत-अहिंसा आप अभी तक समझ नहीं पाये और जब समझ ही नहीं पाये तो उस पर अमल करने की आशा में कैसे कर सकता हूँ?” इसी आशय को लोक-सभा में योजना पर हुई बहस के दौरान में राजर्षि टण्डनजी ने स्पष्ट ही कहा था कि “ऐसी सरकार को गांधीजी का नाम लेने का कोई अधिकार नहीं। गांधीजी के आदर्श से आप कोसों दूर चले

गये।” इसी सिलसिले में उन्होंने अन्त में कहा “कि आप (सरकार) २० अरब रुपये एकत्र करने की चिन्ता करते हैं लेकिन, जब तक आप का इन्तजाम इस तरह का है तब तक कोई बड़ी योजना न बनाएँ। आप पहले अपने दफ्तरों को संभालें तब योजना बनावें।”

एक तरफ प्रधान मन्त्री योजना वालों को अहिंसा के सुमधुर पथ पर चलाने ही में श्रेय का अनुभव करते हैं, किन्तु ठीक दूसरी ओर राजर्षि टंडन—गांधीजी का नाम लेने का सरकार को अधिकारी नहीं मानते? उन्होंने तो साफ कह दिया है कि पहले आप अपने दफ्तरों को सम्भालिये और बाद में योजना को।

तो इस तरह प्रधान मन्त्री की अहिंसा का पर्दाफाश हो जाता है। फिर दूसरी तरफ उन्हीं के शब्दों में अधिक देरी और बुराईयाँ बढ़ जाने की भविष्यवाणी है। वर्तमान परिस्थिति तो उल्टी दिशा का ही अनुभव देती है। आगे चल कर विचारमनीषी नेहरू ने साफ शब्दों में चेतावनी दी है कि—इस योजना में सब को मिलकर काम करना चाहिये, अन्यथा योजना की सफलता अनिश्चित है।

आज हमें आये दिन उपदेश दिया जाता है कि जाति-पाँति, प्रान्तीयता और अंधविश्वास का त्याग किया जाना चाहिये और उसी उपदेश को देनेवाली सरकार दिन-बहुत जाति-पाँति, प्रान्तीयता और अंधविश्वास के अधियारे गड्ढे में द्रुत गति से गिरती जाती है।

आगे न बढ़ कर हमें आयुर्वेद के लिये ही सोचना है। वह एक विज्ञान है, और विज्ञान में जाति-पाँति, प्रान्तीयता और अंधविश्वास की गुंजाइश इतिहास में कहीं नहीं देखी गई। किन्तु, हमारा दुर्भाग्य है कि हमारा केन्द्रीय स्वास्थ्य-विभाग इन बुराईयों से शनैः-शनैः ओतप्रोत होता जा रहा है। जाति और पाँति के नाते वह एलोपैथी व एलोपैथों को प्राथमिकता देती है। प्रान्तीयता का नशे में वह पाश्चात्य विज्ञान को ही विज्ञान मानती है, जब कि पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे बिलकुल विज्ञान नहीं मानते? और अंधविश्वास के नाते तो हमारे स्वास्थ्य विभाग ने यह कह कर हमारे देशीय विज्ञान की कमर तोड़ने

के अमोघ अस्त्र का प्रयोग कर ही दिया कि इन देशीय कथित विज्ञानों को प्रश्रय देना देश को ३ हजार वर्ष पीछे ढकेलना है। इस प्रकार सर्वान्तःकरण से पक्षपात करने के बाद भी यह आशा करना कि सब को मिल कर काम करने ही से देश का भला होगा, आशा नहीं मात्र दुराशा है। और इसके उल्टे परिणामों के लिये देश को तैयार रहना चाहिये।

योजना में मलेरिया को रोकने के लिये डी० डी० टी० और यक्ष्मा को रोकने के लिये बी० सी० जी० के पीछे लाखों व करोड़ों रुपये बर्बाद कर सरकार उनके लिए कारखाने खोलेंगी? इसमें अवश्य ही समय लगेगा और उस समय के बीतते-बीतते पाश्चात्य दिशा में एक आलोक आवेगा और उसी से प्रतिध्वनित होगा कि डी० डी० टी० और बी० सी० जी० अब काम के नहीं रहे। तब क्या होगा? ऐसे समय हमें राजर्षि टण्डन जी के ये शब्द याद आते हैं कि—“आपके सरकारी विभाग में छोटे-मोटे पोलखाते नहीं, वहां तो बड़े पाइप के द्वारा रुपया फेंका जाता है।”

इन्हीं सारी परिस्थितियों में स्वास्थ्य के साथ-साथ परिवार नियोजन एवं संतति-निग्रह पर भी सरकार पाश्चात्य अनुकरण की ओर तीव्र अन्तः प्रेरणा से आगे बढ़ने को सोच

रही है। रिद्धि विधियाँ आदि द्वारा पाश्चात्य कथित वैज्ञानिक यहाँ बुलाये जायेंगे, उनकी जेबें भरी जायेंगी और देश के विकास के नाम पर अधःपतन आमन्त्रित किया जायगा। और ठोंकरोँ पर ठोंकरोँ खाने के बाद पछताना पड़ेगा, किन्तु, आज के शासक इसके लिये निर्भय हैं। कारण, उनकी आयुका तकाजा अब अधिक दिन तक चलने वाला नहीं। अतः वे तो रहेंगे नहीं परन्तु, उनकी इतने परिश्रम द्वारा की गई तपस्या जनरोष का कारण बनेगी और इनके नाम पर क्या कहा व किया जायगा इसका कोई अन्दाजा नहीं।

हमारी अब भी आयोग के पाश्चात्य अंधानुकरणियों से समय रहते प्रार्थना है कि वे अब भी आयुर्वेद को समझें एवं देश की सांस्कृतिक व वैज्ञानिक उन्नति को रोकने में जाति, पाति प्रांतीयता और अंधविश्वास की वर्तमान क्रियाशील प्रक्रिया से अविलम्ब हाथ खींच लें। उनकी यह योजना सचमुच स्वास्थ्य के सम्बन्ध में राजर्षि टण्डन के इन शब्दों से सर्वथा शून्य नहीं है कि—“आपने रिपोर्ट तो तैयार की है परन्तु ठीक मसाला तैयार नहीं किया। यह रिपोर्ट तो शेखचिल्ली की कहानी है।”

(पृष्ठ ८४८ का शेषांश)

ऐसे हैं कि ठंड लगने के भय से रोगी को हमेशा ढक कर रखते हैं। इससे भीतर का ताप बाहर नहीं हो सकता और बहुत अवस्था में वह ताप रोगी के शरीर में बद्ध हो कर रोगी की मौत को बुला लेता है। जब रोगी अपने शरीर को खुला रखना चाहे, तब उसके शरीर पर कोई आवरण नहीं देना चाहिए। जितने समय तक खुली हवा रोगी को अच्छी लगे, उतने समय तक उसे बाहर में रखा जा सकता है। अगर रोगी को किसी प्रकार की असुविधा न हो तो उसे सारे-दिन रात बाहर में रखने से कोई हानि नहीं होती है।

अगर बाहर बहुत ठंडी हवा रहे और आकाश मेघाच्छन्न हो या बाहर की हवा रोगी को अच्छी न लगे, तब उसे घर के भीतर रख कर सभी जंगलों को इस ढंग से खोल देना उचित है कि जिससे घर में अच्छी तरह हवा आसके। किन्तु; रोगी के शरीर पर हवा का झोंक नहीं लगना चाहिए।

वायु स्नान कुछ अंशों में जलके स्नान के बराबर है। शरीर ज्यादा ठंडा होने के पहले जैसा पानी छोड़ कर उठना चाहिए—वायुस्नान में भी शरीर ज्यादा ठंड होने के पहले घर में जाना उचित है।

वायुस्नान लेने के समय अगर ठंड लगे, तो सूखे हाथ से शरीर को घसने से देह की गर्मी जल्दी वापिस आ जाती है। वायुस्नान के अन्त में भी सूखे कपड़े से तमाम शरीर को रगड़ने से अच्छा लाभ होता है।

वायु से सबसे ज्यादा लाभ होता यदि वर्ष में दो एक बार हवा का परिवर्तन किया जाय। बहुत अवस्था में सिर्फ हवा परिवर्तन से ही रोग अच्छा हो जाता है और स्वास्थ्य में सुधार हो जाता है। रोग की हालत में अगर रोगी का घर बदल दिया जाय, तो रोगी को अराम मालूम होता है।

रोग आरोग्य तथा स्वास्थ्य सुधार के लिए हवा से एक तरह का आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसलिए; कहावत है—“सौ दवा एक हवा”। यह कहावत अक्षरसः सत्य है।

मधुमेह (Diabetes)

आयुर्वेदाचार्य डॉ० शंकरलाल भेड़ा, एम्० बी० बी-एस

आयुर्वेद में मूत्र सम्बन्धी रोग मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और अश्मरी इस भेद से चार प्रकार के माने गये हैं। इनको प्रमेह तथा मूत्राघात भेद से दो वर्गों में वर्णन किये हैं। जिन रोगों में अधिक मात्रा में और असाधारण पदार्थ युक्त मूत्र के रासायनिक स्वरूप में Chemical Composition 'केमिकल कम्पोजिशन' परिवर्तन द्वारा मनुष्य मूत्र का त्याग करता है। उसको आयुर्वेदाचार्यों ने प्रमेह शब्द से व्यवहार किया है। जिन व्याधियों में मूत्र के निर्गमन संबंधी विकृतियाँ Chemical Obstruction केमिकल ऑबस्ट्रक्शन होती हैं उनको मूत्राघात आदि वर्ग में समाविष्ट किया है।

प्रमेह की निरुक्ति

प्रभूतं बाधविलंबापि क्वचिच्चोभयलक्षणम्।

प्रायशश्चेद् सवेन्मूत्रं तत्प्रमेहं विनिर्दिशेत्॥

अर्थात्—प्रभूत (अधिक मात्रा में) प्रपुष्ट पदार्थ युक्त मल-मूत्र अलग-अलग अथवा दोनों एकसाथ जिसमें मूत्र द्वारा त्याग होता है उसे प्रमेह रोग कहते हैं। मूत्रस्थित पदार्थ और उसके वर्णादि के आधार पर ही प्रमेह के २० भेद लिखे हैं।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताधिलमूत्रता।

मूत्र वर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्पते।

प्रमेह संज्ञा

प्राचीन आचार्यों के मत में सर्व प्रमेहों की प्रमेह संज्ञा ही है। यद्यपि सभी प्रमेह त्रिदोषजन्य होते हैं इनमें वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक विभाग तो तत्तद् दोषों की अधिकता से 'प्राधान्येन व्यप देशा भवन्ति' इस न्याय से किया गया है। जैसा सुश्रुत कहते हैं 'सर्व एव प्रमेहाः सर्वदोष समुत्थाः सहपिडकाभिः' इति। अर्थात् सब प्रमेह तथा सब पिडका सर्व दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं। इनमें वातिक प्रमेहों के लिए दोष विभाग की दृष्टि से ऐसा वर्णन मिलता है 'कफ पित्त बसा मज्ज मेदोभिरन्वितो वायुर्वातमेहान् जनयति, कफ, पित्त, बसा, मज्जा और मेद इनसे

युक्त वायु वात प्रमेहों को उत्पन्न करता है। वातिक प्रमेह चार प्रकार के होते हैं। उनमें एक मधु मेह भी है।

मधुमेह-परिचय

मधु सदृश तथा अधिक मात्रा में बारंबार मूत्र त्याग, काश्य, दौर्बल्य, पिपासा, क्लम, दाह लक्षणों वाला एवं परिणाम में दुःखप्रद रोग को मधुमेह कहते हैं। इसमें मूत्र के अन्दर मधुर स्वभाव का अजो मोजूद रहता है। वर्तमान रासायनिक परिभाषा में इसको ग्लूकोज (Glucose) कहते हैं। यह एक प्रकार की शर्करा है, जो और शर्कराओं के साथ मधुमेह में उपस्थित रहती है। इसके होने से मूत्र यद्यपि मधु के बराबर गाढ़ा नहीं होता है। किन्तु मूत्र की स्वाभाविक गुंथता बढ़ जाती है।

मधुवन्मधुरं भूरि मूत्रं यत्र भवेद् भृशम्।

मधुमेहः स ग्राह्यातो बहुलिङ्गो दुरायति॥

सुश्रुत ने बीस प्रकार के प्रमेहों के नाम, भेद और लक्षण बतलाने के बाद में मधुमेह का विशेष अवस्था में वर्णन किया है। यथा—

पिडका पीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः।

मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्तितः॥

स चापि गमनात् स्थानं स्थानादासनमिच्छति।

आसनाद् वृणुते शय्यां शयनात् स्वप्नमिच्छति॥

प्राचीनों ने मधुमेह शब्द का प्रयोग सर्व प्रमेहों के लिए भी किया है। जैसा चक्रपाणि आदेश देते हैं—'मधुमेह शब्दः सर्व प्रमेहे मधुमेह विशेषे च वर्तते। यथा तूण शब्दः सर्व तूणे तूण विशेषे च वर्तते।' इति।

अर्थात्—पिडकाओं से अत्यन्त पीडित तथा उपद्रवों से दुःखित हुए प्रमेही को मधुमेही कहते हैं।

वह असाध्य होता है। मधुमेही का रोगी चलने से ठहरने की इच्छा करता है। ठहरने से बैठने की इच्छा करता है। तथा बैठने से लेटने की इच्छा करता है। एवं लेटने से सो जाने की इच्छा करता है। इसलिये

पिड़का और उपद्रवों से (मक्षिकोपसर्पणादि) व्याप्त प्रमेही को मधुमेही मानना चाहिये ।

स्व० कविराज म० म० श्री गणनाथ सेन सरस्वती जी ने सब प्रमेहों की मेह संज्ञा रखी है, तथा मधुमेह की प्रमेह संज्ञा दी है ।

प्रमेह संज्ञा प्राचांतु सर्व मेहेषु दृश्यते ।

सामान्यतो विशेषांतु मधु मेहे हि सामता ॥

मधुमेह मूत्र विकृति जन्म रोग है । इसलिए मूत्र की प्रकृति से भी परिचित होना वैद्य के लिये निमित्त आवश्यक है । स्वाभाविक मूत्र जल की तरह तरल तथा लघु होता है । मूत्र का वर्ण याकृत पित्त तथा भोजन के वर्ण के कारण होता है ।

अर्वाचीन मतसे मूत्र की स्वाभाविक गुरुता, स्पेशेफिक-ग्रेविटी Specific Gravity १००५ से लेकर १०२५ तक होती है । जल का गुरुत्व १००० संख्या तक ही होता है । तथा निर्मल (पारदर्शक Transparent) रंग में ईषत् पीतवर्ण, स्वाद में लवण रस थोड़ा अम्लरस । यह प्राकृत मूत्र (जो किसी भी दोष तथा कालजन्य विकृति से रहित) का स्वरूप है । मूत्र एक नियम प्रमाण में वृक्कों से निकलना चाहिये । अहोरात्र में मध्यम वयस्क पुरुषों को प्रायः १२८ तोला about ५० औ० प्रमाण में होता है । किसी-किसी को न्यूनाधिक भी होता है किन्तु स्वास्थ्य संरक्षण के लिये इतने प्रमाण में होना आवश्यक है । स्त्रियों को कुछ कम होता है ।

मधुमेह-निदान

मधुमेह दो प्रकार के होते हैं, प्रथम कफाधिक मधुमेह तथा द्वितीय वाताधिक मधुमेह । इन दोनों की परिणामावस्था में वात की अधिक वृद्धि हो जाने से सामान्यतः मधुमेह वातोल्बण में परिगणित किया गया है ।

क्रमशः कफोल्बण मधुमेह के निदान मधुर पदार्थ, स्निग्धाधिक्य, मेदवर्धक अन्नों के सेवन करने, दिवास्वप्न आस्या तथा शय्या का अतिशीलन, कार्यों की अति चिन्ता करने से कफोल्बण मधुमेह उत्पन्न होता है । तथा कार्य का विशेष चिन्तन, विद्या, धन, कीर्ति सन्मान, आदि कार्यों की सिद्धि के लिए अत्यधिक परिश्रम, अर्थात् शरीर की रक्षा की उपेक्षा करके शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम अत्यन्त करने वालों को विशेषतः भोगी पुरुषों को

३०-३५ वर्ष की अवस्था के बाद वातोल्बण मधुमेह होता है । यह प्रायः दुःसाध्य ही होता है ।

सम्प्राप्ति

अत्यन्त मधुर भोजन तथा विपाक में भी जिन द्रव्यों का मधुर विपाक होता हो ऐसे द्रव्य (शालिवर्ग, गोधूमात्र विकृति) क्योंकि इनका मधुर विपाक होता है । इनके विपाक से मधुर प्रधान आहार का सारभूतरस उत्पन्न होता है । यह साधारण नियम है कि 'मधुरस्प मधुर एव विपाकः' अर्थात् मधुर रस का मधुर ही विपाक होता है । इसलिए मधुर विपाक की रससिरा रक्त के साथ सञ्चरण करता है । प्रथम यकृत में प्रवेश करता है । उसके बाद हृदय द्वारा सम्पूर्ण शरीर में मांसादि धातुओं में धमनियों द्वारा प्रसर्पण करता हुआ मांसादि सप्त धातु-तथा अग्नियों के विकृत हो जाने से सम्यग् परिणाम का लाभ नहीं होता है । अर्थात् यथोचित धातुओं की क्रियाओं से निर्माण कार्य नहीं होता है, अतएव रक्त-मांसादि धातुओं में माधुर्य भाग विशेष हो जाता है । अतएव मूत्र में भी माधुर्यता हो जाती है । इसी को शर्करा कहते हैं ।

धात्वग्नि

अथ तत् पाक संभूतो रसो यो हृदयं व्रजेत् ।

आरुह्य धमनीस्तस्माद् धातु धातुं प्रपद्यते ॥

तस्यैव परिणामं हि सारकट्ट विभागतः ।

क्रियन्ते धातु पोषाय यैस्ते धात्वग्नयः स्मृताः ॥

मूत्र में शर्करा पैदा होने के ४ कारण हैं । १ वृक्क, २ शाली पिष्टमय पदार्थों का अधिक भोजन, ३ मस्तिष्क और मानसिक विकार तथा ४ अन्तः स्रावी ग्रन्थियों की विकृतियां (Enolocrine glands)

१. वृक्कों में यह विशेषता होती है कि रक्तगत शर्करा को विशेष प्रमाणतक रोककर मूत्र में नहीं आने देते हैं । जब कारणवश रक्तस्थित शर्करा परिमित मात्रा से बढ़ जाती है तब मूत्र में शर्करा आती है । यह प्रमाण १८ प्रतिशत तक है । इसे वृद्ध शर्करा बन्धन मर्यादा कहते हैं ।

२. शालीपिष्टमय पदार्थों का संचय तथा व्यय की शक्ति से बाहर सेवन हो जाता है तब रक्त गत शर्करा का Co-१२० m. per 100cc. की शर्करा बन्धन मर्यादा से अधिक हो जाती है उस हालत में मूत्र में शर्करा आने लगती

है—इसको आलीमेन्टरी ग्लायकोसूरिया (Alimentary glycosuria) कहते हैं।

आयुर्वेद में शर्करा युक्त प्रमेह कफज तथा वातज पृथक्-पृथक् होते हैं।

१ कफजन्य, तथा २ वातजन्य (धातुक्षयोत्पन्न) यह शर्कराजन्य इक्षुमेह (कफोत्पन्न) ही है। यह विकार वातरक्त के रोगियों में अधिक मिलता है। ३ क्रोध, शोक, चिन्ता भयादि मानस विकारों से एवं मस्तिष्क, मस्तिष्क की विद्रवी, रक्तस्राव, शोथ, अर्बुद आदि से मस्तिष्क के कार्यों में अव्यवस्थिति हो जाने से मूत्र में शर्करा आने लगती है। ४ रक्त स्थित शर्करा का नियंत्रण, अग्न्याशय, चुल्लिका-ग्रन्थी, थायरॉइड Thyaroid सुप्रारोन्त, पिच्युटरी इन चार अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों द्वारा होता है।

अग्न्याशय के द्वारा पाचक रस बनता है, वह पित्त रस के साथ मिलकर ग्रहणी में स्रवित होता है। दूसरा भाग लंगरहन्स का द्वीप Is lands of Langer in the Pancreas कहलाता है। एक विशेष प्रकार का स्राव बनता है यह स्राव रक्त में मिलता है और इसमें इन्सुलीन नामक पदार्थ होता है। यह इन्सुलीन पेशियोंको शर्करा का व्यय करने में तथा यकृत को उसका संचय करने में सहायता देता है। इसके बिना यह कार्य हो नहीं सकता। मधुमेह की उत्पत्ति में इन्सुलीन का न होना या न्यूनता, यही एक प्रधान कारण है। इन्सुलीन के न होने से शरीर में ग्लूकोज का संचय नहीं हो सकता है, तथा पेशियों में उसका उपयोग नहीं कर सकता। फल यह होता है कि रक्त में शर्करा की राशि (Reral threshold) बन्धन मर्यादा से अधिक बढ़कर मूत्र द्वारा शरीर से बाहर आने लगती है। मधुमेह में अग्न्याशय के लंगरहन्स के द्वीप की सेलें नष्ट होकर वहां पर तान्त्र धातु या मेद बन जाता है।

मध्यम मधुमेह में भोजन के बाद २-३ घंटे तक रक्तस्थ शर्करा की राशि प्रकृतांश से चार गुनी अधिक बढ़ जाती है, तथा मूत्र द्वारा बराबर शर्करा निकलती रहती है यह शर्करोत्पत्तिका संक्षेपतः वर्णन है। जो नवीन मत का सारभूत एवं सर्व वैद्य वेद्य है।

आयुर्वेद मत से सम्प्राप्ति

त्यक्त व्यायामचिन्तानां संशोधनमकुर्वताम्।

श्लेष्मा पित्तञ्च मेदश्च मांसञ्चाति प्रवर्धते ॥

तैरावृतागतिर्वायु-रोज आदाय गच्छति।

यदावस्ति तथा कृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्तते ॥

स मारुतस्य पित्तस्य कफस्य च मुहुर्मुहुः।

दर्शयत्याकृतिं गत्वा क्षयमाप्स्यायते पुनः ॥

मधुमेह के भेद

नवीन-पुरान भेद से मधुमेह दो प्रकार के होते हैं। पुनः वह स्थूल तथा कृश होने से दो प्रकार का होता है। इनमें तीस वर्ष की उम्र के बाद बलवान और स्थूल पुरुषों को मधुमेह अधिक समय तक रहकर शरीर को दुर्बल बनाता है। तीसवर्ष की अवस्था के प्रथम कृश पुरुषों को अथवा बालक तथा युवा पुरुष को यदि मधुमेह होता है, तो वह अत्यन्त कष्टदायी होता है तथा शीघ्र ही शरीर का क्षय कर देता है। यह प्रायः दुर्बल शरीर वाले को ही होता है। तथा बहुत उपद्रवों से पीड़ित करता है।

लक्षण

तीव्र तृष्णा, त्वचा में रुक्षता, क्लम, दौर्बल्य, मलावरोध, कार्य वृद्धि, मधुर मूत्रता, मूत्राधिक्यता, जिह्वा, मुख, दन्तादि नासा, नेत्र और कर्णों में मलाधिक्य, हस्त-पादों में दाह, किसी-किसी को अत्यग्निता (भस्मकाग्नि)। भस्मकाग्नि का लक्षणकुछ आचार्यों ने ऐसा लिखा है “अति प्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तः क्षणाद् भस्म करोति यस्मात्। तस्मादसौ भस्मक संज्ञकोऽभूदुपेक्षितोऽयं पचते च धातून्” यह इन लक्षणों से युक्त प्रायः मधुमेह में होता है।

पहिले स्थूल-कृश पुरुषों के मधुमेह दो प्रकार के बतलाये हैं। उनमें मेदस्वी के होने वाले मधुमेह में यह विशेषता होती है—मेदस्वी के प्रथम निम्नोक्त लक्षण विशेषतः छिपे हुए रहते हैं। सर्वथा व्यायाम छोड़ने पर तृष्णा तथा कृशता बढ़ने लग जाती है, अथवा प्रमेह पिड़काएँ जब उत्पन्न होने लग जाती हैं, तब किचिकित्सार्थ चेष्टा करने पर मूत्र परीक्षा द्वारा जब शर्करा मालूम होती है, तब रोगी को मालूम होता है कि मेरे को मधुमेह हो गया है। इसके पहिले वह अन्धेरे में ही रहता है।

दुर्बल पुरुष के मधुमेह में अधिक मधुर मूत्रता, तृष्णा, कार्य, दौर्बल्य आदि की अधिक वृद्धि, तीव्र बुभुक्षा। यह उदर में पाचन शक्ति बढ़ जाने से होती है धातुओं में नहीं।

मधुमेह के उपद्रव

मधुमेह हो जाने का ज्ञान न होने से अथवा ज्ञान होने

पर उसकी उपेक्षा करके मधुमेह निर्दिष्ट पथ्यापथ्य का पालन न करने से निम्न उपद्रव होते हैं और प्रायः ये कष्ट साध्य होते हैं, कुछ मारक भी हो जाते हैं।

कास, श्वास, मन्दज्वर (कभी-कभी न्यूमोनिया आदि के हो जाने पर तीव्र ज्वर भी हो जाता है), राजयक्ष्मा, यह प्रायः १ वर्ष के भीतर ही मारक हो जाता है। कभी-कभी वृद्धावस्था में मन्दगति हो कर २-३ वर्ष में प्राण हारी हो जाता है। प्रमेहपीड़का मांस कोथ, कभी-कभी प्रमोह आदि कभी-कभी शाखागत नाड़ियों में अतितीव्र पीड़ा हो जाती है। पुरातन मधुमेह में प्रायः मूत्र द्वारा, गुदप्रदेश योनिद्वार, तथा अन्य ऐसे स्थानों में खुजली, त्वक् विदारण, किसी-कभी को विचर्चिका विशेषतः शाखागत नाड़ियों में तीव्र वेदना हुआ करती है। पुराण मधुमेहियों को क्लेश्यता भी प्रायः हो जाती है। क्योंकि शुक का अधिक क्षय हो जाता है, धातुओं का निर्माण न्यून हो जाने से शुक्रोत्पत्ति भी न्यून हो जाती है। इससे प्रहर्षादि भी अल्प हो जाते हैं। यह दोष होने पर बहुधा सुचिकित्सा से दूर हो जाता है। मधुमेही को बहुधा दृष्टि नाड़ी वितान उपद्रव तथा श्वास का गति मन्द तथा गहरी हो जाती है।

नाड़ी तेज हो जाती है Blood pressure गिर जाता है। ताप भी नॉर्मल से कम हो जाता है। श्वास में मधुर सुगन्ध (Aetom) की आती है (Pruritus, Ecclama, Multipleberbs, Carbundes, Spready, Gangver Qeyoretis Ulcer other.)

प्रशोथः—इसको Odtic Neuritis कहते हैं। यह दूसरी Neuritus के साथ में जैसे Peripherical Neuritis में भी होती है। इसमें आँख में भयानक दर्द होता है तथा बीमार दर्द सहन नहीं कर सकता। जब शरीर में शक्कर का भाग ज्यादा हो जाता है तब Optic Nerve मोटी हो जाती है।

दृष्टिनाड़ी शोष—Optic Atrophy इसमें आँख के सब भाग सिकुड़ने लगते हैं। आँख का तरल पदार्थ बाहर तथा भीतर दोनों के बीच चेम्बर में कमी हो जाती है। आँखें अन्दर बैठ जाती हैं। तरल पदार्थ गहरा हो जाता है तथा रोगी की किरणों का (Refraction) रिन्फ्रेड बदल जाता है जिसमें बीमार को दूर की वस्तु देखने में इतनी तकलीफ नहीं होती किन्तु नजदीक

की दृष्टि बिल्कुल समाप्त हो जाती है तथा धीरे-धीरे अन्धा हो जाता है।

असृजो रक्तस्य स्त्रावात्ः—Retrinal Heamonesse

इसमें रक्त का पिंड जैसा जमा हो जाता है तथा बीमार अन्धा हो जाता है।

मधुमेही को जब वृक्कों में विकृति हो जाती है तब वृक्क रोगजन्य शोथ, उदर रोग, हृद्रोग (हृदय का स्वाभाविक संकोच)—प्रसारण, रक्त ग्रहण, रक्त प्रेरण क्रियाओं का अल्प बल हो जाता है। किसी २ रोगी को यकृद् रोग भी (कामलादि) हो जाता है। शोथ तथा उदर रोग, हृदय की पेशियों के दुर्बल होने से वृक्क रोग जन्य होते हुए यकृत् से भी हो जाते हैं।

(१) रक्त में शक्कर जादा बढ़ जाने पर बीमार बेहोश हो जाता है। श्वास में मीठी-मीठी सुगन्धी आती है। होठ पोले पड़ जाते हैं। Muscles के सब रीफ्लेक्स Reflexes खत्म हो जाते हैं। आँखों की पुतलियाँ नहीं फिरती।

विशेष

रक्त में अधिक मधुरा (शर्करा Sugar) के बढ़जाने से एवं त्वचा, मेद और मांस के दूषित हो जाने से दोषोंके जीवाणुओं की अधिक विकृति हो जाने पर समय-समय पर बड़ी पीड़ाएँ भी हो जाती हैं। मधुमेह के उपद्रवों में भीषण प्राण हारी उपद्रव प्रमोह उपद्रव डायबिटिज है। (Diabetls Cema.)

यह उस समय अत्यन्त भयानक हो जाता है। जब प्रमेही अत्यधिक स्नेह पदार्थ का सेवन करता है तब मधुमेह अधिक बढ़ जाता है, उस समय प्रायः यह प्राण संहारी हो जाता है। जब यह होनेवाला होता है उस समय प्राप्प प्रायः मधुमे में निम्न लक्षण होते हैं। घोर शिरो वेदना, मानसिक एवं शारीरिक व्याकुलता, शुष्क जिह्वाता, प्रवातावस्था में भी श्वास वायु नहीं मिल रहा है ऐसा अनुभव होना, इसलिये श्वास वायु की तीव्र इच्छा, कृच्छ्र, श्वास (दारुण-श्वास) कास शीताङ्गता, मूत्र तथा श्वास में मध्वदगन्ध ये लक्षण होते हैं।

प्रमेह की मारक अवस्था—इस समय संज्ञा नाश हो जाता है तथा रोगी श्वास लेता हुआ पड़ा रहता है। यदि इस समय अच्छी तरह चिकित्सा न की जाती है तो रोगी शीघ्र ही पञ्चत्व को प्राप्त हो जाता है।

वाचकों के विचार

वंशलोचन ही तुगाक्षीरी है

सचित्र आयुर्वेद के जनवरी, १९५३ के अंक में पृष्ठ ६७० पर "सितोपलादि चूर्ण" शीर्षक एक लेख छपा है। उसी लेख में 'वंशलोचन' के सम्बन्ध में श्रीयुक्त हरिदत्त जी शास्त्री अध्यक्ष नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के भाषण का कुछ अंश प्रकाशित कर लेखक ने वैद्यों के विचार जानने की प्रार्थना की है। तदनुसार मैं अपना विचार इस लेख द्वारा प्रकट करता हूँ। आशा है अन्य विद्वान् वैद्य भी हमारे मत से अवश्य सहमत होंगे।

यद्यपि सम्प्रति आयुर्वेद के योगों में पड़ने वाली वनस्पतियों की सन्दिग्धता इतनी बढ़ी हुई है कि उन सब का निर्णय करने में न जाने कितने वर्ष लग जायेंगे। इसका मूल कारण, मैं अपनी इस विषय में अज्ञानता ही समझता हूँ। कितनी आश्चर्य की बात है कि हम एक वैद्य होते हुए भी त्रायमाणा, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, जीवक, ऋषभक, मेदा-महामेदा, अम्लवेत आदि-आदि ओषधियों के बारे में कोई निश्चय ही नहीं कर पाते और न इसके लिए कोई चेष्टा ही करते हैं। अस्तु, यहाँ तो मुझे आयुर्वेद और अपने व्यावहारिक अनुभव के बल पर 'वंशलोचन और तुगाक्षीरी' पर ही विचार करना है।

राजनिघण्टु में लिखा है—

"स्याद्वंशरोचना वांशी तुंगक्षीरी तुगा शुभा।

त्वक् क्षीरी वंशजा शुक्ला वंशक्षीरी च वैष्णवी ॥"

वृहत् निघण्टु रत्नाकर तथा शालिग्राम निघण्टु आदि में भी उक्त नामों से मिलते-जुलते हुए नामों का ही उल्लेख है। अस्तु, निघण्टुओं के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि 'वंशलोचन और तुगाक्षीरी' एक ही वस्तु है। यदि भावमिश्र के 'भाव प्रकाश' की तरह निघण्टुओं को भी ऋषि काल की अपेक्षा आधुनिक ही मान लें, तो अधिक संख्यक ओषधियाँ सन्दिग्धवस्था में पड़ जाएँगी। दूसरी बात यह भी है कि—निघण्टुकारों ने भी तो आयुर्वेद-बृहद्रथी (चरक, सुश्रुत, वाग्भट) में वर्णित ओषधियों के ही गुणधर्मों का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से भी वंशलोचन और तुगाक्षीरी में कोई अन्तर नहीं दीखता।

चरक संहिता के द्वितीय खण्ड--रसायनपाद में कथित

'च्यवनप्राश' में 'चतुष्पला तुगाक्षीर्याः' का उल्लेख है। वहाँ चक्रपाणि को कुछ भी सन्देह नहीं हुआ अन्यथा, अवश्य लिखते। परन्तु च० चि० के अष्टमाध्याय म यक्ष्मा की चिकित्सा में लिखित 'सितोपलादि चूर्ण' में टीकाकार चक्रपाणि को सन्देह हुआ और उन्होंने भी 'तुगाक्षीरी वंशलोचनानुकारि पार्थिवं द्रव्यम्' कह कर ही अपना पिण्ड छुटाया परन्तु, इतना ही सन्देहात्मक लिखने मात्र से न तो उस समय चिकित्सा क्षेत्र में काम चला होगा और न आज ही चल सकता है। मैं तो कहूँगा कि चक्रपाणि ने अपने भ्रम के साथ समस्त चिकित्सक समाज को भी भ्रम में डालना चाहा। अन्यथा, कोई उस पार्थिव द्रव्य का नाम-निर्देश तो अवश्य कर जाते।

अब थोड़ा-सा चक्रपाणि और शारंगधर पर भी विचार करें।

इतिहासकार विद्वानों के कथनानुसार चक्रपाणि तेरहवीं शताब्दी में तथा शारंगधर चौदहवीं शताब्दी के प्रथम प्रहर में हुए हैं। इस तरह दोनों के समय में १२५ वर्ष का अन्तर आता है। किन्तु, सिद्धान्त में मतैक्य ही मालूम होता है। जैसे—'चक्रदत्त' में जो चक्रपाणि का स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है 'लवंगादि चूर्ण' का विधान निम्नलिखित है—

'लवंग कंकोलमुशीर चन्दनं नतं सनीलोत्पल चन्दनं समम्।
त्रुटी सकृष्णागुह भृङ्गकेशरं कणासविश्वानलदं सदाभ्रजम्।
अहीन्द्रजातीपल वंशरोचना सितारुभागं सम सूक्ष्म चूर्णितम्
इसमें "वंशलोचन" ही देने को लिखा है। और इसी बात को पुष्ट करते हुए शारंगधर ने भी अपनी संहिता में 'कृष्णागुह तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पल कणाः।' लिखकर अपना सैद्धान्तिकमतैक्य का भाव स्पष्ट प्रकट किया है। अतः यहाँ भी वंशलोचन और तुगाक्षीरी में अन्तर नहीं मालूम होता।

हमारे इस विचार से प्रायः सब सहमत होंगे कि टीकाकार प्रायः स्वतन्त्र विचार के होते हैं और वे अपने विचार तथा अनुभव के बल पर ही शब्दों को तोड़-मरोड़ कर अर्थ कर डालते हैं। जैसे—चरकोक्त, 'तालीशादि गुटिका' के पाठ में—'तालिश पत्रं मरिचं नागरं शुभा... इत्यादि'

पठित 'शुभा' का अर्थ आधुनिक टीकाकार 'अच्छी पिप्पली' करते हैं। और पश्चात् लिखते हैं कि 'पित्तज कास में बंश लोचन देना चाहिए' यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि वातज और कफज कास में क्यों नहीं देना चाहिये, जब कि बंशलोचन वातघ्न और कफघ्न भी है? यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि बंशलोचन नहीं देना चाहिये तो फिर मिसरी को ही क्यों रखें, उसे भी अलग कर दें। क्योंकि, पित्तज कास तो नहीं है, तब हो सकता है, वातज, कफज कास को, घटाने के बजाय बढ़ा दें। बंशलोचन को हटाने के बाद सभी उष्ण द्रव्य रह जाते हैं, इससे तो साधारणतः वातज-कफज कास अच्छे हो सकते हैं, किन्तु, शीघ्र ही इससे पित्तज और रक्तजन्य दोष उत्पन्न हो जायेंगे ऐसी हालत में इसे सत् चिकित्सा नहीं कह सकते। क्योंकि, आयुर्वेद में उसी योग की प्रशंसा है, जो दोष को शान्त करे और उससे अन्य दोषों का प्रकोप न हो। और वास्तव में सच्ची चिकित्सा भी इसी को कहते हैं। अतः द्रव्य-गुण के ह्याल से 'शुभा' की जगह 'बंशलोचन' ही डालना चाहिये, न कि अच्छी पिप्पली। क्योंकि, उसी को स्पष्ट करते हुए शारंगधर अपनी संहिता में लिखता है—'तालीशं मरिचं शुण्ठी पिप्पली बंशलोचना।' अतः, इन सब बातों पर ध्यान देने से भी स्पष्ट हो जाता है कि चक्रपाणि और शारंगधर के मत में कोई अन्तर नहीं है।

सुश्रुत-उत्तर तन्त्र के ४१वें अध्याय में 'एलादि रसायन' के पाठ में लिखा है 'त्रिंशत् पलान्यत्र सितोपलाया दत्वा तुगाक्षीरि पलानिषट्च।' इसकी टीका करते हुए डल्लन ने स्पष्ट लिखा है 'तुगाक्षीरी बंशलोचनम्' इति। यहाँ ध्यान रखें कि डल्लन ११वीं शताब्दी के प्रथम प्रहर में हुए हैं और चक्रपाणि १३वीं शताब्दी में। तो जब डल्लन ने तुगाक्षीरी को बंशलोचन ही माना है जो चक्रपाणि से पहले समय के हैं, तो ऐसी स्थिति में तुगाक्षीरी में किसी तरह का सन्देह करने की गुंजाइश ही नहीं दीख पड़ता। इसके अतिरिक्त चरक, चक्रदत्त तथा शारंगधर आदि के देखने से तो एकदम ही सन्देह नहीं रहता, कि तुगाक्षीरी, बंशलोचन से कोई पृथक् द्रव्य है।

अब रही तीखाखीर और दुग्धपाषाण (संग जराहट) की एकता। सो, इन दोनों की समानता बंशलोचन से नहीं बैठती। क्योंकि बंशलोचन का गुण निघण्टु रत्नाकर में निम्न प्रकार है—

"तुगा रूक्षा तु तुवरा मधुरा रक्त शुद्धि कृत् ।
शीता शुभा बहा ग्राही वृष्या धातुविबद्धिनी ॥
वल्या क्षय श्वास-कास रक्तदोषारुचि प्रणुत् ।
रक्तपित्तं ज्वरं कुष्ठं कामलां पाण्डुरोग हत् ॥
दाहं तृष्णा व्रणमूत्र-कृच्छ्रं दाहं च नाशयेत् ।
वातघ्नी चैव विज्ञेया वैद्य शास्त्र विशारदः ॥"

दुग्धपाषाण (संग जराहट) का निम्न गुण है:—

संगजराहट मधुर, कुछ गर्म, ज्वर नाशक, पित्तप्रशामक, वृष्य, त्वग्दाह और आध्मान नाशक, हृद्दोग, ज्वर जन्य अरुचि, पित्तज शूल और कास-श्वास नाशक है। बंशलोचन में कैल्शियम प्रधान होने से जो अस्थिक्षयनाशक गुण है, वह इस-दुग्धपाषाण में नहीं है। अतः, बंशलोचन की जगह इसका प्रयोग करना उचित नहीं होगा।

पंजाबी जिसे 'तीखा खीर' नाम से पुकारते हैं, वह है 'आरारोट' जिसे आयुर्वेद में 'तवक्षीर' कहा गया है। तवाखीर से आरारोट और तवाशीर से बंशलोचन का ग्रहण यूनानी वाले करते हैं। अतः हो सकता है तवक्षीर का तीखाखीर अपभ्रंश हो गया हो, किन्तु, तीखा खीर या तुगाक्षीरी के नाम से दुग्ध पाषाण का तो कोई सामंजस्य भी नहीं मालूम पड़ता है।

दुग्धपाषाण के निम्न नाम हैं—दुग्ध पाषाण, दुग्धपाषाणिका, दुग्धशिला, दुग्ध पत्त, दुग्धवत्, गोमेद प्रभ आदि।

संगजराहट चाइना मिट्टी (स्मो क्योलिन) की तरह भारतीय खनिज द्रव्य है। यह प्राकृतिक उष्णता से पाक होकर साधारण शिलाओं के ही अन्तर्गत भूगर्भ में रासायनिक परिवर्तन होता है, जिसके परिणाम-स्वरूप यह 'दुग्धपाषाण' (संगजराहट) है। इसमें जिस्मी चीजों को क्लॉटिंग पेपर की तरह शोषण करने की अद्भुत शक्ति है। यह प्रतिश्याय, प्रवाहिका, अतिसार, अधिक स्वेद का प्रवाह और बहुमूत्रादि की अधिकता को रोकता है। भयानक अतिसार में $\frac{1}{2}$ तोला लेकर एक ग्राँस जल में घोलकर पिलाने से आशातीत लाभ होता है। किन्तु बंशलोचन की तरह आन्त्र क्षय को नष्ट नहीं करता। क्योंकि इसमें पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम (अस्थि पोषक तत्त्व) का अभाव रहता है। दुग्ध पाषाण अपनी शोषक-शक्ति से कास-श्वास में फेफड़ा गत तरल कास को सुखाता है, किन्तु इससे विशेष कोई कार्य नहीं करता। परन्तु बंशलोचन तरल

कफ को सुखाकर उसे बाहर निकालने के अतिरिक्त दोषों को भी साम्यावस्था में लाता है।

दुग्ध पाषाण में कुछ अस्थि पोषक तत्त्व होने के कारण ही यह व्रण रोपक है। किन्तु कुष्ठ, कामला, पाण्डु रोग और रक्त दोष शामक नहीं हैं। क्योंकि इसमें प्राकृतिक कुछ उष्णता भी रहती है। अतः एक दोष को शान्त कर अन्य दोषोत्पत्ति करने की शक्ति भी इसमें है। परन्तु बंशलोचन त्रिदोषों को शान्त कर धातुओं में शरीर धारण करने की शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए सितोपलादि, तालिशदि, लवंगादि चूर्णों तथा च्यवन प्राशादि अवलेहों में या अन्य भी धारक, पूरक औषधों में बंशलोचन की प्रधानता दी गयी है।

बंशलोचन रुद्ध, कषाय, मधुर और शीत होने के कारण त्रिदोष शामक और धातुवर्धक रसायन है। शरीर में होनेवाले रक्त प्रवाह में कमी या अधिकता आने पर उन्हें सुन्दर ढंग से साम्यावस्था में लाकर धमनी और सिरा को मजबूत करता है। यकृत से होने वाले (लौह अंश) हिमोग्लोबिन की कमी को पूरा करते हुए भयानक रक्ताल्पता कामला, और पाण्डु रोगों को नष्ट करता है। फुफ्फुस कोषों में जकड़े हुए कफ को सर्जन के हाथों से गम्भीर आपरेशन की तरह कफ को हटाकर कोषों में पोषक तत्व देकर जीवन दान देता हुआ दृढ़ बनाता है और श्वास-प्रश्वास की गति को अपने रूप में लाता है। यकृत में अपने रूप से अधिक दूषित पित्त पैदा होने के कारण, अतिसार, मुख विरसता आदि पैदा हो जाता है। उस समय बंशलोचन अद्भुत कार्य करता है। आंतों को अपने अधीन में करके उसको बल प्रदान करते हुए पित्त जन्य रोगों से छुटकारा दिलाते हुए मुख की विरसता दूर करता है।

बंशलोचन में अस्थि पोषक तत्त्व (कैल्सियम) अधिक होने से व्रणरोपक, ग्राही और रक्त वाही है। यह टूटे हुए स्थान को जोड़ने में, क्षत-स्थान को भरने में और शरीर में होनेवाले भयानक विस्फोट (चेचक-विसर्पादि) को नष्ट करके रोगी को शान्ति प्रदान करता है। बंशलोचन की सहसा क्रिया कोष्ठांगों (हृदय, यकृत, प्लीहा, उन्डुक, अग्नशय, पक्वाशय, मूत्राशय आदिकों) पर होती है यही कारण है कि सर्व शरीर में शीघ्रता से व्याप्त हो जाता है। जिसके परिणाम से दाह, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्त व रक्तकोषादि रोग शान्त होते हैं।

बंशलोचन शरीर धारक, पोषक और ओज-वर्द्धक है। प्रकृति की असीम कृपा से बड़े-बड़े मोटे और पुराने वाँसों में धीरे-धीरे जमते-जमते यह पैदा होता है। यह भी प्रकृति जन्य रसायनिक परिवर्तन ही है। जो अस्थि-पोषक तत्वों में अपनी सानी नहीं रखता है, वही बंशलोचन तुगाक्षीरी है। आयुर्वेद विज्ञानों तथा ग्रन्थों में जरा भी अन्तर नहीं पाया जाता। हजारों वर्षों से यह प्रयोग में चला आ रहा है।

योग में लेने लायक बंशलोचन

कुछ पिला और विशेष सफेद तथा कुछ चमकीला बंशलोचन औषधियों के योग में लेना चाहिये। आजकल बाजार में तो अधिक निला और चमकीला प्राप्त होता है जो कृत्रिम है। किन्तु बाजार में अच्छे का आभाव भी नहीं है जानकार विद्वान् उसे अपने काम में लाते ही हैं। आशा है विद्वानों को तुगाक्षीर में अब सन्देह नहीं होगा।

—वैद्य रघुनन्दन मिश्र, आयुर्वेदाचार्य

मांसाहार और आयुर्वेद

विगत अगस्त १९५० के “सचित्र आयुर्वेद” के पृष्ठ ६१ पर “धार्मिक कृत्य और आयुर्वेद” शीर्षक एक लेख छपा है। उसी लेख के अन्तर्गत पृष्ठ ६६ पर प्रथम कालम के दूसरे पैराग्राफ में लिखा है—

“वात रोग के लिए गो-मांस का आहार (गव्य केवल वातेषु पीनसे विषमज्वरे—चरक), प्रमेह के लिए गोमूत्र त्वचा रोग, अस्थिरोग और मानसिक रोगों के लिए पञ्चगव्य (यत्स्वगस्थि गतं पापं देहे तिष्ठति मामके। प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निर्विन्धनम्) बाजीकर औषधों में बैल के वृषणों का तैल, रस इन सब औषधों का अत्यन्त शास्त्रीय और विशद वर्णन आयुर्वेद में आया है.....।”

इन्हीं पंक्तियों को प्रश्नरूप में धन्वन्तरि १९५१ के दिसम्बर अंक पृष्ठ ५१६ पर श्री धनोराम वक्सी, चाईबासा वाले ने विद्वानों का अभिप्राय जानने के लिए प्रकाशित कराया है। उसी के उत्तर स्वरूप या अपना अभिप्राय हमारे मित्र श्री खेमराज जी ने लिख कर भेजा है जो नीचे प्रकाशित है। —स० सम्पादक

मानव जीवन के रक्षणार्थ आयुर्वेद-शास्त्र में अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें कई प्रकार के आहार-विहारों के साथ-साथ मांसाहार पर भी बहुत कुछ साहित्य देखने को मिलता है। शास्त्राचार्यों ने कभी यह

नहीं सोचा कि अमृक वस्तु धर्म के विपरीत है अथवा अनुकूल। उन्हें तो केवल एक ही लालसा थी, कि किसी भी भाँति मानव जीवन की सुरक्षा हो। इसके कई उदाहरण में मांसाहार एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

लघु-रूक्ष आदि बीस गुणों से युक्त मानव शरीर में जब जिस गुण की न्यूनता प्रतीत होती है तब 'तद्गुण भूयिष्ठ' द्रव्य देकर उसकी पूर्ति करने में आयुर्वेद का मौलिक सिद्धांत है, जैसे कि "मांसमाप्यायते मांसेन शुक्रं शुक्रेण गर्भस्त्वाम गर्भेण" इस चरकाचार्य के कथनानुसार यह स्पष्ट है कि मांस सेवन करने से मांस, शुक्र से शुक्र एवं आमगर्भ (कच्चे अण्डे) के सेवन से गर्भ को पुष्टि मिलती है। यह बात भिन्न है कि कई व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से मांस सेवन घृणित है या धार्मिक दृष्टि से वे लोग उसे अच्छा नहीं समझते, उन लोगों के लिए चरक का यह अन्य उपाय भी देखने को मिलता है कि 'तद्गुण भूयिष्ठ' द्रव्य सेवन करार उसकी पूर्ति करा दी जावे। यथा—

यत्र तु एवं लक्षणैः सामान्येन सामान्यवतामाहार विकाराणामसाध्निध्यं स्यात् सन्निहितानां वापि अयुक्त-त्वात्प्रयोगो घृणित्वादप्यस्माद्वा कारणात् स च धातु-रभिवर्द्धयितव्यः स्यात्। तस्य ये समान गुणाः स्युः आहार विकारा असेव्याश्च तत्र समानगुण भूयिष्ठानामन्य प्रकृति-नामपि आहार विकाराणामुपयोगः स्यात् ॥ (च० शा० अ० ६)

जैसे किसी व्यक्ति का मांस क्षय हो जाने पर उसे मांस वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है और वह व्यक्ति मांस सेवन करने से घृणा करता हो; ऐसे समय पर मांस सदृश गुणों को बहुत कुछ अंश में देने वाले द्रव्य यथा दूध, उड़द आदि पदार्थों का प्रयोग करना श्रेयस्कर्म माना जाता है।

प्रत्येक द्रव्यों को शास्त्रकारों ने गुणधर्म की दृष्टि से उनके रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव आदि का प्रत्यक्ष, अनुमान एवं युक्ति से निर्धारण कर चिकित्सा विज्ञान में अद्भुत क्रान्ति की है; क्योंकि भिन्न-भिन्न रुचि, सम्प्रदाय तथा वर्ग होने के कारण तथा चिकित्सक का प्रत्येक से सम्बन्ध रहने से उसे द्रव्यों के गुण-दोषों का (जो हित हो या अहित) ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

गुणधर्म की दृष्टि से आयुर्वेद-शास्त्र में प्रत्येक वस्तु का गुणावगुण देखने को मिलता है, इनमें प्रत्येक वर्गों का पृथक् पृथक् वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जैसे—अभयादिवर्ग,

शुण्ड्यादि वर्ग, सुवर्ण वर्ग, वटादि वर्ग, फलादि वर्ग, शाक पानीय वर्ग, इक्षुकादि वर्ग, धान्य वर्ग, मांस वर्ग एवं तद्गुणैश्चात् मिश्र वर्ग। इन वर्गों में सृष्टि के प्रायः सम्पूर्ण द्रव्यों का गुणावगुण ग्रन्थकारों द्वारा वर्णित है। आचार्य ने किसी व्याधि का निर्देश करते हुए उस व्याधि में औषध अथवा पथ्य रूप से किसी वस्तु विशेष को सेवन करने पर जोर दिया नहीं, अपितु गुणधर्म की दृष्टि से उन-उन द्रव्यों का निर्देश मात्र कर दिया है।

अब एक शंका यह उत्पन्न हो सकती है कि क्या आयुर्वेद के शास्त्रकार गो-मांस के प्रोत्साहक थे यदि नहीं तो गो-मांस का गुणधर्म ग्रन्थों में कैसे लिखा गया? इस विषय में हमारी समझ में तो यही आता है कि द्रव्य गुण के आचार्य जब "जगत्येवमनौषधम्" इस उक्ति के अनुसार सारे संसार को ही औषध रूप मानते हैं, तो गुण-धर्म की दृष्टि से गो-मांस का वर्णन क्योंकर बाकी द्रव्य को स्वयं सेवन करके ही निर्धारित किये जाते हों? शास्त्र में वर्णन करने मात्र से ही वे उन-उन द्रव्यों के सेवन करने का प्रोत्साहन देते हों बल्कि ऐसे द्रव्यों का (यथा गो-मांस) अन्य व्यक्तियों द्वारा सेवन करने पर उनकी चेष्टा उस द्रव्य से घटित गुणधर्मों का शास्त्र में वर्णन प्रत्यक्ष की भाँति ही हो सकता है, एवं च शास्त्र में वर्णन करने यह सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय वालों से चिकित्सक का वर्ग विरहित संबन्ध होने के कारण आवश्यकता पर आग्रह भी पथ्य में सच्चे गुण-धर्मों को अनिवार्य होगा; उस समय यदि गो-मांस भक्षी सेवन के लिए लालायित हो और वह पथ्य उसके रोग अनुकूल हो तो हमें निःसन्देह उस वस्तु का निर्देश ही पड़ेगा, अन्यथा चिकित्सक को सम्प्रदाय के फेर में पड़ने का व्यर्थ ही विवाद में समय खोना पड़ेगा। अतः रोगी सम्प्रदाय, अवस्था उसकी अभिरुचि एवं रोग-प्रकृति अनुसार औषध गुण धर्म एवं मांसादिक भक्षणार्थ निर्देश करने में कोई पाप नहीं है। किन्तु यह सब ही हिंदू संस्कृति के लिए गो-मांस अपथ्य अर्थात् ही माना गया है यथा भाव मिश्र के कथनानुसार—

गोमांसं तु गुरुस्निग्धं पित्तश्लेष्म विवर्धनम्।
बृहणं वात हृदयसपथ्यं पीनसं प्रणुत् ॥

इसी प्रकार चरक संहिता के अहितकर पदार्थों (न सेवन योग्य पदार्थों) में गो-मांस आया है।

कूचिकांश्च किलाटांश्च शौकरं गव्यं माहिषे।

मत्स्यान् दधि च माषांश्च यवकांश्च न शीलयेत् ॥

साथ ही एक बात और भी विचारणीय है, कई वैद्यों का ख्याल है, कि 'गव्य' शब्द के माने 'गौ' ही होता है, किंतु इसके विपरीत "गोषु भवाः इति गव्यं" अर्थात् गौ शरीर से उत्पन्न होनेवाले सभी द्रव्य यथा बल, बछड़े उसका चमड़ा, रूएँ आदि वाच्यार्थ में 'गव्य' शब्द से आजाते हैं। जैसे "पंके-भवाः इति पंकजम्" अर्थात् कीचड़ में उत्पन्न होने वाली वनस्पति में 'पंकज' शब्द वाच्यार्थ में लग सकता है, किंतु इदार्थ 'कमल' ही लेते हैं, अन्य नहीं। वैसे ही 'गव्य' शब्द का रुढ़ार्थ दूध, दही, घृत, मूत्र एवं गोबर में ये पांच चीजें ही हैं। चरक संहिता के सूत्र स्थान २५ वें अध्याय के ३६ वें सूत्र में अत्यन्त ही अहितकर द्रव्यों में गो-मांस की गणना की है, अतः विषमज्वर, शुष्ककास, पीनस, श्रम आदि में भी वह अहितकारी ही माना गया है। कहीं-कहीं पर 'गव्य' शब्द के स्थान पर 'गवय' शब्द पाठान्तर है, जिसका अर्थ जंगली गाय होता है। इसलिए सिद्ध होता है, कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने चिकित्सा क्षेत्र में गो-मांस को कदापि प्रोत्साहन नहीं दिया।

'गव्यं केवल वातेषु पीनसे विषमज्वरे।' इत्यादि श्लोक में यदि 'गव्य' शब्द का अर्थ गो-मांस लिया जाय तो वह उसकी अहिततम द्रव्यों में गणना चरकाचार्य जी के मतानुसार होने से वे पुनः उसका इस प्रकार गुण (गव्यं केवल वातेषु) नहीं दर्शा सकते। कारण, ऐसा करने से उन पर "वदतो व्याघातः" दोषारोपण हो जायगा, अतः 'गव्य' शब्द का अर्थ गो-मांस लेना युक्ति संगत नहीं, इसीलिये कई ग्रन्थों में 'गव्य' शब्द के स्थान पर 'गवय' यह पाठान्तर देखने को मिलता है। इस विषय में विद्वान् वैद्य गुण विशेष प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे।

—वैद्य खेमराज शर्मा छांगाणी

अप्राकृतिक जन्मनिरोध

सचित्र आयुर्वेद के गत कई अंकों में "जन्मनिरोध" पर विभिन्न लेखक तथा लेखिकाओं के विचार पढ़ने के बाद एक माँ होने के कारण मुझे भी अपना विचार प्रकट करने की प्रेरणा हुई, तदनुसार मैं अपना विचार प्रकट करती हूँ :—

ईश्वर ने प्रत्येक प्राणिमात्र में कामवासना इसलिए दी है, कि वह सन्तानोत्पत्ति कर वंश बढ़ावे, जो वंश बढ़ाना नहीं चाहते

हैं तो अप्राकृतिक साधनों द्वारा जन्मनिरोध करने का हमें अधिकार नहीं, क्योंकि कामवासना की तृप्ति तो साधन है, साध्य नहीं। फिर हम उसका दुरुपयोग क्यों करें? यदि अवैध तरीके काम में न लाए जाएँ तो जन्म निरोध वैध है। वे लोग जो स्वस्थ नहीं हैं उन्हें विवाह नहीं करना चाहिये। वैसे ही जिन में रक्त की विकृति (गर्भी आदि) है उन्हें भी विवाह न करना चाहिये; ताकि भावी पीढ़ी खराब न होने पाये। बच्चों की संख्या पर नियन्त्रण रखने के लिए पति-पत्नी द्वारा आत्म नियन्त्रण भी एक रास्ता है लेकिन नैतिकता का तकाजा है कि यदि वैवाहिक अधिकारों का उपभोग किया जाय तो परिणामों को भोगने के लिये भी प्रस्तुत रहा जाय। कृत्रिम जन्म निरोध के प्रचारक नियन्त्रण भी नहीं चाहते और अधिक बच्चे भी नहीं चाहते। वे काम वासना को ही साधन और साध्य दोनों बनाना चाहते हैं। वे प्रकृति को उसका कार्य करने देना नहीं चाहते। धार्मिक विधान ने ऐसी कामैषणा को अवैध माना है; इसे विवाह व्यवस्था के लिए विनाशकारी समझता है। ईश्वर इस भयंकर अपराध की सजा देता है।

अच्छा क्या है? अच्छा वह है, जिसका लक्ष्य अच्छा हो। भोजन अच्छा इसलिये है कि उससे शरीर का पोषण होता है। वैसे ही हमारी कामैषणा उचित है, यदि उसका उद्देश्य वही हो जिसके लिये ईश्वर ने हमें शक्ति दी है। आत्म-रक्षा एवं वंश-रक्षा ईश्वरीय विधान के अंग हैं। भूख और कामैषणा आत्म-रक्षा एवं वंश-रक्षा के लिये प्राप्त हैं। इन दोनों की तृप्ति करने में जो आनन्द आता है वह गौण वस्तु है। प्रधान वस्तु तो वह उद्देश्य है जिसके लिये ये दोनों भुजाएँ हमें प्राप्त हैं।

आत्म-रक्षा तथा वंश-रक्षा के जो आवश्यक कार्य हैं उनमें ईश्वर ने एक आनन्द प्रदान किया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये भोजन आवश्यक है; भोजन से आनन्द आता है पर यह आनन्द इसलिये है कि उससे आर्कषित हो मनुष्य शरीर का पोषण करे। भोजन करके उल्टी करना और फिर भोजन कर लेना पेटूँ है। इससे भोजन का उद्देश्य नहीं पूरा होता। अप्राकृतिक जन्म निरोध उसी प्रकार का पेटूँ है। जन्म निरोध के लिये मनुष्य ढँडित हुए बिना पेटूँ है। प्रकृति अपना प्रतिरोध अवश्य लेती है। इससे पारस्परिक श्रद्धा खत्म हो जाती है; पत्नी का वास्तविक

सम्मान जाता रहता है; उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, विवाह व्यभिचार का लाइसेंस बन जाता है और ऐसे आचरण के परिणाम स्वरूप विवाह व्यवस्था के प्रति आस्था नहीं रहती; तलाक की प्रवृत्ति बढ़ती है।

जन्म निरोध के समर्थक कहते हैं कि जन्म निरोध तब तक ठीक है जब तक यह उचित रीत से किया जाय, भावनाओं की मधुरता नष्ट न होने दी जाय एवं उचित नियंत्रण रहे। लेकिन जन्म निरोध सर्वदा बेठीक है और पाप है। भावना की मधुरता नष्ट न होने देने एवं आत्म नियंत्रण की बात करना ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार किसीसे कहना, "घबड़ाओ नहीं मैं तो केवल तुम्हारी हत्या करना चाहता हूँ। हत्या गलत चीज है मैं जानता हूँ लेकिन वह तभी गलत है जब हत्या पाशविक हो। मैं लोगों को भी भावनाओं के ह्याल का हत्या करता हूँ। मैं तुम्हारी आँखें बन्द कर दूँगा ताकि तुम मेरी भयानक तैयारियों को न देख सको। इस प्रकार तुम्हारी भावना को बचा कर मैं उचित नियन्त्रण के साथ तुम्हारी हत्या करूँगा।" जो जन्म निरोध अप्राकृतिक ढंग से होता है उससे भावना अकुण्ठित रह नहीं सकती, यदि किसी की आत्मा को नशे में चूर न कर दिया जाय। अप्राकृतिक जन्म निरोध स्वयं उचित नियंत्रण के अभाव का द्योतक है।

हम प्राकृतिक विधान पर विचार कर रहे हैं। सरकार विधान नहीं बनाती। उसका कर्तव्य तो प्राकृतिक विधानों की रक्षा है। हम विवाह करते हैं, कि जीवन साथी भी मिले और पालने में बच्चा भी खेले। विवाह वासना की तृप्ति के लिये ही नहीं होता, उससे ऊपर भी कोई वस्तु है। यदि हम वैधानिक सुविधाओं का प्रयोग करते हैं तो हमें जानबूझकर प्राकृतिक विधान में बाधा न डालनी चाहिये।

आत्म नियन्त्रण असम्भव नहीं। कभी-कभी यह परमावश्यक भी हो जाता है। स्वस्थ आदमी भी मर्यादा के भीतर रह सकते हैं। आत्म नियन्त्रण का प्रभाव सदा ही अच्छा होता है। यदि पति यूरोप जाता है तो क्या जरूरी है कि उसकी अनुपस्थिति में पत्नी व्यभिचारिणी ही हो जाय?

डाक्टर कभी-कभी किसी औरत को कह देते हैं कि वह गर्भ धारण नहीं कर सकती; करने पर जीवन को खतरा है। लेकिन सच यह है कि शिशु प्रसव से अप्राकृतिक

जन्म निरोध अधिक खतरनाक है। स्त्री अन्त में जीवन से निराश हो जाती है। यदि स्त्री के लिये शिशु-प्रसव पर रोक रखना जरूरी हो तो पति को चाहिये कि वह अपनी विषय लिप्सा त्याग दे।

और पाप करने की अपेक्षा किये गये पिछले पापों का फल भोगना ज्यादा अच्छा है। यदि हम अधिक बच्चों का पालन नहीं कर सकते तो संभोग न करें और यदि संभोग करें तो बच्चों का बोझ उठाने में अपने को खपा दें। यदि हम अधिकार का उपयोग करते हैं तो हमें कर्तव्य करना ही होगा, चाहे वे जितने भी गम्भीर हों। स्वार्थ पूर्ण अस्वाभाविक लाभ के लिये भयंकर पाप नहीं किया जाना चाहिये। बहुत से बच्चे होने पर अधिक आत्म त्याग की जरूरत आ पड़ सकती है, पर वे ही बच्चे बड़े होने पर काफी लाभ पहुंचाते हैं। लेकिन अप्राकृतिक जन्म निरोध में विश्वास करने वाले अधिक बच्चों की झंझट को इसलिये नहीं हटाना चाहते कि खर्च नहीं जुटता, वरन् इसलिये कि घूमने फिरने में बाधा आयगी।

नैतिक विवाह यह नहीं कहता कि आप बहुत से बच्चे वाले हो ही जाएँ। यदि आप बहुत बच्चे नहीं चाहते तो न पैदा कीजिये। लेकिन या तो पैदायिश रोकिये या आत्म नियन्त्रण रखिये। अधिकार का प्रयोग करना बंध है। लेकिन गलत प्रयोग पाप है। उसका औचित्य प्रमाणित हो ही नहीं सकता। साथ ही उस व्यवस्था को भी बदलना होगा जो मात-पिता को बच्चों का बोझ वहल करने में असमर्थ बना रही है। अप्राकृतिक जन्म निरोध के समर्थक राष्ट्र के लिये अधिक लाभदायक होंगे, यदि वे अपनी शक्ति देश की आर्थिक व्यवस्था के सुधारने में लगायें। वे यदि अपने साहित्य के वितरण के लिये कोष न जमा करें तो मातृ सेवा सदनो के निर्माण के लिये कोष जमा करें तो राष्ट्र का विशेष उपकार हो।

यह कहना गलत है कि जन्म निरोध से जाति नस्ल सुधरती है। आत्म घाती नीति के कारण तब कथित अच्छी नस्लों वालों की संख्या घटती जा रही है और अब वे अपने प्रचार द्वारा दूसरों की संख्या पर नियन्त्रण लाना चाहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि भारत में यदि बहुत अधिक संख्या हो तो क्या किया जाय? परिणाम जो भी हो, भारत के नागरिकों को अप्राकृतिक जन्म निरोध

सहारा नहीं लेना चाहिये; अभी तो भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है ही नहीं। प्रत्येक युग में यह समस्या खड़ी सी दिखायी पड़ी। लेकिन जब जनसंख्या बढ़ी तो उत्पादन भी बढ़ा अतः हमें जन संख्या कम करने पर ध्यान नहीं देकर उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिये। हमारे हाथ में जो कुछ है करना चाहिये। ईश्वर का जो काम है वह हम क्यों करें? आज से २३ सौ वर्ष पूर्व अफलातून और अरस्तू अधिक जनसंख्या की बात करने लगे। उन्होंने सोचा था कि आदमी-आदमी से भोजन के लिए लड़ेगा और सोने की की जगह न पायगा। लेकिन आज भी हमें सोने के लिये ३॥ हाथ लम्बी जमीन मिल ही जाती है।

यह कहना कि आवादी जितनी ही बढ़ेगी, उतनी ही बेकारी बढ़ेगी उल्टी बात है। आवादी के बढ़ने से उत्पादन बढ़ेगा। संसार की आवादी १ अरब ७० करोड़ है। पलंबक का कहना है कि पृथ्वी २ अरब आदमियों का बोझ ढो सकती है। पिपकिन इस संख्या को १३ अरब तक ले जाते हैं। पेंक ले जाते हैं १६ अरब तक। आपेनहेमर २० अरब तक पहुँचा देते हैं। फिर अधिक आवादी की चिन्ता छोड़िये। यह चिन्ता आपके या हमारे बूते की नहीं। यदि होती तो हम भगवान का अस्तित्व न मानते। रोम और ग्रीस ने तथाकथित दार्शनिकों के कहने पर अपने बच्चों की हत्या की एवं बाद में उन्हें बर्बरों

को लाकर अपने देश की जनसंख्या बढ़ानी पड़ी। अप्राकृतिक जन्मनिरोध की समर्थिका श्रीमती मार्गरेट सेंगर भी अपनी करतूत के परिणाम से घबड़ा गयी हैं। उनका कहना है और वह सही भी है कि धनिकों ने प्रजनन बन्द कर दिया है।

१९३३ में इंग्लैण्ड में हजार पीछे जन्म संख्या १४ और मृत्यु संख्या १२ थी, फ्रांस में जन्म संख्या और मृत्यु संख्या दोनों १६ थीं। १९३५ में फ्रांस की जन्म संख्या से मृत्यु संख्या साढ़े १३ हजार बढ़ गयी। इस अवधि में जन्म संख्या मृत्यु संख्या से सवालाख अधिक थी। आयर्लैण्ड की मृत्यु संख्या से जन्म संख्या हजार पीछे ४ अधिक है। इटली में प्रतिवर्ष मृत्यु से जन्म संख्या ३ लाख अधिक है। १९३० में जापान में हजार पीछे जन्म संख्या ३३ तथा मृत्यु संख्या १८ थी।

चिकित्सा शास्त्रियों की दृष्टि में जन्म निरोध औरतों के लिये खतरानाक है। अप्राकृतिक जन्म निरोध के कुछ तरीके तो पुरुष-स्त्री दोनों के लिये हानिकारक हैं।

स्त्री मासिक रक्त प्रारम्भ होने के चौथे दिन से १६ दिन तक गर्भ धारण कर सकती है, ऐसा कहा जाता है। किंतु जो लोग प्रजनन से बचने के लिये अवधि के बाहर संभोग करते हैं, उनके इरादे असफल होते हुए देखे गये हैं।

—सुश्री विमला देवी

सचित्र आयुर्वेद में विज्ञापन

“सचित्र आयुर्वेद” में जब से बाहर के विज्ञापन लेने की घोषणा इसके संचालकों द्वारा की गयी है, तब से अनेक विज्ञापनदाताओं के पत्र विज्ञापन मूल्य तथा नियमादि जानने के लिए आ रहे हैं। यहाँ उनकी जानकारी के लिए नीचे विज्ञापन मूल्य तथा संक्षिप्त नियमादि दिए जाते हैं।

विज्ञापन-मूल्य तालिका

साधारण १ पेज (१५०), ३ पेज (८०), ६ पेज (४५), प्रतिवार के लिए निश्चित किया गया है।

विज्ञापन भेजने से पूर्व

“सचित्र आयुर्वेद” में विज्ञापन भेजने से पूर्व निम्न बातों पर अवश्य ध्यान रखें। (१) सचित्र आयुर्वेद में अश्लील और बोगस (भ्रमात्मक) विज्ञापन नहीं छपेगा। (२) विज्ञापन का मेटर देखने के बाद ही छापने की स्वीकृति दी जायगी। (३) बगैर पेशगी आये विज्ञापन नहीं छपेगा। (४) उपरोक्त विज्ञापन मूल्य साधारण पेज का है। (५) कभर पर तथा रिडिंग मेटर के साथ बाहर के विज्ञापन नहीं छपेंगे। विशेष नियमादि जानने के लिए सचित्र आयुर्वेद-विज्ञापन विभाग, नं० १ गुमालेन—कलकत्ता को लिखें।



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के

पटना-केन्द्र में

श्रीयुत पूज्य प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी का अभूतपूर्व स्वागत-समारोह

पटना. ६ फरवरी को साढ़े दस बजे पूज्य ब्रह्मचारीजी का 'श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०' के निर्माण-केन्द्र पटना में शुभागमन हुआ। आपके स्वागत के लिये श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रबन्ध निदेशक श्री पं राम-दयाल जोशी, तथा भवन के समस्त कर्मचारीगणों के अतिरिक्त नगर के सहस्रों नागरिक वैद्यनाथ भवन रोड के पास पुल पर प्रतीक्षा में खड़े थे। जैसे ही आप पुल पर आए कि वहीं से एक शानदार विराट जुलूस जो सब के सब हरिकीर्तन करने में तल्लीन हो रहे थे, के साथ आप भवन की ओर चले। रास्ते में पुष्प-वर्षा हो रही थी, भवन के प्रधान द्वार पर पहुँचते ही पुष्प-मालाओं से आपका स्वागत किया गया, साथ में शंख ध्वनि, घंटे, माइक पर रेकार्ड आदि से स्वागत समारोह का वातावरण एक अपूर्व दृश्य बन गया था।

इसके बाद अपनी भक्त-मण्डली के साथ पूज्य ब्रह्मचारीजी स्नानादि धार्मिक कृत्य करने के लिए ऊपर जहाँ आपके ठहरने के लिए स्थान निश्चित किया गया था, चले गये।

शाम को ८ बजे करीब भवन के विशाल प्रांगण में जो सुन्दर ढंग से सजा हुआ था, कागज के सुन्दर बने हुए मण्डप पर भगवान् श्रीकृष्ण की नयनाभिराम मूर्ति—एक तरफ विद्युत् के प्रकाश में अपूर्व छटा बिखेर रही थी, उसमें समुपस्थित सहस्रों भक्तगणों के बीच पूज्य ब्रह्मचारीजी का

संकीर्तन प्रारम्भ हुआ, संकीर्तन का रसास्वादन कर उपस्थित भक्तगण ऐसे विभोर हो गये कि उन्हें पता ही न चला कि दस बजे बज गये। अन्त में करीब साढ़े दस बजे संकीर्तन समारोह सम्पन्न हुआ।

इस शुभ अवसर पर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कार्यकर्ताओं की ओर से पूज्य ब्रह्मचारीजी को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया, जो अन्यत्र प्रकाशित है।

अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में आपने निम्नलिखित भाव प्रकट किए।

॥ श्रीहरिः ॥

आयुर्वेद द्वारा जनता की बड़ी सेवा हो सकती है महानुभावो !

'श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, के कार्यकर्ताओं की ओर से जो आप लोगों ने मेरा अभिनन्दन किया है, इसके लिये मैं आप सभी का अत्यन्त ही अभारी हूँ। श्री जोशीजी मेरा घरेलू आत्मीय सम्बन्ध है। अपने ही घर में वैद्यनाथ आचार्य की बातें शोभा नहीं देती, फिर भी यह परंपरा चल पड़ी है अपनी हार्दिक भावनाओं को लिखकर प्रकट करने की, किन्तु हृदय की भाषा को हृदय अनुभव कर सकता है। वाणी में उसे व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं। वाणी से व्यक्त करने पर वह विकृत बन जाती है।

'श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०' देशी ओषधियों की बहुत प्रसिद्ध संस्था है। आयुर्वेद मेरा अत्यन्त प्रिय विषय है और मैंने समय निकाल कर इसका थोड़ा बहुत अध्ययन भी किया है। आज इस भौतिक विज्ञान के युग में सभी पुरानी बातों की उपेक्षा की जाती है। लोग कहते हैं कि विज्ञान ने बड़ी से बड़ी उन्नति कर ली है, हम बहुत अधिक उन्नत हो चुके हैं। अब हमें पुरानी बातों में चिपके रहना चाहिये। पुरानी बातों का परित्याग करके नवीनता को ग्रहण करना चाहिये। प्राचीन सभी बातें बुरी हैं और नवीन आविष्कार सभी अच्छे हैं, कमसे कम मैं तो इस बात को मानने के लिये उद्यत नहीं।

हमारे शास्त्रकार सब वस्तुओं के सिद्धान्त स्थिर करते हैं, उनका प्रयोग आप अपनी बुद्धि से कर सकते हैं। हमारे यहाँ बुद्धि को स्वतन्त्रता दी गई है। अब जैसे आप आयुर्वेद को ही ले लीजिये। प्रश्न यह उठता है कि रोग क्यों हैं? आयुर्वेद का सिद्धान्त है वात, पित्त और कफ ये धातु हैं, इनके ही सहारे जीवन स्थिर है, ये ही धातुएँ कुपित हो जाती हैं, मात्रा से न्यूनाधिक हो जाती हैं तो इन्हीं

विकार संज्ञा हो जाती है—इन्हें ही “दोष” के नाम से पुकारने लगते हैं। जैसे वायु कुपित हो गयी तो वात दोष, पित्त कुपित हो गया तो पित्त दोष और कफ कुपित हो गया तो कफ दोष होते हैं। यह हमारे यहाँ का अटल और स्थिर सिद्धान्त है। पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक रोगों के कारण के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके हैं। वे अन्धरे में टटोलते हैं, लग गया तो तीर नहीं तुक्का। उन्होंने भौति-भौति की ओषधियाँ और वस्त्रियाँ (इंजेक्शन) इतने बना लिये हैं कि एक के पाश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा देते रहो; कोई न कोई लग ही जायगा।

ओषधियों के सम्बन्ध में मैं पीछे कहूँगा, इस समय तो मैं निदान के सम्बन्ध में बता रहा हूँ। दो बातें होती हैं रोगों का निदान; और रोग की चिकित्सा। पहिले निर्णय करना है कि रोग उत्पन्न कैसे हुआ, फिर सोचना है कि यह रोग वात सम्बन्धी है, पित्त सम्बन्धी है या कफ सम्बन्धी है। फिर देखना है कि रोग के क्या-क्या उपद्रव हैं। यदि उपद्रव तीव्र है, तो पहिले उपद्रवों के शमन की चिकित्सा करनी; उपद्रव शान्त होने पर मूल रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। जैसे एक व्यक्ति है उसके सिर में पीड़ा है, नाक बन्द रहती है; श्लेष्मा (जुकाम) भी है; भूख नहीं लगती; रुचि बिगड़ गयी है; ज्वर भी है तो हमें देखना है ये उपद्रव क्यों हैं। अब आप एलोपैथिक डाक्टर के पास जायेंगे तो वह ज्वर के लिये कुनाइन या कोई दूसरी मिश्रित ओषधि दे देगा। श्लेष्मा के लिये नाक में एक लाल-सी दवा डाल देगा, गला सूजा है उसमें कुटहुरीसे एक दूसरी ओषधि दे देगा, सिर में पीड़ा के लिये कोई तेल आदि दे देगा। यह तो रोग की चिकित्सा नहीं उपद्रवों का शमन है। उपद्रव शान्त होने पर रोग तो अच्छा नहीं हुआ। वह फिर उभर सकता है। आयुर्वेद में पहिले स्थिर करेंगे कि यह कफजन्य विकार है तो कफ के परिहार के चेष्टा करेंगे। बड़े हुए कफ का शमन हो, इसके लिये प्रयत्न करेंगे।

किसी को श्लेष्मा (जुकाम) हो गया। हम आयुर्वेद वाले कहेंगे भीतर से कफ बढ़ गया; नाक की थैलियों में शीत आ गया। किन्तु एलोपैथिकवाले डाक्टर यह नहीं कहेंगे। वे कहेंगे आप सो रहे थे, आपकी नाक में एक “अमीबा” जन्तुविशेष घुस गया। वह जन्तु धूल में, घोड़ों की लीद में, मक्खियों के पैर में और न जाने कहाँ-कहाँ

रहता है उसने उस रोग को उत्पन्न कर दिया। इसी प्रकार वे प्रत्येक रोग के पृथक्-पृथक् कीड़े बताते हैं। आश्चर्य तो यह कि वे उनकी सूरत-शकल भी स्थिर करते हैं और उनको पालते और बढ़ाते भी हैं। यह सिद्धान्त सर्वथा मिथ्या है। आगन्तुक रोगों को छोड़कर कोई रोग बाहर से नहीं आता, न किसी रोग के बाहर कीड़े छिपे रहते हैं। रोग भीतर से होते हैं वात, पित्त कफ के ही द्वारा वे शरीर में व्याप्त होते हैं। यह तो बहुत बड़ी और विचार की बात है, यहाँ मैंने केवल संकेत मात्र कर दिया है। आयुर्वेद कोई ऐसे ही तीरतुक्कावाली बात नहीं, उसका एक स्थिर सिद्धान्त है और ऋषि-महर्षियों द्वारा अनुभूत है। मुसलमानी शासन में आयुर्वेद की मान्यता रही। जब से अंग्रेजी शासन हुआ तब से पाश्चात्य चिकित्सा के चाकचक्र से आयुर्वेद-शास्त्र उपेक्षित माना जाने लगा। हमें आशा थी, जब भारत में भारतीय शासन होगा; देशी राज्य होगा तो भारतीय-चिकित्सा-प्रणाली का प्रचार-प्रसार और आदर होगा। किन्तु दुर्भाग्य से जो आज हमारे भारतीय कहलाने वाले शासक हैं; उनके मस्तिष्क पाश्चात्य शिक्षा से इतने प्रभावित हैं, कि वे भारतीय दृष्टिकोण से कोई बात सोच ही नहीं सकते। इसी लिये जब से यह कांग्रेसी शासन हुआ है तब से आयुर्वेद की उन्नति न होकर हास ही हुआ है। देशी-चिकित्सा-प्रणाली की प्रतिष्ठा न बढ़ाकर उसका स्तर गिराया ही गया है। करोड़ों-अरबों रुपए विदेशी ओषधियों पर व्यय किये जा रहे हैं। दुर्भाग्य से भारत की स्वास्थ्य मंत्राणी एक ऐसी महिला हैं, जिन्हें आयुर्वेद का महत्त्व प्रतीत नहीं।

पाश्चात्य चिकित्सा में शल्य चिकित्सा (चीड़ फाड़) में तो बहुत सी सुविधाएँ हुई हैं, बहुत से अनुसन्धान हुए हैं, किन्तु रोग निदान में अभी एक मत से स्वयं चिकित्सक ही कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सके हैं उनका सभी कार्य अभी एक प्रयोगात्मकरूप से हो रहा है।

बिहार प्रांतीय धारा सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) रामदयालु बाबू आज से ८-६ वर्ष पूर्व मेरे पास गये थे। वे अत्यन्त रोगी थे, दुखी थे, उसी दशा में वे मेरे पास गये। मुझे से वे अत्यन्त स्नेह करते थे, वे जीवन से निराश हो गये थे। उन्होंने कहा मैं २५-३० वर्ष से बड़े-से-बड़े डाक्टरों की चिकित्सा कर रहा हूँ मुझे कोई लाभ नहीं होता। ऐसे डाक्टर जिनको सहस्रों रुपये शुल्क (फीस) है वे भी

किसी निर्णय पर नहीं पहुँच रहे हैं, कभी कुछ बताते हैं कभी कुछ। कभी कहते हैं आपरेशन करेंगे, कभी कोई ओषधि देते हैं। सिर में चक्कर आता था किसी बात को वे अधिक देर तक सोच नहीं सकते थे। मैंने कहा—“बाबूजी! आप मेरे कहना मान डाक्टरों के चक्कर को छोड़िये।” वास्तव में उनके कफ बढ़ गया था, वह मस्तिष्क में पहुँच गया था, एक साधारण-सी ओषधि का उन्हें प्रयोग कराया गया और वे कुछ ही दिनों में भले-चंगे हो गये।

कहने का अभिप्राय इतना ही है कि हमारा आयुर्वेद-शास्त्र एक स्थिर सिद्धान्त पर अवस्थित है। जबतक मैंने आयुर्वेद के ग्रन्थ नहीं देखे थे तबतक यही समझता था। कि उसमें सोंठ, मिरच, पीपल आदि ओषधियाँ ही होंगी, किन्तु जब मैंने आयुर्वेद-शास्त्र को पढ़ा तब पता चला कि यह तो एक शास्त्र है। शास्त्र वह जो बिना दूसरे शास्त्रों की सहायता से स्वतः सुक्ति तक का मार्ग दिखावे। आयुर्वेद का सिद्धान्त है। “धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यम् मूलकारणम्” धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये जो चार पुरुषार्थ हैं, इनका मूल कारण आरोग्य है। रोगों से रहित होता है। रोगी की मुक्ति नहीं होती। नायमात्मा बलहीनेन-लभ्यः।

रोग दो प्रकार के होते हैं—शारीरिक और मानसिक रोग। शारीरिक रोग ज्वर, अर्श, अतिसार, ग्रहणी, प्रतिश्याय आदि और मानसिक रोग काम, क्रोध, लोभ आदि। शारीरिक रोगों की रस, भस्म, काष्ठादि ओषधियाँ हैं। मानसिक रोगों की भगवद्भक्ति, देवपूजन, भगवान् का ध्यान, सुन्दर ग्रंथों का पाठ, मंत्र का जप तथा दैवी संपत्ति के गुणों को अपने में लाना ये उपाय हैं। शरीर चाहे कितना भी स्वस्थ क्यों न हो, जबतक मानसिक रोग नहीं जाते तबतक आदमी स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। तबतक उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमें से किसी की यथार्थ प्राप्ति नहीं हो सकती। मानसिक रोगों का रोगी कोई धार्मिक कार्य को यथा विधि आदि से अन्ततः सम्पन्न नहीं कर सकता, वह अर्थ चाहे जितना एत्रित कर ले अर्थ का जो यथार्थ उपयोग है उससे जो सुख होना चाहिये उसे प्राप्त नहीं कर सकता। उसे काम सुख भी नहीं मिल सकता और उसे मोक्ष की प्राप्ति तो हो ही नहीं सकती। इसलिये शारीरिक रोगों की अपेक्षा हमें मानसिक रोगों की निवृत्ति का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

जैसे काम रोग है इसे असंकल्प से जीतना चाहिये। क्रोध की ओषधि कामनाओं का त्याग है। लोभ रोग को इस विचार से जीतें, कि यह धन अनर्थों को बढ़ाता है। भय रोग को तत्त्व विचार से निवृत्त करें, दम्भ को साधु-महात्मा और महत्जनों की सेवा से जीतें। जो महत् पुरुषों की हृदय से सेवा करेगा, उसके पास दम्भ रोग फटकने न पावेगा। शोक और मोह को तत्त्वज्ञान से जीतें। अपनी उपासना में जो विघ्न आवें उन्हें मौन से जीतें। भूल और अनिद्रा भी बड़े रोग हैं इन्हें सत्त्व गुण की वृद्धि से साधना और तपस्या से वश में करें।

जैसे कुछ रोगों की एक ओषधि होती है और कुछ पेटेण्ट ओषधियाँ ऐसी भी होती हैं, जो बहुत से रोगों की एक ही ओषधि होती है। जैसे आप के यहाँ के विज्ञानों में एक दवा को बहुत से रोगों से देने का विज्ञापन है, इसी प्रकार सभी मानसिक रोगों की एक पेटेण्ट ओषधि भी है। वह है भगवान् का नाम। मानसिक रोगों के सब से बड़े चिकित्सक भगवान् वेदव्यासजी कहते हैं—

अच्युतानन्द गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं-सत्यं वदाम्यहम्
अर्थात्—अच्युतानन्द, गोविन्द तथा और भी जितने भगवान् के नाम हैं उस भगवान् रूपी ओषधि से जितने भी रोग हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। व्यासजी प्रतिज्ञा करके दो बार कहते हैं यह मैं सत्य-सत्य बात कहता हूँ। आयुर्वेद में अत्यन्त तीक्ष्ण विषधर सर्प के काटे हुए को असाध्य बताया है; किन्तु व्यास भगवान् उस रोग की भी ओषधि बताते हैं। वे कहते हैं—

संसार सर्वदष्टानामेकमेव सुभेषजम्।

सर्वावस्थायु सर्वत्र सर्वदा हरिकीर्तनम् ॥

अर्थात्—संसार रूप काले सर्प के काटलेने पर एक ऐसी सुन्दर ओषधि है कि उसके काटने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। वह ओषधि यह है कि सभी अवस्थाओं तथा सभी स्थानों में सभी समय भगवान् के नाम का कीर्तन करना चाहिये। मनुष्य यदि सच्चा सुख चाहता है और वह वास्तविक उन्नति का इच्छुक है, तो उसे भगवान् की शरण लेनी चाहिये। आप डाक्टर-वैद्यों के कहने से कितनी कड़वी कषैली ओषधियों को इच्छा न रहने पर भी खा जाते हैं। मेरे कहने से एक काम किजिये, समय निकाल कर नित्य नियम से भगवान् के नामों का कीर्तन करें

नित्य नियम से भगवत् सम्बन्धी भागवती कथाओं को पढ़ें और जैसे भी बन सके थोड़ा भगवान के रूपका ध्यान करें, यदि इससे आप के जीवन में कुछ शान्ति न हो तो जो आप काले चोर को दंड देते हैं वह दण्ड मुझे दें। परिवार के सभी लोग मिलकर बाजें हों तो बाजे के साथ, बाजे न हों तो बैसे ही ताली बजा कर भगवान् के नामों का कीर्तन करें देखिये कितना आनन्द आता है। आप का घर एक सुख शान्ति का आलय बन जायगा। आपके शारीरिक मानसिक रोग शनैः-शनैः न्यून हो जायेंगे। वस आज इतना ही।

अन्त में मैं आप सब यहाँ के कार्यकर्त्ता तथा अन्याय कर्मचारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे अतिथि मानकर इतना आदर सत्कार किया किन्तु आप इतना स्मरण रखें मैं यहाँ का अतिथि नहीं; एक पारिवारिक व्यक्ति हूँ, फिर भी इस घर में नया आया हूँ, नये घर में परिवारवालों का भी स्वागत-सत्कार अनुचित नहीं कहा जा सकता। अन्त में परमपिता परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने ऐसा सुअवसर हमें प्रदान किया जिसमें हम सब सुख पूर्वक मिल रहे हैं।

वांछा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च
पतितानां पावनेभ्यश्च वैष्णवेभ्यो नमो नमः।

औषधि निर्माण व औषधि व्यापार

वर्तमान काल में आयुर्वेद के औषधि निर्माण तथा औषधि व्यापार में भी अनेक दोष आए हुए हैं। उनमें से निम्नलिखित बातों पर ध्यान तुरन्त देना और उन्हें दूर करना जरूरी है।

वैद्यों तथा औषधि निर्माताओं का अज्ञान

यह अज्ञान दो प्रकार का है। (अ) मूल द्रव्यों के वास्तविक स्वरूप एवम् पहचान के सम्बन्ध में अज्ञान तथा (ब) औषधि निर्माण की विधियों के सम्बन्ध में प्राचीन आयुर्वेदीय एवं आधुनिक व्यापारिक एवम् वैज्ञानिक तरीकों के सम्बन्ध में अज्ञान। इन विविध प्रकार के अज्ञानों के कारण ही आयुर्वेदीय औषधियाँ आजकल ठीक-ठीक नहीं बन पाती हैं और उनका व्यवहार भी ठीक ढङ्ग से नहीं किया जाता है।

मेल-मिलावट

धूर्त व्यापारी एवं पन्सारियों द्वारा की जानेवाली मेल-मिलावट एवम् उसी नाम से दिये जानेवाले अन्य द्रव्यों का

औषधि निर्माण में उपयोग! इसके कारण वीर्यवान् औषधें शास्त्रीय पाठों के अनुसार ठीक-ठीक बनने नहीं पाती हैं। वीर्य और प्रभाव में कमी

तैयार औषधियों के संग्रह एवं पैकिंग के सम्बन्ध में असावधानियों का होना जिसके कारण उनके वीर्य और प्रभाव में कमी आ जाती है।

निर्वन्धों का अभाव

औषधि द्रव्य एवम् औषधिनिर्माण के सम्बन्ध में आवश्यक सरकारी निर्वन्धों का एवम् किसी प्रामाणिक फार्मा कोपिया का अभाव, जिसके कारण भिन्न-भिन्न निर्माणकर्त्ताओं की औषधियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की बन जाना संभव हो जाता है।

अधिकृत कसौटियों का अभाव

कोई औषधि या द्रव्य योग्य है अथवा नहीं इस विषय की अधिकृत कसौटियों का अभाव जिसके कारण अयोग्य और नकली कच्ची औषधियों का तथा उनके अयोग्य अङ्गों का भी सुयोग्य द्रव्यों के नाम पर औषधि निर्माण में उपयोग किया जाता है। जिससे कि उचित एवम् निश्चित संघटक की औषधियाँ निर्माण ही नहीं होने पाती हैं।

अच्छे और सच्चे द्रव्य

आयुर्वेदीय औषधि निर्माण में जो सब से बड़ी कमी आजकल दीखाई देती है वह है अच्छे और सच्चे औषधि-द्रव्यों की प्राप्ति में कठिनाई; तथा औषधिकल्पों को शास्त्रीय ढङ्ग से तैयार करने में लापरवाही, इसी कमी के कारण आयुर्वेद चिकित्सा की उपयोगिता ठीक-ठीक साबित नहीं होने पाती है।

सरकार का कर्त्तव्य

इन कमियों के दूर करने के लिए प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकारों को ही अग्रसर होना पड़ेगा।

भारत में असंख्य औषधि द्रव्य सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। यदि उचित रूप से उनका संग्रह संचय तथा व्यापार किया जावेगा तो सरकार को एक अच्छी आमदनी भी हो सकती है।

सूची बननी चाहिए

इसके लिए आयुर्वेद, यूनानी तथा एलोपैथिक चिकित्सा में प्रयुक्त होनेवाले भिन्न-भिन्न कच्ची औषधियों की

एक बृहत् सूची बन जानी चाहिए। इस सूची के आधार पर उन द्रव्यों का निर्णय आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं एवम् आयुर्वेद शास्त्र की विद्वानों की एक सङ्गठित कमेटी द्वारा किया जाना चाहिये।

संग्रहालय और वाटिका

इस प्रकार निश्चित किए हुए द्रव्यों का एक संग्रहालय (हर्बेरियम्) और वाटिका (बोटैनिकल गार्डन) प्रत्येक प्रादेशिक सरकार द्वारा अपने प्रदेश में कम से कम एक बनायी जावे, जहाँ पर नमूने के तौरपर सभी प्रकार के द्रव्यों के रखे जाने की व्यवस्था हो और वाटिका में असली वृक्ष और पौधों के आदर्श नमूने स्थापित किये जायें।

लाइसेन्स लेना होगा

डुकानदारों को औषधि सम्बन्धी द्रव्यों को रखने के और बेचने के लिए लाइसेन्स लेना होगा तथा उनको स्टाक करने के लिए उचित रूप से व्यवस्था भी करनी होगी।

अन्वेषण पद्धति

आजकल हमारे देश में भारतीय औषधि द्रव्यों पर अन्वेषण प्रारम्भ किया गया है परन्तु मैं अभी यह नहीं कह सकता कि यह अन्वेषण आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के लिए कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हो सकेगा, क्योंकि वहाँ पर प्रयोग के लिए औषधियाँ आधुनिक शास्त्रों के वर्गीकरण के आधार पर ही संकलित परीक्षा की जाती है, आयुर्वेद-शास्त्र के द्रव्यगुण के आधार पर नहीं। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है। उसमें एक ही जाति की कई औषधियाँ उस वर्ग में आ जाती हैं। परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति के आधार पर उस प्रत्येक द्रव्य की एक निश्चित पहिचान है तथा उसके औषधीय गुणों एवं कार्यों में भी अन्तर है।

प्रयोग करने के लिए वहाँ पर जो द्रव्य लिए जाते हैं उनके विशिष्ट गुणोत्पादक (Active Principles) को निकाल कर उनका अध्ययन किया जाता है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार इसके तत्त्वमें केवल द्रव्य के वीर्य मात्र का ही अन्तर्भाव हो जाता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त आवश्यक उनके रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव आदि का विचार बिल्कुल ही नहीं होने पाता है।

आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण तथा व्यापार सम्बन्धी यह कमियाँ आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की उन्नति के लिए बहुत ही बाधक साबित हो रही हैं। प्राचीन काल

में प्रत्येक वैद्य अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी औषधियाँ को स्वयं तैयार कर लेता था। लेकिन आजकाल यह सम्भव नहीं है। समय की माँग के अनुसार आयुर्वेद और यूनानी तिब्ब में बड़ी-बड़ी एवम् प्रामाणिक फार्मसियों का स्थापित हो जाना आवश्यक हो गया है। इन के कार्य में जो भी बाधाएँ आवेंगी उन्हें दूर कर देना होगा। इन फार्मसियों की स्थिति सुधारने तथा उनका स्तर ऊँचा करने के लिये मेरे निम्नलिखित सुझाव हैं।

प्रमुख वैद्य-हकीमों की कमेटी

भारत के प्रत्येक प्रदेश में प्रमुख वैद्यों एवम् हकीमों की एक कमेटी बनाई जाय जिसमें कुछ प्रतिनिधि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के एवं औषधि निर्माणशास्त्र के भी ज्ञाता हों। इस समिति द्वारा भिन्न-भिन्न प्रान्तों में आमतौर से प्रयोग होने वाले औषधियों की एक बृहत् सूची बनायी जावे।

आयुर्वेदिक फार्माकोपिया

इस सूची के आधार पर एक आयुर्वेदिक फार्माकोपिया तैयार किया जावे; जिसमें औषधियों की निर्माण-विधियाँ भी निश्चित की जावे। औषधियों की मात्रा में भी आमूल परिवर्तन करना होगा। क्योंकि अनेक औषधियों की प्राचीन काल की मात्राएँ इस समय उचित प्रतीत नहीं होती हैं। इसके साथ ही साथ तौल तथा नाप के प्राचीन ग्रन्थों के पैमानों को भी बदल कर अखिल भारतीय स्वरूप उन्हें दे देना आवश्यक हो गया है।

व्यापारिक ढङ्ग से प्रचलित सभी फार्मसियों को केवल उपरोक्त फार्माकोपिया में दी हुई औषधियों को और उसमें बताई हुई विधियों के अनुसार ही बनाना होगा।

इन औषधियों का मूल्य निर्धारण भी हो जाना चाहिए। निर्माण के लिये ज्ञानी वैद्य

उपरोक्त फार्मसियों में औषधि निर्माण के लिए ऐसे वैद्य रखे जाय जिन्हें आयुर्वेद के परिपूर्ण ज्ञान के साथ ही औषधि निर्माण सम्बन्धी आधुनिक विज्ञान की बातों का भी आवश्यक ज्ञान हो। ऐसे वैद्य तैयार करने के लिए एक विशेष कोर्स भी बना देना चाहिये।

फार्मसी को लाइसेन्स

प्रत्येक फार्मसी को सरकार द्वारा लाइसेन्स दिया जाना चाहिये तथा समय पर योग्य सरकारी कर्मचारियों अर्थात्

निरीक्षकों द्वारा इन फार्मेशियों का निरीक्षण भी हो जाना चाहिए।

फार्मेशियों में शुष्क द्रव्यों (Raw Drugs) तथा तैयार औषधियों को स्टॉक करने का समुचित प्रबन्ध भी होना चाहिए।

आसवारिष्ठों में मद्यसार (Alcohol) की भी मात्रा निश्चित हो जानी चाहिए।

तैयार औषधियाँ रङ्ग, रूप, स्वाद आदि में सभी फार्मेशियों की एक-सी होनी चाहिए।

तैयार औषधियों पर उनकी निर्माण तिथि अवश्य दी जानी चाहिए, जिससे कि उक्त औषधियाँ की कार्यक्षमता का बोध हो सके।

प्रयोगशाला होनी चाहिये

प्रत्येक फार्मसी के साथ एक प्रयोगशाला (Laboratory) भी होनी चाहिए, जिसमें कच्ची औषधि द्रव्यों एवम् तैयार योगों की समुचित परीक्षा करालेना सम्भव हो सकेगा।

उत्तर प्रदेश ने कदम उठाया है

उत्तर प्रदेश की सरकार ने इन सभी बातों के सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाया है। राजकीय आयुर्वेदीय एवं यूनानी औषधि निर्माणशाला, एवं उनके मार्ग दर्शन के लिए एक समिति की स्थापना तथा एक सुयोग्य आयुर्वेदीय एवं यूनानी फार्माकोपिया के निर्माण के लिए एक सुयोग्य समिति की स्थापना करके प्रदेश की सरकार ने इन सभी प्रश्नों को चालना दी है और ये सभी कार्य मेरी अध्यक्षता में ही शुरू हो गए हैं।

—श्री द० अ० कुलकर्णी

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के महत्वपूर्ण प्रस्ताव

हैदराबाद, १ फरवरी। केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् ने अपने अधिवेशन में राष्ट्र हित के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किए हैं। ये प्रस्ताव मलेरिया को रोकने, मेडिकल शिक्षा का देश भर में एक स्तर कायम करने, पूरे राष्ट्र के लिए जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी पूरे कानून बनाने और बच्चों को धूम्रपान करने से रोकने के सम्बन्ध में हैं।

जन स्वास्थ्य सम्बन्धी पूर्ण कानून के प्रश्न पर परिषद् ने हाइजीन समिति के कार्यों की प्रशंसा की और उसकी

सिफारिशों को स्वीकार किया। यह प्रार्थना की गई कि भारत सरकार इस प्रकार के कानून का एक नमूना तैयार करने के लिए एक समिति बनावे, तथा स्थानीय परिस्थितियों का भी ध्यान रखे।

परिषद् ने इस बात का स्वागत किया कि राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण को प्रथम पंचवर्षीय योजना में शामिल कर दिया गया है। इस मलेरिया नियन्त्रण योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक केन्द्रीय समन्वय एजेंसी की आवश्यकता है।

भारत सरकार से यह सिफारिश की गयी कि डी० डी० टी० या अन्य इस प्रकार के सामान पर आयात कर या चुङ्गी कर न लिया जाय। मलेरिया इन्स्टीच्यूट आफ इण्डिया का मलेरिया नियन्त्रण लागू करने की योजना से सहयोग करने के लिए अधिकार दे दिए गए हैं।

मेडिकल शिक्षा का समान स्तर कायम करने के प्रश्न पर परिषद् ने कहा कि आधुनिक दवाइयों और विश्व-विद्यालयों की मेडिकल डिग्री का एक समान स्तर होना चाहिए। वैद्य और हकीमों की ट्रेनिंग के स्तर के सम्बन्ध में सदस्यों ने एक दूसरे के विरोध विचार प्रकट किए। कुछ सदस्यों का खयाल है कि डिग्री कोर्स ही रखा जावे। कुछ अन्य सदस्यों का खयाल है कि अल्प अवधि में मिलने-वाले डिप्लोमा कोर्स समाप्त न किए जाय। आयुर्वेद, यूनानी और होमियोपैथी प्रणाली के लिए ५ वर्ष के डिग्री कोर्स सम्बन्धी प्रश्न अगले अधिवेशन के लिए छोड़ दिया गया।

स्वास्थ्य-मंत्री द्वारा नये यक्ष्मावार्ड का उद्घाटन

भागलपुर, गत ८ फरवरी को स्थानीय सबर अस्पताल में नव-निर्मित यक्ष्मा वार्ड का उद्घाटन करते हुए, बिहार के स्वास्थ्य मंत्री श्री देवशरण सिंह ने कहा कि देश की खाद्य और वस्त्र की समस्या, जिस प्रकार महत्वपूर्ण समस्या है, स्वास्थ्य की समस्या भी उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण है। आपने कहा कि, "भोजन, वस्त्र और स्वास्थ्य की समस्या के हल से ही प्रान्त की अन्य समस्याओं का हल हो सकता है। हमारी सरकार बेलफेयर सरकार है और पूर्ण सचेष्ट है कि उपरोक्त समस्याओं का हल शीघ्रातिशीघ्र हो। आपने आगे कहा हमारा प्रान्त अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अभाव ग्रस्त प्रान्त कहा जा सकता है। इसकी आमदनी भी कम है, इससे समस्याओं को सुलझाने में भी कई उलझने सामने उपस्थित होती हैं।

फिर कई प्राकृतिक बाधाएँ भी इस ओर अड़चनें डालती रहती हैं। गत ३ साल से अन्न की कमी से देश में एक विकट समस्या उपस्थित हो गयी थी। भोजन की समस्याओं को प्राथमिकता अन्य समस्याओं से दी जाती है, क्योंकि इसका असर स्वास्थ्य पर पड़ता है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि स्वास्थ्य की समस्या पर ध्यान ही नहीं दिया जाये। अन्य प्रान्तों में जितना रुपया स्वास्थ्य पर खर्च किया जाता है उससे अधिक हमारे प्रांत में खर्च किया जाता है।

उन्होंने कहा कि किसी भी सरकार के लिये सम्भव नहीं है कि सभी बीमारों का उपचार एक साथ किया जाय। विदेशों में भी ऐसा नहीं है। निकट भविष्य में भी ऐसा सम्भव नहीं। अस्पताल इतना खुल भी नहीं सकते। जनता और सरकार को इस ओर ठंडे दिल से एक होकर विचार करना चाहिए। ऐसे प्रश्न पर राजनैतिक मतभेद न होने चाहिए।

पंचवर्षीय योजना और स्वास्थ्य

उन्होंने कहा कि "सिर्फ योजना बना देने से ही कुछ नहीं हो सकता।" यदि उसमें जनता का सहयोग प्राप्त न हो। सरकार जहाँ एक ओर यक्ष्मा क्लिनिक हर जिले में बना रही है, वहाँ इसके विरोधात्मक कार्य के लिये भी तत्पर है। बी. सी. जी. का टीका लगाया जा रहा है। इस मामले में लोगों का उतना सहयोग नहीं मिल रहा है, जितना मिलना चाहिए। यदि इस ओर जनता का सहयोग उपलब्ध हो, तो जो काम अगले छः साल में हो सकता है, उसे तीन साल में भी पूरा किया जा सकता है। बी. सी. जी. के टीके से यक्ष्मा से बीमार पड़नेवाले की संख्या में कमी हो जायेगी।

मलेरिया और कोढ़

स्वास्थ्य मंत्री ने आगे कहा कि इस देश में लोग सबसे अधिक मलेरिया से मरते हैं जबकि प्रान्त में कोढ़ से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या भी कम नहीं है और इस बीमारी का प्रसार भी द्रुत गति से हो रहा है। कोढ़ रोग से पीड़ित होनेवाले व्यक्ति की संख्या संथाल परगने, मानभूम और भागलपुर में सबसे अधिक है और सरकार इसकी रोक-थाम के लिये भी सचेष्ट है। उम्मीद की जाती है कि ३-४ साल के भीतर मलेरिया काबू में लाया जा सकता

है। डाक्टरों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि पुलिस आदि को तो अपने को जनता का सेवक समझना ही है। पहले जमाने में भी सरकारी कर्मचारी जनता के ही सेवक कहलाते थे, पर उस समय उनमें सेवा का भाव नहीं था। हमारे विभाग के कर्मचारियों को जनता के सम्पर्क में आना पड़ता है, तथा पीड़ितों के सम्पर्क में भी। उनकी जिम्मेदारी तो इसी से सबसे अधिक है। जब तक वे सेवा की भावना से इस काम को नहीं करते तब तक न तो रोगियों को ही राहत मिलेगी और न उनके सम्बन्धियों को ही। अब हमारा देश आजाद है और हमें स्वयं ही अपने को सम्हालना भी है। आपको उसी निगाह से बीमारियों को देखना चाहिए, जिस निगाह से आप अपने घर के लोगों को, अपने बाल-बच्चों को देखते हैं।

इसके पहले भागलपुर के सिविलसर्जन ने राजयक्ष्मा सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि कहां और किस देश में यक्ष्मा से पीड़ितों की कितनी संख्या है। आपने अपने भाषण के दौरान में यह भी बतलाया कि जिस जगह की आबादी घनी है वहीं इस रोग का प्रसार अधिकता से देखा गया है। कलकत्ता, कानपुर आदि शहरों के उदाहरण भी आपने दिये। इस सम्बन्ध में आपने यह भी कहा कि भागलपुर के मुल्लाचक महल्ले में इस रोग का प्रसार अधिक है।

तत्पश्चात् स्वास्थ्य मंत्री ने यक्ष्मा वार्ड को उद्घाटित किया।

इस समारोह का भागलपुर के डिवीजन कमिश्नर श्री के. रमण सभापतित्व कर रहे थे।

यह और वह

इधर एक-दो वर्षों से आयुर्वेदज्ञ के कर्तव्यों के नाते आयुर्वेदिक सम्मेलनों पर जाना प्रारम्भ किया है। वहाँ पर जो कुछ देखा, वह कुछ सन्तोषजनक नहीं रहा। सोचा शायद सब सम्मेलनों पर ऐसा ही कुछ वातावरण रहता हो। क्योंकि ये कान्फ्रेंसें रचनात्मक होने की अपेक्षा विज्ञापनात्मक तथा प्रचारात्मक ही हुआ करती है। अनेक कांग्रेस-महासभा तथा आर्य समाज के वार्षिक सम्मेलनों से यही अनुभव मिला था। किन्तु बार-बार मन में विचार आता था कि आयुर्वेद तो विज्ञान है—कला है, इसमें कुछ रचनात्मक भी होना चाहिए। क्या भारत के ऐसे महान देश के चारों कोने से वैद्य बन्धु अपना व्यवसाय छोड़कर

ऊपर से पैसा खर्च कर केवल इसलिए ही एकत्र होते हैं कि दो-चार प्रोपेगेण्डिस्ट लोगों के थोथे व्याख्यान सुनकर घर वापिस जाएँ। या कुछ सार तत्त्व भी ग्रहण करें।

जहाँ तक लेखक ने आगत वैद्यव्युत्थों से बातचीत करके जाना, उससे तो उक्त धारणा की पुष्टि नहीं होती। इसके विपरीत आगत आयुर्वेदाचार्यों में परस्पर संभाषण द्वारा ज्ञान ग्रहण की अभिलाषा को ही प्रखर रूप में पाया। यद्यपि कुछ वैद्य कौतुहल वश तथा मित्र सण्डली निर्माणार्थ और दृश्य दर्शनार्थ भी आते हैं। किन्तु इस प्रकार के सज्जनों की संख्या स्वल्प ही रहती है।

साधारणतया जब कोई लेखक या संवाददाता आयुर्वेदिक सम्मेलन के अधिवेशन के बारे में लिखता है तो प्रायः समालोचनात्मक दृष्टि से न लिखकर केवल वर्णनात्मक या प्रशंसा परक दृष्टिकोण को ही अपनाता है। इस प्रकार के लेखों से यथार्थ स्थिति का ज्ञान नहीं होता तथा भविष्य में कुछ सुधार की आशा भी नहीं रहती। अतः इस प्रकार के सम्मेलनों का समालोचनात्मक दृष्टिकोण से भविष्य में सुधार करने के रचनात्मक ध्येय को लेकर लेख लिखे जाने चाहिए। ताकि हमें अपनी त्रुटियाँ ज्ञात हों और भविष्य के लिए हम अपने सम्मेलनों को सुधार सकें। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यह लेख लिखा गया है। पाठक अन्यथा न समझें।

अस्तु, इन्दौर के ३८वें आयुर्वेद महा-सम्मेलन को देखने के पश्चात् हमें अपने ही नगर में एक दो मेडीकल कांग्रेसों को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका कार्यक्रम तथा संचालन प्रणाली को देखकर हमें अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि किस प्रकार व्यवस्थित ढंग से उनका संचालन होता है और किस प्रकार की वैज्ञानिक विचारणा होती है। उन्हें वास्तव में हम चरक भगवान के शब्दों में "सम्भाषा परिषद्" कह सकते हैं। उन्हें देखकर आयुर्वेद महासम्मेलन के सम्बन्ध में तो ऐसा प्रतीत होता है कि केवल प्रोपेगेण्डिस्ट लोगों का अखाड़ा है। जो आयुर्वेद का नाम तो सहस्रों बार लेते हैं और उसका नारा लगाते हुए भी नहीं थकते, किन्तु रचनात्मक ठोस कार्य कुछ नहीं करते।

नीचे आयुर्वेद सम्मेलन के कार्य क्रम तथा मेडीकल कांग्रेस के कार्यक्रम की तुलना की जा रही है। पाठक स्वयं उससे अनुमान लगा लें कि दोनों में कितना अन्तर है।

इन्दौर में हुए ३८वें आयुर्वेद महा-सम्मेलन में प्रारम्भ

से अन्त तक उद्घाटक तथा अध्यक्ष महानुभावों के व्याख्यान की भरमार के सिवा शास्त्र चर्चा का नाम भी न था। प्रत्येक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष या अन्य वक्तागण आत्म विज्ञापन या मित्र विज्ञापन में व्यस्त थे। कोई शास्त्रीय समस्या की चर्चा ही नहीं जो महानुभाव-विद्वान् अध्यापक तथा आचार्य आदि आए हुए थे उन्हें शास्त्र चर्चा, परस्पर विचारों को आदान-प्रदान का कोई अवसर ही नहीं दिया गया। कौन क्या बोलेगा, इसकी कुछ व्यवस्था ही नहीं। ऐसा मालूम होता था कि परस्पर प्रशंसा की होड़ लग रही हो।

परिषदें तो यूँ अनेक रक्की गई थीं, किन्तु वे सब होने पाई हों इसमें सन्देह है। शास्त्र चर्चा परिषद् में देखा शास्त्र चर्चा के लिए समय ही नहीं। व्याख्यान बाजी का ही जोर है।

समय का जिस वेदों से कल किया गया वह तो अनुभव करने की बात है कहने की नहीं। कोई भी कार्य शायद ही समय पर हुआ हो। इसी प्रकार की अन्य बहुत सारी बातें हैं। प्रस्तावों की सेना को बिना समझे-बूझे जिस प्रकार भरमार कराया गया वह भी अजीब ही दृश्य था। सम्मेलन के पूरे तीन दिनों में अन्तिम दिवस आध घण्टा में उन सब प्रस्तावों को पास किया गया; जिन पर आयुर्वेद का भविष्य निर्भर है।

अस्तु, यह तो आयुर्वेद महासम्मेलन की बात रही। अब मेडीकल कांग्रेस की बात भी सुन लीजिए, उन डाक्टरों की जिन्हें आयुर्वेद के ये नेता दिन-रात पानी-पी-पीकर कोसते हैं।

गत नवम्बर तथा दिसम्बर मास में दो मेडीकल कांग्रेसें बम्बई के प्रसिद्ध ताजमहल होटल में हुई। दोनों ही सें आमन्त्रित के रूप में लेखक को जाने का अवसर मिला। दोनों ही का उद्घाटन बम्बई के गर्वनर महोदय ने किया। मन्त्री तथा भूतपूर्व मन्त्री भी आए और उनके भाषण भी हुए। किन्तु आयुर्वेद सम्मेलनों के सनान ये सब उच्च पदाधिकारी ही सम्मेलन की अपेक्षा अधिक महत्त्व के न हो गए थे। भाषण दिया, धन्यवाद पाकर चले गए और सारे सदस्य वहीं बैठे रहे आगे का कार्यक्रम चलता रहा। यदि कोई वैद्य सम्मेलन होता तो इन महानुभावों के जाते ही सम्मेलन के अधिकांश दर्शक, कार्यकर्ता आदि इनके साथ और उन्हें नमस्कार करके शायद अपने को कृतकृत्य समझते।

समय की नियमितता इतनी कि आप देखकर दंग रह जाएँ। ठीक समय पर निश्चित कार्यक्रम के अनुसार सब कार्य होता था मानों घड़ी की सुई सबका नियन्त्रण कर रही हो। आयुर्वेद सम्मेलनों में घड़ी को शायद सब भूल ही जाते हैं।

अनेक विषयों पर विज्ञों के व्याख्यान या निबन्ध, उन-पर वाद-विवाद और समय समाप्ति पर यह सब समाप्त कर दूसरा विषय लिया जाता। न अध्यक्ष का लम्बा प्रवचन न इसकी या उसकी प्रशंसा। केवल विषयों पर विचार। अप्रासंगिक अनर्गल का विज्ञापन बाजी का नाम भी नहीं। इसे देखकर चरकादि में वर्णित कवि गोष्ठी की याद आती थी। क्या हम भी कभी सम्मेलन में ऐसी सुव्यवस्था कर सकेंगे? यह प्रश्न हम सभी के लिए विचारणीय है।

—क० भैरव कुमार शास्त्री

चिकित्सा-क्षेत्र में आयुर्वेद ही सर्वथा उपयुक्त

ग्वालियर (डाक से)। “आयुर्वेद का जीवन में बहुत महत्त्व है। वैसे भी यह पांचवाँ वेद माना जाता है। भारतीयों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति ही हमारे देश में सफलता प्राप्त कर सकती है।” मध्य-भारत के वित्त मंत्री श्री सौभाग्य मल जैन ने स्थानीय मध्य भारत गवर्नमेंट कालेज के चतुर्थ वार्षिक स्नेह सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए २ फरवरी की संध्या को ये शब्द कहे।

आपने आगे कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में रोग के मूल कारण की ओर ध्यान दिया जाता है तथा इसका उपचार स्थाई होता है। आज जो यह विज्ञान पिछड़ा गया है उसका मूल कारण उपेक्षावृत्ति है। प्रसन्नता की बात है कि आज कुछ राज्य सरकारें इसे प्रोत्साहन दे रही हैं तथा इसकी उन्नति में रुचि ले रही हैं। छात्रों को चाहिए कि वे आयुर्वेदिक-चिकित्सा पद्धति की परिपूर्णता में विश्वास की भावना के साथ इसमें पूर्णता प्राप्त करें और शिक्षा समाप्त कर कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट होने पर रोग का उपचार करने की अपेक्षा इस ओर अधिक ध्यान दें जिससे कि रोग ही उत्पन्न न हों। आज जीवन में कृत्रिमता की अधिकता होकर प्रकृति से दूर होते जाने के कारण बीमारियों में भी वृद्धि हो रही है। अतः लोगों को अपने जीवन में स्वाभाविकता बसादगी लाकर रोगों से बचने के लिए प्रेरित

करें। साथ ही आज का युग आर्थिक युग होते हुए भी वह केवल अर्थ प्राप्ति के लिए ही इस क्षेत्र में प्रविष्ट न हों। वस्तुतः यह सेवा का क्षेत्र है और सेवा की भावना से ही इस क्षेत्र में कार्य किया जाना चाहिए।

श्री रमेश प्रसाद त्रिपाठी ने कहा कि आयुर्वेद विज्ञान अधिकार प्राप्ति के साथ ही अपनी उपयोगिता सिद्ध करेगा। आपने इसके लिए अन्वेषण सम्बन्धी सुविधा तथा आर्थिक सहायता की माँग की। बाद को श्री सौभाग्य मल जैन की अध्यक्षता में ही वाद विवाद तथा निबन्ध प्रतियोगिताएं हुईं और उनके परिणाम तत्काल घोषित कर दिये गये। विदेशी चिकित्सा पद्धति अधिक खर्चीली है

इसी अवसर पर मध्यभारत के मुख्य मंत्री श्री मिश्रीलाल गंगवाल ने पुरस्कार वितरण करते हुए कहा कि आयुर्वेद ऐसा विज्ञान है जिसका भारतीय संस्कृति से बड़ा सम्बन्ध है, किन्तु दुःख इस बात का है कि उसके प्रति हम सबको जितना ध्यान होना चाहिए था उतना नहीं दिया गया इससे पूरे देश को ही हानि हुई है और परिणाम यह हुआ है कि हमें विदेशी और खर्चीली चिकित्सा-पद्धति पर आश्रित होना पड़ा। अब आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद विज्ञान के प्रति जननिष्ठा जागृत की जाय और उसमें प्राण डाले जायें। यह कार्य तभी हो सकता है जब कि आयुर्वेद में विश्वास रखने वाले लोग इसी उद्देश्य से कार्यरत तथा साधना में लीन हो जाएँ। जहाँ तक मध्य भारत शासन का सम्बन्ध है वह इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना उत्तरदायित्व तो पूरा करेगा ही किन्तु पुरुषार्थ तो आप लोगों को ही करना है। किसी भी वस्तु में प्राण वही डाल सकता है जो अपने प्राण उसके लिए दे सकता है। जो उसमें विश्वास के साथ सेवा कर सकते हैं वे ही उसकी प्रगति कर सकते हैं। आज आप पर दुहरा उत्तरदायित्व है—एक तो आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना तथा दूसरे अपने लिए समाज में क्षेत्र तैयार करना। आशा है इस संस्था के निष्ठावान छात्र आयुर्वेद द्वारा देश की सेवा कर उन्नति की ओर अग्रसर होने में सफलता प्राप्त करेंगे।

छात्रों को पुरस्कार वितरण के बाद मुख्य मंत्री श्री गंगवाल तथा वित्त मंत्री सौभाग्य मल जैन ने इस अवसर पर आयोजित आयुर्वेद विज्ञान सम्बन्धी प्रदर्शनी का निरीक्षण किया अन्त में जलपान के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

बिहार-स्टेट आयुर्वेद कौन्सिल के सदस्य क० श्रीनारायण शर्मा का अभिभाषण

आदरणीय सभापति महोदय एवं सदस्यगण !

१. हमलोगों के सामने देशी चिकित्सा की उन्नति करने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। परिषद् की स्थापना के बाद लगभग एक वर्ष बीत गया है, पर अभी तक कार्य की गम्भीरता को देखते हुए कुछ भी नहीं हुआ है। इसलिये वर्तमान और भविष्य में विशेष लगन और परिश्रम द्वारा कार्य सम्पादन करना चाहिये।
२. बिहार राज्य-सरकार से प्रार्थना है कि नियमावली निर्माण सम्बन्धी कार्यों में शीघ्रपूति के लिये अधिक ध्यान दे। खास कर नियमावली के बिना अनेक कार्यों में कठिनाई होती है।
३. आयुर्वेद दिवस के प्रस्तावों पर विचार के साथ-साथ हमलोगों को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उपराष्ट्र-पति डा० श्री राधाकृष्णन, डा० बी० भी० मुले, डा० टी० एन० बनर्जी आदि के आयुर्वेद सम्बन्धी भाषणों पर ध्यान देना है।

(क) डा० राजेन्द्र प्रसाद ने २४ दिसम्बर को कलकत्ते में कहा है। “आज भी आयुर्वेद द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष में सब तरह के लोगों को जितना लाभ मिल रहा है उतना सरकार द्वारा संरक्षित और प्रतिपादित एवं अन्य चिकित्सा प्रणाली द्वारा नहीं मिल रहा है। यह चिकित्सा प्रणाली सब तरह से सुलभ और कम खर्चीली है। हमारे देश में आयुर्वेद की उन्नति करना इसकी त्रुटियों को दूर करना इस देश के लोगों का कर्तव्य है। एलोपैथी ने बहुत सी आयुर्वेदीय औषधियों और वनस्पतियों को लेकर उन्नति की है। कोई भी सरकार आयुर्वेद की अवहेलना नहीं कर सकती है। आयुर्वेद वालों को अनुसन्धान कार्य करना चाहिये। और उसके ज्ञान को संसार के लाभ के लिये देना चाहिये। सरकारी बोर्ड द्वारा आयुर्वेद की उन्नति में बहुत लाभ मिलेगा। सरकार से आपको हर तरह की सहायता मिलेगी।”

(ख) केन्द्रीय सरकार के कानून-विभाग के मन्त्री श्री चारुचन्द्र विश्वास ने भी उक्त अवसर पर कहा—“आयुर्वेद द्वारा देश की स्वास्थ्य समस्या हल हो सकती है। सरकार आयुर्वेद की उन्नति के लिये अवश्य सहायता देगी।”

(ग) उपराष्ट्रपति डा० श्री राधाकृष्णन ने गत सप्ताह में कहा है “आयुर्वेद जीवन शास्त्र है, जन-स्वास्थ्य समस्या का समाधान आयुर्वेद द्वारा ही होगा।”

(घ) डा० बी० भी० मुले ने २६ दिसम्बर को मेडिकल कान्फ्रेंस पटना में कहा—“चिकित्सा शास्त्र के सभी विषयों में आयुर्वेद की उन्नति और खोज हुई है। बिहार प्रदेश में नालान्दा विश्वविद्यालय द्वारा भारत और विदेशों के छात्र आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करते थे। शल्य प्रसूति आदि विषयों में शल्य क्रिया पूर्ण सफलता के साथ होती थी। विदेशी शासन के कारण आयुर्वेद की उन्नति में बाधा आई है। डाक्टरों को आयुर्वेद के पूर्ण स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी ज्ञान का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। सरकार आयुर्वेद की उन्नति के लिये ठोस योजना से काम ले।

(ङ) डा० टी० एन० बनर्जी ने भी उक्त अवसर पर कहा—“मैं बिहार के मंत्रियों से निवेदन करूंगा कि बिहार प्रदेश के हजारों बंछ और हकीमों को जो देहातों में चिकित्सा कार्य करते हैं, चोपड़ा समिति के सुझाव के अनुसार शिक्षा देकर उनको सरकारी स्वास्थ्य योजना के कार्यों में संयुक्त कर स्वास्थ्य संबन्धी समस्या हल करनी चाहिये।

४. वर्तमान आयुर्वेद महाविद्यालयों को सर्व-साधन सम्पन्न अष्टांगपूर्ण करना सर्व प्रथम कर्तव्य है। इसलिये आयुर्वेद महाविद्यालयों में निम्नलिखित साधनों की व्यवस्था जरूरी है—

(क) शिक्षक पूर्ण ज्ञान से युक्त सुशिक्षा प्राप्त, और अच्छे वेतनवाले होने चाहिये जिससे कि प्रत्येक विषय की पढ़ाई और रिसर्च ठीक हो।

(ख) प्रत्येक महाविद्यालय के साथ जड़ी-बूटी का उद्यान रहे, जिसमें व्यवहार में आनेवाली जड़ी-बूटियों का अच्छा संकलन हो, इसका उपयोग शिक्षा और चिकित्सा दोनों कार्यों में होना चाहिये।

(ग) रसायन-शाला-की सर्व साधन सम्पन्न व्यवस्था हो, जहाँ से छात्र औषधि निर्माण सम्बन्धी व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करें और उनकी उपयोगिता का व्यावहारिक अनुभव अस्पतालों से प्राप्त करें।

(घ) पुस्तकालय—विद्यालय से सम्बन्धित सर्व-साधन सम्पन्न पुस्तकालय का रहना आवश्यक है, इसमें आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्राचीन और आधुनिक ग्रन्थ और आधुनिक चिकित्सा संबंधी विज्ञान के ग्रन्थ अवश्य रहें। इसके द्वारा अध्ययन और खोज कार्य तथा नवीन पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी।

(ङ) म्यूजियम—विकृत शरीर सम्बन्धी प्रदर्शनी खनिज-पदार्थ, और जड़ी-बूटी आदि के प्रदर्शन की पूर्ण व्यवस्था प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए जरूरी है।

(च) शवच्छेदन विभाग—की पूरी व्यवस्था शरीर-ज्ञान के लिये अवश्य रहे, जिससे कि छात्रगण चौर-फाड़कर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकें।

(छ) गवेषण विभाग में आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी साधनों से संपन्न लेबोरेटरीज का रहना जरूरी है; जिसमें आयुर्वेदीय जड़ी-बूटियों से निर्मित औषधियों की परीक्षा हो, तथा अन्य खोज के कार्य भी हो। शास्त्र सिद्धान्त, साहित्य, रोगनिदान और परिचय, रसायन निर्माण, पथ्य व्यवस्था संबंधी आदि विषयों का खोज कार्य होना चाहिये।

त्रिदोषतत्त्व और पंच महाभूत विज्ञान तथा शरीर क्रिया एवं विकृति विज्ञान सम्बन्धी विषयों की संयुक्त जानकारी एवं खोज एवं आयुर्वेद के अन्य अंगों के लुप्त विषयों की खोज अति आवश्यक है।

(ज) गवेषण समिति की स्थापना एक उपसमिति के रूप में बोर्ड द्वारा हो, जिसमें शास्त्र के जानकार लोग रहें और इस परिषद् द्वारा खोज सम्बन्धी सारी व्यवस्थाओं का सुझाव दिया जाय जिससे कि अलग-अलग स्थानों में होनेवाले खोज कार्य की देख-रेख, सहयोग, सुझाव और व्यवस्थित कार्य क्रमके साथ उन्नतिपूर्ण कार्य हो सके। सदस्यों को इस महत्त्वपूर्ण विषय पर ध्यान देकर शीघ्र कार्य चालू कर देना चाहिए।

(झ) अस्पताल—संयुक्त अस्पताल (Attached Hospital) पढ़ाई के लिए तथा चिकित्सा व्यवस्था संबंधी सम्पूर्ण साधनों के व्यवहारिक ज्ञान के लिए महाविद्यालयों के साथ सर्व साधन-संपन्न अस्पताल का रहना आवश्यक है। अस्पताल में वहिरङ्ग (Out-door) और अन्तरङ्ग (In-door) विभाग में कार्य चिकित्सा (Medical), शल्य (Surgical) शालाक्य (Eye, Ear, Nose, Throat) प्रसूति (Midwifery), कौमार भृत्य (Children disease), स्त्री-रोग (Gynecology) पंचकर्म विभाग अग्रद-विभाग (Topicological Deptt) विकृति शरीर विभाग (Pathological Deptt) आदि का सर्वाङ्गपूर्ण और सर्वसाधन सम्पन्न रहना जरूरी है। अस्पताल में रोगी शय्या की संख्या एक छात्र पर पाँच शय्या संख्या के अनुपात से होनी चाहिये। कमसे कम एक छात्र पर एक रोगी शय्या का अनुपात अति आवश्यक है। छात्रों का ज्ञान इसके बिना संभव नहीं है।

महाविद्यालय से संयुक्त अस्पतालों की बृद्धि क्रमसे ३०० तीन सौ शय्या के अस्पताल के रूप में अवश्य करनी चाहिए। इन केन्द्रीय अस्पतालों में अनुसन्धान व्यवस्था का कार्य क्रम भी साथ-साथ चलाना चाहिए।

यहाँ नर्स, कम्पाउण्डर, दायी, हेल्प-टीउटर, तथा सैनीटरी इन्स्पेक्टरों की शिक्षा का साधन रहना चाहिए। जहाँ खासकर

आयुर्वेद सम्बन्धी चिकित्सा व्यवस्था शास्त्र अन्य व्यावहारिक ज्ञानों के साथ मिल सके। सरकार से अनुरोध है कि आरंभ से ही इन अस्पतालों में कम-से-कम २५ बेड काय चिकित्सा, १० प्रसूति, १० शल्य और पाँच शालाक्यादि के बेड-कुल पचास बेड्स से तो आरम्भ इसी वर्ष करादे और सामान आदि की व्यवस्था के लिए तथा चालू अवस्था कायम रखने के लिए आर्थिक सहायता देकर आयुर्वेद की उन्नति में सहयोग दे।

५. चूँकि सरकार ने आयुर्वेदीय स्नातकों को सरकारी नौकरियों में पूरा स्थान नहीं दिया है; इसलिये मेधावी छात्रों का आयुर्वेद की शिक्षा की ओर कम झुकाव है। सरकार को डाक्टरों की तरह ही देशी चिकित्सा को सरकारी नौकरियों में सुविधा देनी चाहिये इसलिये सर्व साधन सम्पन्न आयुर्वेदीय कॉलेजों की उन्नति तथा स्नातकों के लिये सरकारी नौकरियों की अच्छी सुविधा जरूरी है।

६. जिला अस्पतालों में आयुर्वेदीय चिकित्सा के लिये अलग विभाग रहे। कमसे कम अस्पताल के सम्पूर्ण बेड्स का चतुर्थांश आयुर्वेद विभाग के लिये सुरक्षित रहे।

कमसे कम २५ शय्या से कार्यारम्भ शीघ्र करा दिया जाय।

ये विभाग योग्य शिक्षा प्राप्त वैद्यों के अधीन रहे जिनके साथ दो आयुर्वेदीय कम्पाउण्डरों की व्यवस्था हो। अस्पताल सम्बन्धी सभी सुविधायें इस विभाग को प्राप्त रहे।

आर्थिक व्यवस्था और प्रबन्ध :—इन अस्पतालों के आयुर्वेदीय विभाग के लिये आर्थिक व्यवस्था में चिकित्सकों को वेतन एवं अन्य खर्चों का माध्यम डाक्टरी विभाग के सदृश रहे।

७. एक पाठ्य क्रम समिति कौंसिल के अन्तर्गत बनाई जाय। वर्तमान पाठ्य-क्रम में सुधार जरूरी है क्योंकि इस पाठ्यक्रम से पूर्ण शिक्षा कार्य में अभाव रह जाता है।

(क) यह समिति पाठ्यक्रम सुधार के अलावे पाठ्य पुस्तकों के निर्माण सम्बन्धी सुझावों और कार्यों के लिये सिद्धांत निर्माण एवं सुव्यवस्थित

नियमों और साधनों का क्रम तैयार करेगी। यह समिति निम्नलिखित कार्य भी करेगी।

- (ख) खास-खास विषयों पर लिखने के लिये योग्य व्यक्तियों को रखना या प्रोत्साहित करना।
- (ग) काय चिकित्सा, शल्य आदि विषयों के अलग-अलग ग्रन्थ निर्माण सम्बन्धी अध्ययन की व्यवस्था करें।
- (घ) एक सम्पादक मण्डल की नियुक्ति करना जो कि लिखे हुए विषयों की जाँच कर उसका ठीक-ठीक संकलन करे जिससे लिखित ग्रन्थों द्वारा संयुक्त शास्त्र ज्ञान और चिकित्सा सम्बन्ध में एक रूपता लाई जा सके।

उपरोक्त कार्यों के लिये इस समिति का निर्माण पाँच से सात विज्ञ सदस्यों को लेकर कर दिया जाय। इस समिति को यह अधिकार भी रहे कि आवश्यकतानुसार बाहरी लोगों की सहायता लेवे। यद्यपि पाठ्य क्रम सम्बन्धी कार्य कुल के अन्तर्गत आता है पर विशेष कार्यों को एक साथ करने के लिये और कार्य को शीघ्र सम्पादन के लिये इस समिति की आवश्यकता है।

८. पढाई का माध्यम, प्रश्न-पत्र और परीक्षा का माध्यम हिन्दी ही में रहे।

९. (क) जनस्वास्थ्य समस्या के समाधान के लिये देहातों में रहनेवाले वैद्यों और हकीमों को चोपड़ा समिति के सुझाव के अनुसार सरकारी नौकरियों में जनस्वास्थ्य विभाग के अन्तर्गत भर्ती किया जाय। इन देशी-चिकित्सकों को उपरोक्त कार्य करने के लिये चोपड़ा समिति की रिपोर्ट के प्रथम भाग पृष्ठ ११८ से १२४ तक में लिखित पाठ्य-क्रम के अनुसार आयुर्वेदिक कॉलेज में शिक्षा व्यवस्था कर ६ महीने के अवधिकाल में जनस्वास्थ्य साधारण शल्यक्रिया, प्रसूतिक्रिया आदि के जानकारी करा दी जाय। इसके बाद परीक्षा लेकर सफल व्यक्तियों को सरकारी नौकरी दी जाय। परीक्षाकाल में चिकित्सकों को खर्च के लिये प्रत्येक व्यक्ति पीछे ३०) तीस रुपये प्रतिमास आर्थिक सहायता दी जाय।

- (ख) इस प्रकार परीक्षोत्तीर्ण चिकित्सकों को सरकारी नौकरियों में अस्सी रुपये से ढेड़ सौ रुपये तक प्रतिमास वेतन दिया जाय।
- (ग) कॉलेज परीक्षा प्राप्त एवं अन्य विशेष सुयोग्य चिकित्सकों को ऐसी परीक्षा बिना भी सरकारी नौकरी में स्थान दिया जाय।
१०. म्युनिसिपल बोर्ड एवं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अस्पतालों में आयुर्वेदीय चिकित्सकों को स्थान दिया जाय।
११. पूर्व निश्चित योजना नुसार प्रत्येक जिले में ६ आयुर्वेदीय डिसपेन्सरी खोली जाय।
१२. चार हजार आदमी की आबादी पर एक आयुर्वेदिक डिसपेन्सरी खोली जाय। ऐसी डिसपेन्सरी स्थानीय ग्राम पंचायत के दफ्तर से सम्बन्धित रूप में चलाई जाय। वंछ का काम हो कि स्थानीय जनता को स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी ज्ञान करावे और रोगियों की चिकित्सा करे।
१३. अर्थव्यवस्था—ऐसी डिसपेन्सरी की अर्थ व्यवस्था डिस्ट्रिक्टबोर्ड के ग्रामीण हॉस्पिटल की तरह हो।
१४. इस तरह की डिसपेन्सरियों के बीच पचास हजार की आबादी पर एक चलता-फिरता हॉस्पिटल हो जिसका कार्य खासकर संक्रामक रोगों की उत्पत्ति होने पर चिकित्सा के लिए विशेष सहायता देना होगा, साथ-ही-साथ संक्रामक रोकने की व्यवस्था करेगा और स्थानीय चिकित्सालय के साथ सहयोग करेगा।
१५. सबडिविजनल अस्पतालों में भी जहाँ २५-३० रोगीशय्या की व्यवस्था हो वहाँ कम-से-कम दस रोगीशय्या आयुर्वेदिक विभाग के लिये सुरक्षित रखी जाय। जहाँ दो चिकित्सकों की व्यवस्था हो वहाँ एक चिकित्सक आयुर्वेदिक कॉलेज के योग्यता प्राप्त वैद्य रहे जिसे शल्यक्रिया का भी ज्ञान हो। ऐसा होने से चालू खर्च से ही दोनों व्यवस्था चलेगी।
१६. पंचायत के सम्पर्क से जो अस्पताल रहेगा उसमें वेतन भोगी ग्राम-सेवक कम्पाउन्डर का काम करेगा और ऐसा होने पर प्रारम्भ में विशेष आर्थिक बचत हो जायगी।
१७. उरोक्त व्यवस्था को चालू करने के लिये सरकार से अनुरोध है कि जनस्वास्थ्य को सर्वप्रथम स्थान देते हुए शीघ्र काम आरम्भ करें। बिहार के उच्च कोटि के डाक्टर भी इस योजना के समर्थक हैं। इस हालत में सरकार को दिलचस्पी के साथ इस विषय पर कर्तव्य रूप में आरूढ़ होना चाहिये।
१८. ग्रामीण वैद्योंको अधिकाधिक सब सीडियरी एलाउन्स देकर प्रोत्साहित किया जाय एवं बोर्ड की सैनेटेशन कमीटी में वैद्यों को रखकर इनकी सलाह ली जाय।
१९. गत २४ दिसम्बर को अखिल भारतीय आयुर्वेदीय स्टेट बोर्ड और कौन्सिल के सम्मेलन में निर्मित केन्द्रीय चिकित्सा परिषद की स्थापना का स्वागत किया जाय और बिहार आयुर्वेदिक कौन्सिल से दो सदस्य निर्वाचित कर भेज दिये जाय जिससे कि अन्तरप्रान्तीय आयुर्वेदोन्नति के विषयों, रजिस्ट्रेशन के विषय में, शिक्षा के पाठ्य-क्रम और माध्यम के विषय में एवं खोज कार्य में अखिल भारतीय पैमाने पर एक रूपता लाई जाय।
२०. रजिस्ट्रेशन कार्य शीघ्र चालू किया जाय तथा १० वर्ष से अधिक समय से चिकित्सा करनेवाले वैद्य भी रजिस्टर्ड किये जाय।
- ### उपसंहार
२१. आयुर्वेदोन्नति सम्बन्धी इन योजनाओं को सफल करने में आयुर्वेदीय कॉलेज को सर्वाङ्गपूर्ण करने में डेढ़ लाख से अढ़ाई लाख तक प्रत्येक कॉलेज की समान आदि की व्यवस्था में खर्च होना चाहिये। चालू खर्च में पूर्ण व्यवस्था के लिए प्रारम्भ में १ लाख से २ लाख तक खर्च होना चाहिए। जिला अस्पतालों में तथा सबडिविजनल अस्पताल में आयुर्वेद-विभाग के लिए चालू खर्च में थोड़ा हेर-फेर से भी काम चल सकेगा। ग्रामीण चिकित्सालय (१५००) सालाना खर्च से प्रत्येक के लिए चल सकता है। (५००) सबसीडीयरी एलाउन्स वैद्यों को प्रतिवर्ष देहातों में देना चाहिए। यू० पी०, मद्रास आदि सरकार आयुर्वेद पर १० से १५ लाख रुपये खर्च करती हैं। बिहार सरकार को नालान्दा विश्वविद्यालय के समय के आयुर्वेद के गौरव को बढ़ाना है। इसलिए उपरोक्त रकम से अधिक तो प्रति वर्ष खर्च करना ही चाहिए।

२२. हम सब कौन्सिल के सदस्यों का कर्तव्य है कि हमलोग गवेषण समिति और पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-पुस्तक निर्माण समिति बना कर रचनात्मक तरीके से विशेष लगन, परिश्रम और अध्ययन द्वारा आयुर्वेदोन्नति के लिए ठोस कदम आगे बढ़ावें। उपसमितियाँ अपने कार्य की रिपोर्ट कौन्सिल को ६ महीने के अन्दर दे तथा इनके कार्य का खर्च कौन्सिल से हो। आशा है यह परिषद् अपने कर्तव्य में पूर्ण सफल होगी।

वैद्यों व औषधालयों की सहायता अंधकार में ?

राजस्थान के कर्मचारियों की अव्यवस्था के कारण वैद्यों व औषधालयों की आर्थिक सहायता अबतक भी पास होकर नहीं मिल रही है। जब कि नूतन वर्ष प्रारंभ होने जा रहा है। सहायता न मिलने के कारण औषधियों द्वारा ग्रामीण दीन रोगियों को औषध वितरण करने में जो कष्ट उठाना पड़ रहा है, वह असहनीय है।

राजस्थान सरकार को इस ओर शीघ्र ध्यान देकर अविलंब इस प्रश्न को हल करना चाहिए।

—वैद्य उदयलाल महात्मा

झाँसी

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झाँसी द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय में जनवरी १९५३ में आये हुए कुल ४३१२ रोगियों को मुफ्त दवा दी गयी। जिनमें ३७७२ पुरातन और ५४० नवीन रोग थे। नवीन रोगी निम्नलिखित रोगों के हैं। ज्वर ८२, विषम ज्वर ५२, जीर्ण ज्वर (यक्ष्मा) १०, रक्तपित्त ५, शिरोरोग ८, पक्षाघात १, निमोनिया १२, उपान्त्रशोथ २, यकृत १०, प्रमेह ५, अम्लपित्त २, रक्त विकार १३, श्वास १४, मेदरोग ५, शोथ ४, हृद्रोग २, गर्भिणी ज्वर ३, प्रतिश्याय ४३, प्रदर १६, कण्ठ रोग १०, वात व्याधि २३, बालरोग २०, कास ८०, उदररोग २६, मूत्ररोग ६, कर्ण रोग ६, व्रण ४, अतीसार ३६, नेत्र रोग ५, अर्श २, उन्माद ८, अपस्मार ६, टाइफाइड १०।

पुरदिलनगर चिकित्सालय

२० जनवरी—आज दिन के ११ बजे वसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर पुरदिलनगर चिकित्सालय के बहि-विभाग का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद डाइरेक्टर श्री पं० दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी एम. एस. सी. आयुर्वेदाचार्य के द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने अपने सारगर्भित भाषण में आयुर्वेद के उज्ज्वल भविष्य की कामना की और बतलाया कि चिकित्सालय के अध्यक्ष श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य ने यह जो कार्य किया है वह स्तुत्य है और उनसे बहुत बड़ी आशाएँ हैं। उद्घाटनावसर पर अलीगढ़ जिला वैद्य सभा के सभी अधिकारी, समीपस्थ स्थानों के वैद्य तथा समीपस्थ जिलों के वैद्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति एस० अधिकारोगण, एम. एल. ए., मजिस्ट्रेट आदि उपस्थित थे। समारोह को आशातीत सफलता मिली।

आयुर्वेद सम्मेलन, हाथरस

नगर आयुर्वेद-सम्मेलन हाथरस एवं तहसील आयुर्वेद-सम्मेलन हाथरस का संयुक्त अधिवेशन वैद्य श्री लक्ष्मणाचार्य जी के सभापतित्व में १८-१-५३ को हुआ। एवं नवीन वर्ष के लिए पदाधिकारियों का भी चुनाव सम्पन्न हुआ।

वैद्यराज पं० श्री हरिनारायण जी (जयपुर निवासी) को आयुर्वेद-सम्मेलन का स्थायी संरक्षक निर्वाचित किया गया। आप स्थानीय आयुर्वेद सम्मेलन के प्रमुख संस्थापक हैं

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा केन्द्र पटना

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० पटना द्वारा वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में गत जनवरी मास में आये हुए कुल ३४५७ रोगियों को बिना मूल्य दवा दी गयी। इसमें ८०३ नये तथा २६५४ पुराने रोगी थे। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार इस प्रकार है—साधारण मौसमी ज्वर ४१, मलेरिया ३१, उदर रोग १२७, पेचिस २०, मन्थज्वर ५, हृत्वा डव्वा ६, न्युमोनिया ८, सर्दी-जुखाम ५०, बवासीर ६, प्रमेह ७, स्त्री रोग ६, आमवात २, वात व्याधि ४१, कुष्ठ ५, क्षुद्र कुष्ठ ५१, कास १५३, श्वास १५, मुख रोग ३३, नेत्र-रोग २३, कर्ण रोग ३८, शिरोरोग ८, व्रण २८, श्लीपद ३, यक्ष्मा १, वृद्धि ३, बालशोष १, गुल्म १, शीतपित्त १, मत्र कृच्छ्र १, रक्तपित्त १, एवं विविध ८४।

एवं समय-समय पर आवश्यकतानुसार तन, मन धन से सहयोग भी प्रदान करते रहते हैं। आप आरम्भ में ५-६ वर्ष तक इसके सभापति भी रह चुके हैं।

—:०:—

नये आयुर्वेदिक वार्ड का उद्घाटन

हैदराबाद १ फरवरी। राजकीय आयुर्वेद-चिकित्सालय में रोगी शय्या में २२ से ४८ शय्या कर दी गई है। राजकुमारी अमृत कौर, डा० सुशीला नय्यर, श्री शान्ति लाल शाह, श्री दया शंकर दवे, श्री राम किशोर व्यास, श्री कन्नमवार क्रमशः केन्द्र दिल्ली, बम्बई, सौराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्रिगण आयुर्वेद चिकित्सालय में पधारे। डा० एल० डी० खत्री, अध्यक्ष भारतीय चिकित्सा विभाग ने आपका स्वागत किया तथा आयुर्वेद कालेज की छात्राओं ने पुष्पमालाएं पहनाईं। डा० हमी-दुद्दीन, स्पेशल आफिसर, इण्डियन मेडिसन, डा० आशाानंद पंचरत्न व वैद्य इंचारज कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी से आप सबका परिचय कराया गया। पुरुष विभाग, महिला विभाग, शिशु विभाग, आयुर्वेदिक फार्मसी, लैबोरेटरी आदि विभाग देखकर आप सब ने सन्तोष प्रकट किया। चिकित्सालय में तुलनात्मक दृष्टि से रोगियों का विवरण देखकर राजकुमारी जी व कुमारी सुशीला नय्यर ने विशेष प्रसन्नता प्रकट की। आपके साथ भारत सरकार के सलाहकार डा० सी. जी. पण्डित, डा० चङ्ग, डा० मेयर, डा० चोपड़ा, डा० केवलेकर क्रमशः दिल्ली, पेंसू, यू. पी., राजस्थान के स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर भी थे। मध्य प्रदेश के डा० शहानी ने चिकित्सालय का निरीक्षण कर शिक्षाप्रद, लाभप्रद, एवं मनोरंजक वर्णन किया। यूनानी विभाग की भी आप सबने अवलोकन किया।

—:०:—

श्रीमती द० पो० अष्टांग आ० कालेज

भागलपुर, ८ फरवरी। बिहार के स्वास्थ्य मन्त्री श्रीयुक्त देव शरण सिंह ने कालेज के मन्त्री कविराज श्री नारायण शर्मा के साथ उक्त कालेज और अस्पताल का निरीक्षण किया। स्वास्थ्य मन्त्री जी ने कालेज और अस्पताल के अन्तरंग और बहिरंग विभाग—काय चिकित्सा, शल्य, शालाक्य, स्त्री-रोग चिकित्सा, पंचकर्म आदि विभागों को खूब ध्यान से देखा। आप आयुर्वेद का प्राचीन (अब लुप्तप्राय) अंग पंचकर्म विभाग को देखकर बहुत खुश हुए। अन्तरंग विभाग में अग्र्य चिकित्सा से विमुख रोगियों

की सफल चिकित्सा देखकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया। आपके साथ स्थानीय सिविल सर्जन तथा बिहार प्रान्त के कई एस० एल० ए० और स्थानीय नगर पालिका भी थे।

अभी अस्पताल में प्रतिमाह रोगियों की संख्या करीब साढ़े छः हजार रहती है। स्वास्थ्य मन्त्री जी ने निरीक्षण के बाद आशा प्रकट की कि ऐसे अस्पतालों द्वारा आयुर्वेद का अवश्य ठोस कार्य होगा। बिहार सरकार द्वारा ऐसे अस्पताल को अवश्य सहायता दी जायगी। जनता को भी इसमें आर्थिक सहायता देनी चाहिये।

इस कालेज और अस्पताल के साथ एक जड़ी-बूटी का उद्यान भी है जो स्थानीय नगर पालिका द्वारा प्रदत्त सस वीधे जमीन में है।

—:०:—

उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री की सेवा में

हम माननीय स्वास्थ्य मन्त्री उत्तर प्रदेश का ध्यान राज्य के स्वास्थ्य विभाग द्वारा निकाले गए २ अध्यादेशों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। अध्यादेश नं० १३५।१२ : यफ : ए।४८ मेडिकल तिथि सितम्बर ११, १९४८ उत्तर प्रदेश के राज्य द्वारा संचालित आयुर्वेदीय व यूनानी चिकित्सालयों में बी. आई. एम. एस. स्नातकों को सर्जरी करने से रोका गया है। अध्यादेश नं० जी. ओ. नं० २३६६ बी। वी १३६ १९५० सितम्बर ४, १९५१ उ० प्र० के अनुसार आयुर्वेदीय व यूनानी स्नातकों द्वारा सल्फाड्रग व स्टेप्टोमाइसिन इत्यादि प्रयोग करने से बंचित किया गया है। जब कि हम भारतीय चिकित्सा समिति द्वारा संचालित आयुर्वेदिक व यूनानी कालेजों में बोर्ड द्वारा निर्धारित मध्यमा, मेदिक व इण्टर परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके प्रवेश पाते हैं। तथा ५ वर्ष के तुलनात्मक अध्ययन के बाद उपाधि प्राप्त करते हैं। हमें आश्चर्य होता है कि एक ओर तो हमारे आयुर्वेद प्रेमो नेता गण तुलनात्मक अध्ययन की सलाह एवं विज्ञान किसी की बर्षाती नहीं हैं ऐसा विचार प्रकट करते हैं तथा दूसरी ओर अध्ययन के पश्चात् स्नातकों पर प्रतिबन्ध के आदेश जारी किये जाते हैं। जो सर्वथा न्यायोचित नहीं है। हम आयुर्वेद को लोकप्रिय बनाने में ऐसी नीतियों को बाधक समझते हैं। अतएव हमारा यह निवेदन है कि हमें इन औषधियों के प्रयोग तथा सर्जरी पर लगे प्रतिबन्ध से मुक्त किया जाय।

सभापति

छात्रसंघ एस. डी. ए. कॉलेज, बनारस

पंचवर्षीय स्वास्थ्य-रक्षा योजना

निरीक्षक

रानीखेत, अपने सम्मेलन द्वारा पर्वतीय प्रदेश की जनता को रोग मुक्त करने तथा विशुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा की रक्षा के लिये पञ्चवर्षीय स्वावलम्बी-स्वास्थ्य-रक्षा योजना प्रस्तुत की है। इसके अनुसार प्रत्येक वैद्य अपने इलाके के ५०० परिवारों की चिकित्सा करने का उत्तरदायी होगा, प्रत्येक परिवार १) से लेकर ११) तक मासिक स्वास्थ्य रक्षा शुल्क प्रदान करेगा। इसमें १००) से १२५) तक मासिक योग्यतानुसार वैद्य का वेतन, १२५) मासिक, औषधियों, चिकित्सा सम्बन्धी उपकरणों, गर्भवती स्त्रियों के शिशु-प्रजनन हेतु धात्रियों व निरीक्षकों के वेतनों में व्यय किया जायगा। ऐसे परिवारों के रोगी हो जाने पर वैद्य को उनकी पूर्णरूपेण निःशुल्क चिकित्सा करनी होगी, और इस पूर्व निर्धारित मासिक शुल्क के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का पुरस्कार या औषध-मूल्य वैद्य उनसे नहीं लेगा। अपने क्षेत्र की परिवारों की गर्भवती महिलाओं की सूची भी उक्त वैद्य को रखनी होगी, जिससे कि निश्चित समय पर केन्द्रीय कार्यालय से उनकी सहायता के लिये सुशिक्षिता धात्री (दाई) को भेजा जायगा।

स्वास्थ्यरक्षा योजना के अन्तर्गत इन प्रत्येक ५०० परिवारों की ईकाई को उस क्षेत्र के वैद्य द्वारा दिनचर्या, ऋतुचर्या, हित आहार-विहार, स्वास्थ्य-रक्षा रोगी परिचर्या, उक्त प्रदेश में उत्पन्न होने वाले वनौषधियों का सामयिक प्रयोग-ज्ञानद्रव्यगुण तथा चिकित्सा के लिये नित्य प्रति व्यवहार में आने वाली आयुर्वेदिक औषधियों का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षण देना होगा।

समस्त वैद्यों के लिये केन्द्रीय निर्माण शाला से एक ही माप (स्टैण्डर्ड) की उत्तमोत्तम औषधियाँ भेजी जायेंगी चिकित्सा का सामाज्य बनाये रखने के लिये "राष्ट्रीय चिकित्सा सिद्धयोग" (आयुर्वेदिक फार्माकोपिया) का निर्माण किया गया है। इस प्रकार अपने ५०० परिवारों की ईकाई क्षेत्र में प्रत्येक वैद्य, चिकित्सा के लिये पूर्ण उत्तरदायी होगा। और उस क्षेत्र के किसी भी कष्ट साध्य रोगी की चिकित्सा के लिये अपने वरिष्ठ अधिकारी से सम्पर्क स्थापित करेगा। आगामी ५ वर्षों में अपने अधीनस्थ क्षेत्र की जनता को रोग मुक्त करने का प्रयत्न करेगा।

प्रति २०००००, दो लाख जन संख्या के क्षेत्र में कार्य करने वाले वैद्यों के लिये परामर्शदाता तथा निरीक्षक की नियुक्ति की जायगी, ऐसे व्यक्ति की योग्यता हि० वि० आयुर्वेद शास्त्राचार्य परीक्षोत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। प्रत्येक निरीक्षक अपने क्षेत्र में कार्य करने वाले वैद्यों से सम्पर्क स्थापित करते हुए उनके कष्ट साध्य रोगियों की चिकित्सा के लिये परामर्श तथा सहायता प्रदान करेगा।

अतएव प्रत्येक वैद्य बन्धु को अपने क्षेत्र के ५०० परिवारों की सूची बनाकर, उनके मुखिया व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करके उनसे इस योजना पर विचार-विमर्श कर सहयोग तथा सहमति ले कर उन्हें नियमानुसार सदस्य बना दिया जाय, और ऐसे संगठन की सूचना परिवारों के प्रमुख व्यक्तियों की सूची तथा मासिक रूप में प्राप्त होनेवाले 'शुल्क' के विषय में विस्तृत वर्णन, सम्मेलन के कार्यालय में शीघ्र भेज दिया जाय, जिससे की आगामी चैत्र सम्बत् २०१० वि० से इस योजना को कार्य रूप में परिणत किया जाय जा सके।

योजना-संगठन

सम्मेलन की इस राष्ट्र निर्माण-योजना के अन्तर्गत प्रत्येक सुयोग्य चिकित्सक को जनता जनार्दन के स्वास्थ्य की रक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हुये भारतीय परम्परा के अनुसार इस राष्ट्र को नीरोग-सुखी व समृद्ध बनाना है। और अपने प्रदेश की जनता जो कि प्रज्ञापराधों, मिथ्या आहार-बिहार तथा स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से पराङ्मुख होकर नारकीय यातना भोगते हुए अकाल मृत्यु को प्राप्त हो रही है, यही नहीं अपने दुर्घटनाओं से संक्रामक औपसर्गिक रोगों से पीड़ित हो कर भावी संतति के जीवन को भी नष्ट कर रही है उससे राष्ट्र की रक्षा करनी है।

मुझे पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि सम्मेलन के सभी वैद्य सदस्य महानुभाव इस यज्ञ की पूर्णाहुति में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।

मन्त्री

हिमालय आयुर्वेद-सम्मेलन
रानीखेत

कलकत्ते के तीनों आयुर्वेदिक कालेजों का
एकीकरण-योजना

कलकत्ता। गत रविवार १ फरवरी ५३ को सबरे श्यामा दास वैद्य वाचस्पति भवन ६०३ प्रे स्ट्रीट कलकत्ता

में आयुर्वेदिक कालेज एकीकरण समिति की एक बैठक डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें एक प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ कि कलकत्ता के तीन आयुर्वेदिक कालेजों के बराबर प्रतिनिधियों को लेकर एक बोर्ड का गठन हो जिसे को-आप्ट करने का अधिकार होगा। फैंकेल्टी द्वारा निर्धारित विषयों की पढ़ाई बोर्ड की देख रेख में होगी, जिस सम्बन्ध में बेसिक वैज्ञानिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। आयुर्वेदिक कालेज, अस्पताल, अनुसंधान विभाग, प्रकाशन एवं रजिस्टर्ड आयुर्वेदिक चिकित्सकों के हित में उचित सहायता प्राप्त करने के सम्बन्ध में बोर्ड पश्चिम बंग सरकार के पास आवेदन करेगा। समिति के सदस्यों में निम्नलिखित सदस्य सभा में उपस्थित थे।
न्यायाध्यक्ष श्रीरामा प्रसाद मुखर्जी, डा० प्रतापचन्द्र गुहाराय, श्री हेमेंद्र प्रसाद घोष, कविराज विमलानन्द तर्कतीर्थ, कविराज सुशील कुमार सेन, कविराज एम. एल. दास गुप्ता, कविराज अमर भूषण राय, कविराज इन्दु भूषण सेन, कविराज शरत्-चन्द्र सांख्यतीर्थ, कविराज फणि भूषण राय, कविराज सचिन्द्र नाथ गुप्ता, डा० जे० सी० चटर्जी, डा० एच० के० सेठ, डा० आई. एन. मुखर्जी, श्री एम. एन. मैत्र, श्री विजय कुमार विश्वास, श्री एन. सी. गुप्ता, कविराज श्यामा दास राय, श्री एच. सी. बनर्जी।

स्थायी आयुर्वेद-प्रदर्शनी

पिलानी। यहाँ बिरला आयुर्वेद विभाग की ओर से आयोजित आयुर्वेद-प्रदर्शनी का उद्घाटन झुंझुनू जिला वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यराज बिरंचीलाल जी शास्त्री ने किया। कुल प्रदर्शनी ६ भागों में विभक्त है। एक भाग में श्री धनवन्तरि और सुश्रुत के जमाने के शस्त्र, यन्त्र और उपयन्त्र तथा प्राचीन सिद्धों के पारद-संशोधन के यन्त्र और पुटों का दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए शास्त्री जी ने कहा कि प्रत्येक आयुर्वेद-कालेज के साथ ऐसी प्रदर्शनी स्थायी होनी चाहिए। इस से आयुर्वेदीय विद्यार्थियों को अत्यन्त लाभ होगा।

महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर के आचार्य और राजस्थान आयुर्वेदिक बोर्ड के मन्त्री ने भी प्रदर्शनी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। अतः प्रदर्शनी को स्थायी रूप देने का निश्चय कर लिया गया है।

स्वास्थ्य मंत्रिणी द्वारा यक्ष्मा सम्मेलन का उद्घाटन

बंगलोर, २ फरवरी। स्वास्थ्य मंत्रिणी तथा भारत के यक्ष्मा एसोसियेशन की अध्यक्षा राजकुमारी अमृतकुमारी ने यक्ष्मा रोग के कार्यकर्ताओं के दसवें सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि यक्ष्मा की समस्या और इसके द्वारा व्यक्तियों, परिवारों और समस्त राष्ट्रों को होनेवाली अपमान हानि का मैं जितना ही विचार करती हूँ उतना ही मुझे विश्वास होता जाता है कि इस अवस्था की ओर न केवल विशेषज्ञों, सामाजिक संगठनों और सरकारों का ही बल्कि सारी जनता का अधिक से अधिक ध्यान जाना चाहिये।

राजकुमारी ने कहा कि यद्यपि इस रोग को रोकने की समस्या बड़ी भयानक है और उसके लिए हमारे पास साधन भी बहुत सीमित हैं पर हर्ष की भी एक बात है और वह यह कि हमारे देश वासी भी अब इस बारे में सचेत हो जा रहे हैं कि इस मोर्चे पर सरकार या इस एसोसियेशन को ही नहीं लड़ना है, वरन् उन्हें भी इस दिशा में कुछ करना होगा। लगभग सब राज्यों में बी. सी. जी. के टीके लगाए जा रहे हैं और दिसम्बर १९५२ के अन्त तक १ करोड़ ३५ लाख लोगों की परीक्षा हो चुकी थी और उनमें से ४२ लाख को बी. सी. जी. के टीके लगाये जा चुके थे। वैसे तो देश की लगभग ३५ करोड़ ७० लाख की आबादी में जहाँ १५ करोड़ को इन टीकों की आवश्यकता है उक्त संख्या नहीं के बराबर है, पर फिर भी इसे उत्साह जनक समझना चाहिये। केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् ने, जिसकी बैठक अभी दो दिन पहले ही हैदराबाद में हुई थी विभिन्न राज्य-सरकारों से सिकारिश की है कि वे बी. सी. जी. के टीके लगाने का काम व्यापक रूप से प्रारम्भ करें। सरकारों को ऐसी संस्थाओं को भी सहायता प्रदान करनी चाहिये जिनका उद्देश्य लाभ नहीं और जहाँ यक्ष्मा के निवारण का कुछ प्रबन्ध है।

आपने आगे कहा कि जहाँ १९४७ में यक्ष्मा अस्पतालों में ५,००० बिस्तर थे वहाँ १९५२ में बढ़कर १३,००० हो गये और मुझे पूरी आशा है कि १९५६ तक यह संख्या ५०,००० तक पहुँच जायगी। डाक्टरों, नर्सों आदि के विशेष प्रशिक्षण का अब देश के कुछ विश्व विद्यालयों में भी प्रबन्ध है और दिल्ली, त्रिवेन्द्रम और पटना में स्थापित केन्द्रों तथा मान्यताप्राप्त सेनोटोरियमों आदि में ये सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

अभिनन्दन

भगवद्भक्त, धर्मप्राण, संतप्रवर, महर्षि

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

के

पादपद्मोंमें

गुरो !

आप को अपने बीच पाकर हम अपने को धन्य मानते हैं। आपकी उदारता, भगवत्निष्ठा तथा भगवद् गुणानुवाद में प्रेम का वर्णन कहाँ तक करें ? उदारता तो ऐसी कि आपके सभी साधन तथा द्रव्य परोपकार के निमित्त लभ्य रहते हैं। भगवान में निष्ठा इतनी कि भगवान की कृपा का सदा अनुभव करते अर्हतिश निश्चिन्त तथा मग्न रहते हैं। इतने बड़े झूसी के आश्रम का भार लिए हुए भी आप को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं व्याप पाती। भगवद्गुणानुवाद में आपकी लगन तो वर्णनातीत है। आपने कितने तीर्थ-स्थानों में हरिनाम-यश-कीर्तन का गान कर-कराकर लोगों को आप्यायित किया है ; श्रीमद्भागवत कथा की आयोजनाएँ कराकर भक्त जनों को आनन्दित किया है तथा ग्रन्थकार में ठोकरें खाते भावुक व्यक्तियों को सद्भावनाओं से आलोकित किया है।

आनन्दमूर्त्त !

आपने असंख्य दुःखित जीवों के सन्मुख दिव्यानन्द का आदर्श रख कर उनकी सूखती प्राणधारा को सजीव किया है। त्याग तथा तपस्या की तो आप सजीव मूर्ति ही हैं। त्याग-तपोमूर्त्त ! आपके चरण-कमलों में सादर वन्दना स्वीकृत हो।

महर्षे !

आपकी महत्ता, भगवद्भक्ति तथा हम संसारी जीवों पर अनुकम्पा का वर्णन हम नहीं कर सकते तथापि श्रद्धा से श्रोतप्रोत हृदय कुछ कहे बिना रह भी नहीं सकता। आपने "भागवती कथा" की रचना कर हम पतनोन्मुख जीवों को ईश्वरोन्मुख करके हमारा बड़ा ही कल्याण किया है। आधुनिक युगके व्यासदेव ! हम अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करें ? विद्या, बुद्धि-साधना शून्य, अपने आन्तरिक भावों को प्रकट करने में सदा असमर्थ हम श्रीमान् के पादपद्मों की वन्दना से ही सन्तोष कर लेते हैं।

महाभागवत् !

संसारी जीवों के कल्याण के निमित्त आपके अन्य उपचार बरबस हमें श्रीमान् की ओर आकृष्ट करते हैं। कहाँ यह कीकट देश, कहाँ श्रीमान् के समान भगवद्भक्ति से परिपूर्ण सन्त के मुखारविन्द से व्यक्त भगवद् गुणगान के सरस स्वर ! हमारे तृषित श्रवण इन्हें पाकर एक महान् तृप्ति का अनुभव करते हैं। हमारा हृदय आनन्दातिरेक से गद्गद् हो उठा है। श्रीचरण में यही प्रार्थना है कि श्रीमान् का आशीर्वाद हमको प्राप्त हो जिससे हम भी विश्वेश-पादाम्बुज-दीर्घ-नौका के सहारे भवसागर पार कर सकें।

हम हैं,

भवदीय कृपाभिलाषी—

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना

पटना,

ता० ६-२-१९५३

}

कुछ वैद्योपयोगी वैद्यनाथ प्रकाशन

आरोग्य प्रकाश—वैद्य और सर्वसाधारण सभी के लिए परम उपयोगी है। इस ग्रन्थ की ६८ हजार से अधिक प्रतियाँ छपकर हाथों-हाथ विक चुकी हैं। ४१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य प्रचार की दृष्टि से सिर्फ १।।।) रखा गया है। डाकखर्च ॥=) है। परन्तु एक साथ तीन प्रति मंगाने पर डाक खर्च कार्यालय देगा।

आयुर्वेद-सार-संग्रह—(संशोधित-परिवर्धित द्वितीय संस्करण) विशेष रूप से वैद्यों के लिए ही वैद्योपयोगी ज्ञान का संकलन कर इसको हमने प्रकाशित किया है। मूल्य—७) मात्र।

सिद्धयोग-संग्रह—आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य के कर-कमलों द्वारा लिखित ग्रन्थरत्न। मूल्य—२।।।) मात्र।

त्रिदोष-तत्त्व-विमर्श—त्रिदोष-सिद्धान्त का विद्वत्तापूर्ण विवेचन है। मूल्य २।।=) मात्र।

पदार्थ-विज्ञान—लेखक—आयुर्वेद बृहस्पति रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल, अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेदिक कालेज, बेगूसराय। मूल्य—३।।) मात्र।

आयुर्वेदीय-पदार्थ-विज्ञान—लेखक—वैद्य रणजितराय आयुर्वेदालंकार। 'पदार्थ विज्ञान' ग्रन्थ में आचार्य पाठकजी ने पदार्थ-विज्ञान पर अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से विचार किया है। इस ग्रन्थ 'आयुर्वेदीय' पदार्थ-विज्ञान, में पाठकों को आचार्य-रणजितराय के स्वतन्त्र मौलिक विचार मिलेंगे। मूल्य— ६) मात्र।

मानस-रोग-विज्ञान—(पूर्वार्ध) —स्वर्गीय डा बालकृष्ण अमरजी पाठक कृत। इस ग्रन्थरत्न में आयुर्वेदीय मनोविज्ञान का विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन हुआ है। मूल्य—५।।) मात्र।

यूनानी सिद्धयोग संग्रह—यूनानी चिकित्सा पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की तरह ही सस्ते और तुरन्त लाभ करने वाले होते हैं। अतः चिकित्सकों तथा सर्व साधारण दोनों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य—२।।)

किशोररक्षा और ब्रह्मचर्य—किशोर बालकों को हस्तमैथुन रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने के लिए इस पुस्तक में सफल उपाय लिखा गया है। मूल्य—।३)

प्रकाशक :

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

प्रकाशित हो गया

आयुर्वेदीय क्रियाशारीर (सचित्र)

शरीर क्रिया-विज्ञान

का

संशोधित-परिवर्द्धित तीसरा संस्करण

रायल अठपेजी विलायती पेपर पर छपा है

लेखक : आयुर्वेद-जगत् के सुपरिचित श्री वैद्य रणजितराय, आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य,
उपाचार्य श्री ओच्छवलाल नाझर आयुर्वेद महाविद्यालय (सुरत)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रकाशित "शरीर-क्रियाविज्ञान" का देश में सर्वत्र ही समादर हुआ था और प्रायः समग्र भारत के आयुर्वेदिक कालंजों के पाठ्य-क्रम में यह पुस्तक नियत हो गयी थी। तेलगू भाषा में भी इसका अनुवाद हो गया था। इसी का फल हुआ कि ६ वर्ष में ही इसका तीसरा संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण निकालने के लिए प्रकाशकों को बाध्य होना पड़ा।

वैद्य रणजितरायजी की समन्वय प्रधान एवं उत्तरोत्तर विकसित होती हुई शैली हमारे पाठकों के लिए नयी नहीं है। "सचित्र आयुर्वेद" में उनके जो विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हो रहे हैं उन्हीं से अनुमान किया जा सकता है कि इस संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण का स्वरूप और महत्त्व कैसा होगा। श्रीयुत वैद्यजी ने लगभग चार वर्ष लगातार प्रयत्न करके यह संस्करण तैयार किया है।

पुस्तक को आयुर्वेद और पाश्चात्य क्रिया-शारीर दोनों की दृष्टि से संपूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। साथ ही विषय को व्यावहारिक रूप देने के लिए स्थान-स्थान पर उसका रोगों की परीक्षा तथा चिकित्सा के साथ संबंध दिखाया गया है। इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। गत संस्करणों से द्विगुणित पृष्ठ संख्या बढ़ने पर भी केवल लागत मात्र मूल्य-११) है।

प्राप्ति स्थान :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर :

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड द्वारा निमित्त

कूपीपक रसायन और पर्पटी

गुणवृद्धि के लिये हमारे यहाँ नियम है कि षड्गुणबलिजारित पारद से ही समस्त औषधें बनायी जाएँ। इसी नियमानुसार नीचे लिखे कूपीपक रसायन और पर्पटी षड्गुणबलिजारित पारद से ही बनायी गयी हैं। इस पर भी द्विगुण और षड्गुण शब्द जहाँ आये हैं, उनका तात्पर्य दूसरी बार का समझना चाहिये। इस क्रिया से निश्चय ही औषध की रोगनाशिनी शक्ति बढ़ जाती है। इसका उपयोग वैद्य की सलाह से करना उचित है।

चन्द्रोदय (अन्तर्धूम)—सन्निपात ज्वर में नाड़ी की गति के कमजोर हो जाने पर इसका प्रयोग किया जाता है। धातु-क्षीणता, मानसिक निर्वलता, नपुंसकता, हृदय की निर्वलता, जीर्ण-ज्वर, राजयक्ष्मा, श्वास, मन्दाग्नि, अपस्मार आदि रोगों में फायदेमन्द है। यह वाजीकरण रसायन है। कीमत—१ तोला ६०), चार आना भर १५-), दो आना भर ७।।-), एक आना भर ३।।।-)

चन्द्रोदय (बहिर्धूम)—उपरोक्त गुणों से कुछ ही कम गुण इसका भी है। कीमत—१ तोला ११), चार आना भर २।।।-), दो आना भर १।३), एक आना भर ।।।)

ताम्र सिन्दूर—इसके सेवन से कफ, खांसी और हृदय के रोगों में अच्छा फायदा होता है। कीमत—एक तोला ६।।।), चार आना भर १।।।), दो आना भर ।।।=)।।, एक आना भर ।३)।।।

ताल सिन्दूर—यह रक्तशोधक; कीटाणु-नाशक; कफ और कुष्ठ को दूर करने वाला है। कीमत—एक तोला ६।।।), चार आना भर १।।।), दो आना भर ।।।=)।।, एक आना भर ।३)।।।

पूर्ण चन्द्रोदय—चन्द्रोदय (बहिर्धूम) से किंचित् विशेष गुण युक्त। कीमत—१ तोला १७), चार आना भर ४।।-), दो आना भर २३), एक आना भर १=)

मकरध्वज—यह आयुर्वेद की सर्वश्रेष्ठ दवा है। एक ही मकरध्वज से अनेक रोग अच्छे किये जाते हैं। यह बल, वीर्य, कान्ति, शक्ति पुरुषार्थ आदि बढ़ाने की श्रेष्ठ दवा है। शीघ्र-पतन और नपुंसकता के लिये भी यह बहुत गुणकारी है। इससे शरीर में ताकत बहुत जल्द आती है। सन्निपात ज्वर में नाड़ी कमजोर हो जाने पर कस्तूरी के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। कीमत—१ तोला ८), चार आना भर २-), दो आना भर १-), एक आना भर ।।-), सात खुराक ।।।=), तीन खुराक ।।)

मकरध्वज षड्गुण बलिजारित—उपरोक्त गुणों से इसमें और विशेष गुण हैं। क्योंकि इसमें गन्धक छः गुना ज्यादा पड़ने से गुण और अधिक हो जाता है। कीमत—१ तोला ३२), चार आना भर ८-), दो आना भर ४-), एक आना भर २-), सात खुराक ३), दो खुराक १)

मकरध्वज (सिद्ध)—यह मकरध्वज विशेष संस्कृत पारद से बनाया जाता है, जिससे कि उपर्युक्त गुणों से विशेष गुणप्रद है। कीमत—१ तोला ५०), चार आना भर १२।।-), दो आना भर ६।।-), एक आना भर ३३)

मल्ल सिन्दूर—पक्षाघात, आमवात, धनु-ष्टंकार आदि वात-रोगों में इससे अच्छा लाभ होता है। दमे में इससे निश्चित लाभ होता है। कीमत—१ तोला ६।।।), चार आना भर १।।।), दो आना भर ।।।=)।।, एक आना भर ।३)।।।

रजत सिन्दूर—यह धातुदोषवर्त्य, मस्तिष्क एवं हृदय की निर्बलता, कमजोरी, आदि उपद्रवों को नष्ट करने की उत्तम दवा है। कीमत—१ तोला ६॥॥), चार आना भर १॥॥), दो आना भर ॥॥=)॥, एक आना भर ॥=)॥॥

रस सिन्दूर—कफ-प्रधान रोगों को यह शीघ्र नष्ट करता है। उरस्तोय, निमोनिया, सन्निपात, संग्रहणी, कास, दमा आदि रोगों को नष्ट कर बल-वीर्य बढ़ाता है। अनुपान-भेद से अनेक रोगों को नष्ट करता है। कीमत—१ तोला ४), चार आना भर १-), दो आना भर ॥-), एक आना भर ॥-)

व्याधिहरण रसायन—यह नये-पुराने उपदंश और उससे पैदा होनेवाले रक्तविकार, सन्धि-वात, गठिया, कुष्ठ, नासा एवं मुखव्रण, नाड़ीव्रण, चकते पड़ जाना, आदि उपद्रवों को नष्ट करने की उत्तम दवा है। कीमत—१ तोला ६॥॥), चार आना भर १॥॥=), दो आना भर ॥॥=), एक आना भर ॥=)॥॥

शिला सिन्दूर—इसके सेवन से चर्मरोग, रक्तविकार, फोड़े-फुन्सियाँ आदि अच्छे हो जाते हैं। ठण्ड लग कर आने वाला बुखार और शीतांग सन्निपात में भी इससे बहुत लाभ होता है। कीमत—एक तोला ६॥॥), चार आना भर १॥॥), दो आना भर ॥॥=)॥, एक आना भर ॥=)॥॥

समीरपन्नग रस—सन्धिक एवं शीतांग सन्निपात में नाड़ी क्षीण हो जाने पर इसकी २-३ मात्रा से ही आशातीत लाभ होता है। कीमत—१ तोला ८), चार आना भर २-), दो आना भर १-), एक आना भर ॥-)

स्वर्ण सिन्दूर—इसके सेवन से बल, वीर्य, स्मरण शक्ति और कान्ति बढ़ती है। साधारण ज्वर, सन्निपात ज्वर, खांसी, मन्दाग्नि और प्रमेह में बहुत लाभ करता है। कीमत—एक तोला ७॥॥), चार आना भर १॥॥=), दो आना भर १), एक आना भर ॥॥)

सुवर्ण भूपति रस—यह आमवात, उरस्तम्भ, कम्पवात, कमर का दर्द, गुल्म, शूल, संग्रहणी, प्रमेह, उदर-रोग, पथरी, कब्ज, विष विकार आदि

रोगों को दूर करता है। कीमत—एक तोला ५०), चार आना भर १२॥॥-), दो आना भर ६॥॥-), एक आना भर ३=)

सुवर्ण समीर पन्नग रस—समस्त वात-रोगों के लिये श्रेष्ठ दवा। कीमत—१ तोला २४), चार आना भर ६-), दो आना भर ३-), एक आना भर १॥॥-)

सुवर्णराज वंगेश्वर (स्वर्णवंग)—धातु-क्षीणता से पैदा हुई नपुंसकता में लाभ करता है। पेशाब के साथ वीर्य जाने में शीघ्र गुणकारी है प्रमेह एवं सुजाक आदि कीटाणु-जनित रोगों से पैदा हुए वीर्य-दोष दूर करने में प्रसिद्ध है। कीमत—१ तोला ५), चार आना भर १॥॥-), दो आना भर ॥॥=), एक आना भर ॥=)

पर्पटी

पंचामृतपर्पटी—संग्रहणी रोग की प्रसिद्ध महौषध है। अतिसार, पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, शूल और दमा में भी बहुत फायदा करती है। कीमत—१ तोला ४), आठ आना भर २-), चार आना भर १-), दो आना भर ॥-)

विजयपर्पटी—कष्टसाध्य ग्रहणी, अतिसार यक्ष्मा, विषमज्वर, पाण्डु, तिल्ली, जलोदर, शोथ, परिणामशूल, अम्लपित्त, हृद्रोग की उत्कृष्ट दवा। कीमत—१ तोला २८), आठ आना भर १४-), चार आना भर ७-), दो आना भर ३॥॥-)

बोलपर्पटी—रक्तप्रदर, रक्तपित्त, खूनी-बवासीर और सब प्रकार के गिरते हुये खून को बन्द करने के लिये इसका प्रयोग बहुत फायदेमन्द है। कीमत—१ तोला २॥॥), आठ आना भर १॥॥-), चार आना भर ॥॥=), दो आना भर ॥=)

रस पर्पटी—मन्दाग्नि, संग्रहणी, खून की कमी एवं अम्लपित्त में लाभदायक। कीमत—१ तोला ३), आठ आना भर १॥॥-), चार आना भर ॥॥=), दो आना भर ॥=)

सुवर्ण पर्पटी—संस्कारकृत पारा से बनायी गयी है। ठीक विधान से उपयोग किया जाय तो १० सेर दूध रोजाना हजम करती है। क्षय, संग्रहणी, मन्दाग्नि, पाण्डु रोग आदि की सर्वश्रेष्ठ महौषध है। कीमत—१ तोला २४॥॥), आठ आना भर १२॥॥-), चार आना भर ६=), दो आना भर ३=)

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के विक्री केन्द्रों के लिये वैद्यों की आवश्यकता

१. आयुर्वेदाचार्य पास वैद्य को प्रथम दो मास की ट्रेनिंग काल में ६०) साठ रुपया मासिक वेतन मिलेगा। असफल होने पर वापिस लौटा दिया जावेगा। सफल होने पर तथा ३२ २१ ३२ व्यापारिक योग्यता और अनुभव ठीक होने पर प्रारम्भ में १००) सौ रुपया मासिक नहीं तो प्रारम्भ में ८०) अस्सी रुपया मासिक वेतन मिलेगा। कार्य सुचारु होने पर साल भर बाद तरक्की होगी और उन्हें विक्री केन्द्र का अध्यक्ष बनाया जा सकेगा। साल भर काम करने पर एक मास का सवैतनिक अवकाश मिलेगा। रहने का मकान प्रायः विक्री केन्द्र की तरफ से ही दिया जाता है।
२. आयुर्वेद विशारद को प्रथम दो मास की ट्रेनिंग में ५०) पचास रुपया मासिक मिलेगा। सफल होने पर नियुक्ति होगी। व्यापारिक योग्यता तथा अनुभव होने पर ७०) सत्तर रुपया मासिक नहीं तो प्रारम्भ में ६०) साठ रुपया मासिक मिलेगा। उत्तम कार्य होने पर साल भर बाद तरक्की और एक साल बाद एक मास का सवैतनिक अवकाश मिलेगा। सहायक के स्थान पर कार्य करना होगा। प्राचीन होने पर तथा निरन्तर उत्तम कार्य होने पर अध्यक्ष का पद भी मिल सकेगा।
३. वैद्य को पीयूषपाणि होने के साथ-साथ रोगी या ग्राहक को समझाने में कुशल होना आवश्यक है।
४. व्यापारी बुद्धि हो, आलस्य न हो, रेलवे से माल छुड़ाना, चुंगी भरना, वापिसी चुंगी लेना, अदालती काम करना, व्यापारियों को एजेन्ट बनाना, वैद्यों को सदस्य बनाना, स्थानीय विज्ञापन-प्रचारादि करना आदि काम करना होगा।
५. रोकड़ वही, खाता, स्टॉक रजिस्टर आदि लिखने में निपुण, वीजक, कैशमेमो बनाने में पटु होना चाहिये।
६. दुकान पर एक साथ ३-४ घंटे तक जमकर बैठने का अभ्यास होना, सदाचारी और निर्व्यसनी होना आदि गुण होना चाहिये। ईमानदार, सच्चे और परिश्रमी होना आवश्यक है।
७. उम्र २५ वर्ष से ऊपर हो। परीक्षा पास करने के बाद कम से कम ३ साल कार्य करने का अनुभव हो।
८. २००) २०० की नकद जमानत और उत्तरदायित्व पूर्वक कार्य करने के बाबत दो प्रतिष्ठित सज्जनों की लिखित जमानत दिलानी होगी।
९. साल भर में एक मास की छुट्टी में घर जाने के अतिरिक्त अनावश्यक छुट्टी न ल।
१०. विक्री केन्द्र के अवतक के सभी नियमों तथा भविष्य में बनने वाले सभी नियमों को मानना होगा।
११. जो उत्तरदायित्व सौंपा जावेगा उसे पूर्ण जिम्मेवारी के साथ निभाना आवश्यक होगा।

पत्र व्यवहार का पता :—वैद्य रामनारायण शर्मा

मैनेजिंग डायरेक्टर :—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

गुसाईपुरा, झाँसी (यू० पी०)



बैद्यनाथ अशोकारिष्ट

मासिक धर्म की अनियमितता, रक्त और श्वेत प्रदर
तथा इनके कारण होनेवाले कमर, पेड़, पेट और सिर के दर्द,
आँख और तलवों की जलन आदि कष्ट को दूर करने के लिए
परीक्षित शास्त्रीय महोपधि है। इसके सेवन से गर्भाशय की शुद्धि होती
है और स्त्रियाँ स्वस्थ-सुन्दर सन्तान की जननी बनती हैं। हजारों
महिलाओं के अनुभव - वृत्तान्त तथा प्रशंसा-पत्र हमारे
कार्यालय में मौजूद हैं। बैद्यनाथ अशोकारिष्ट आयुर्वेदोक्त
श्रेष्ठ औषधियों के संयोग से तैयार
होता है। अतः यह अपने कार्य में
कभी असफल नहीं होता।

बैद्यनाथ अशोकारिष्ट

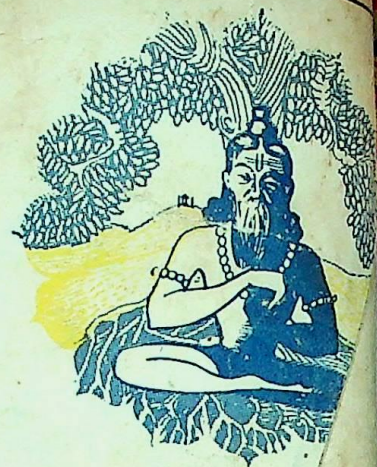
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०



कलकत्ता-पटना-भाँसो-नागपुर

प्रकाशक पण्डित रामनारायण शर्मा (१, गुप्ता लेन, कलकत्ता) के लिए जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता में मुद्रित।

वृद्ध महर्षि का का या क ल्प



हमारे महर्षियों ने हमें केवल स्वानुभूत ज्ञान अपार निधि ही नहीं दी है, बल्कि जन-याणकारी ऐसी अनेक औषधियों के आविर्भाव भी किये हैं, जो इस वैज्ञानिक युग में अपने गुणों के कारण हमारे लिये अद्वितीय हैं। च्यवनप्राश अश्विनी कुमारों के द्वारा आविष्कृत एक ऐसी औषधि है, जिससे उन्होंने च्यवन ऋषि का वार्धक्य दूर किया था। आज भी इस महौषधि से फेफड़े के विकार, पुराना शास-कास आदि रोग दूर होकर शरीर पुष्ट और बलवान होता है और गई जवानी वापस मिलती है।

श्री वैद्यनाथ-च्यवनप्राश अष्टवर्ग युक्त होने के कारण और भी अधिक उपयोगी और शक्तिशाली लाभ करनेवाला है। ताजे आवलों के द्वारा शास्त्रीय ढंग से तैय्यार करने की हमारी गारन्टी है।



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : भाँसी : नागपुर





सचिन्न आयुर्वेद

पर्व ५]

कलकत्ता, अप्रैल, १९५३

[अंक-१०]



संस्कृत-पंजाबी
शब्द-कोश

राष्ट्रीय स्वास्थ्य

स्वास्थ्य की उन्नति, रक्षा और पुनर्निर्माण की गणना समाज के महान धर्मों में है। प्रकार और महत्त्व की दृष्टि से यह उसी श्रेणी में है जिसमें कि देशरक्षा, शिक्षा, सामग्री रक्षा, यातायात और उद्योग हैं। आज यह सब एक राष्ट्र के सुसंगठित जीवनक्रम के लिए ही नहीं किन्तु जीवित रहने तक के लिए आवश्यक हैं। अतएव राष्ट्र का स्वास्थ्य इस राष्ट्र की सरकार का सीधा उत्तरदायित्व बन गया है। परन्तु सरकार का स्वास्थ्य संबंधी क्रिया से जो संबंध होगा वह निर्भर होगा उस राष्ट्र की प्रकृति के ऊपर। किसी भी राष्ट्र का स्वास्थ्य या चिकित्सा संगठन निर्माण करते समय उस संगठन की सामान्य उपयुक्तता को देख लेना ही पर्याप्त नहीं बल्कि यह ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि वह संगठन उस देश-विशेष के लिए विशिष्ट रूप से उपयुक्त हो जिसमें व्यवहृत करने के लिए वह बनाया गया है। स्वास्थ्यप्रद भावों के संगठन के आदर्श जो एक राष्ट्र या राज्य के लिए उपयुक्त है का दूसरे राज्य या राष्ट्र के लिए हितकर होना आवश्यक नहीं।—

—J. A. Means M. D. (1953)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि:

प्रकाशित हो गया आयुर्वेदोय क्रियाशारीर (सचित्र)

शरीर क्रिया-विज्ञान

का

संशोधित-परिवर्द्धित तीसरा संस्करण

रायल अठपेजी विलायती पेपर पर छपा है

लेखक : आयुर्वेद-जगत् के सुपरिचित श्री वैद्य रणजितराय, आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य,
उपाचार्य श्री ओच्छवलाल नाझर आयुर्वेद महाविद्यालय (सूरत)

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा प्रकाशित “शरीर-क्रियाविज्ञान” का देश में सर्वत्र ही समादर हुआ था और प्रायः समग्र भारत के आयुर्वेदिक कालेजों के पाठ्य-क्रम में यह पुस्तक नियत हो गयी थी। तेलगू भाषा में भी इसका अनुवाद हो गया था। इसी का फल हुआ कि ६ वर्ष में ही इसका तीसरा संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण निकालने के लिए प्रकाशकों को बाध्य होना पड़ा।

वैद्य रणजितरायजी की समन्वय प्रधान एवं उत्तरोत्तर विकसित होती हुई शैली हमारे पाठकों के लिए नयी नहीं है। “सचित्र आयुर्वेद” में उनके जो विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हो रहे हैं उन्हीं से अनुमान किया जा सकता है कि इस संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण का स्वरूप और महत्त्व कैसा होगा। श्रीयुत वैद्यजी ने लगभग चार वर्ष लगातार प्रयत्न करके यह संस्करण तैयार किया है।

पुस्तक को आयुर्वेद और पाश्चात्य क्रिया-शारीर दोनों की दृष्टि से संपूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। साथ ही विषय को व्यावहारिक रूप देने के लिए स्थान-स्थान पर उसका रोगों की परीक्षा तथा चिकित्सा के साथ संबंध दिखाया गया है। इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। गत संस्करणों से द्विगुणित पृष्ठ संख्या बढ़ने पर भी केवल लागत मात्र मूल्य-११) है।

प्राप्ति स्थान :

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर :

आवेदन-पत्र

—:○:—

श्रीयुत व्यवस्थापक 'सचित्र आयुर्वेद'

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

नं० १, गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू),

पो० ब० ६८३५, कलकत्ता ।

भारत सरकार,
वैद्यनाथ भवन

प्रिय महाशय,

मैं 'सचित्र आयुर्वेद' के छठे वर्ष का ग्राहक बनना चाहता हूँ। इसके वार्षिक मूल्यके लिए चार रुपये मनिआर्डर से भेज रहा हूँ। आप नीचे लिखे पते पर $\frac{\text{रजि० डाक}}{\text{बी० पी० *}}$ से 'सचित्र आयुर्वेद' भेज दीजिए। मेरा गत वर्ष का ग्रा० नं० है।

हस्ताक्षर—

श्री (पूरा पता)

मुकाम

पो०

जि०

ॐ मनिआर्डर द्वारा पेशगी न भेजकर बी० पी० से 'सचित्र आयुर्वेद' मँगानेपर ।(३) डाक खर्च अधिक लग जायगा। यदि मनिआर्डर से मँगाएँ तो 'बी० पी०' को काट दें और यदि बी० पी० से मँगाएँ तो 'रजि० डाक' शब्द काट दें।

आवेदन-पत्र

—:○:—

श्रीयुत व्यवस्थापक 'सचित्र आयुर्वेद'

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

नं० १, गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू),

पो० ब० ६८३५, कलकत्ता ।

प्रिय महाशय,

मैं 'सचित्र आयुर्वेद' के छठे वर्ष का ग्राहक बनना चाहता हूँ। इसके वार्षिक मूल्य के लिए चार रुपये मनिआर्डर से भेज रहा हूँ। आप नीचे लिखे पते पर $\frac{\text{रजि० डाक}}{\text{बी० पी० *}}$ से 'सचित्र आयुर्वेद' भेज दीजिए। मेरा गत वर्ष का ग्रा० नं० है।

हस्ताक्षर—

श्री (पूरा पता)

मुकाम

जि०

ॐ मनिआर्डर द्वारा पेशगी न भेजकर बी० पी० से 'सचित्र आयुर्वेद' मँगानेपर ।(३) डाक खर्च अधिक लग जायगा। यदि मनिआर्डर से मँगाएँ तो 'बी० पी०' को काट दें और यदि बी० पी० से मँगाएँ तो 'रजि० डाक' शब्द को काट दें।

BOOK POST

॥ पैसेका
टिकट छापाइए

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
पोस्ट बक्स नं० ६८३५
कलकत्ता

BOOK POST

॥ पैसेका
टिकट छापाइए

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
पोस्ट बक्स नं० ६८३५
कलकत्ता

बहुमूल्य शुभ सम्मति

ता० ७-३-५३ को श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के झांसी निर्माण केन्द्र में आयुर्वेद जगत् के सुप्रसिद्ध निम्नलिखित दो महारथियों का शुभागमन हुआ था, आपलोगों ने भवन की औषध-निर्माणादि व्यवस्था देखकर जो बहुमूल्य शुभसम्मति प्रकट की, उसकी प्रतिलिपि नीचे प्रकाशित है।

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंहजी डी० एस० सी० प्रिन्सिपल राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालज इन्दौर भूतपूर्व डायरेक्टर आफ आयुर्वेद राजस्थान सरकार तथा मध्यभारत के सुप्रसिद्ध वैद्यराज पं० ख्यालीरामजी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य की शुभ सम्मति :

आज श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड का निरीक्षण कर परम प्रसन्नता हुई। भारत के प्रमुख स्थानों में वृहत् रूप में औषध निर्माण की व्यवस्था कर इस संस्था ने आयुर्वेद के विकास और प्रचार का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध किया है। वैद्य पं० रामनारायणजी ने केवल औषधि-निर्माण-कुशलता में ही ख्याति प्राप्त नहीं की है बल्कि आपने आयुर्वेद-साहित्य का प्रचार और आयुर्वेद की ठोस सेवा की है। हम आशा करते हैं कि आप आयुर्वेद की मौलिकता को सदा दृष्टि में रखकर उत्तमोत्तम आयुर्वेदिक विशुद्ध औषधियों का प्रचार करेंगे और सदा आयुर्वेद के गौरव को अक्षुण्ण रखकर अपने अध्यवसाय का उपयोग करेंगे।

झांसी

७।३।५३

हस्ताक्षर—वैद्यरत्न कवि० डा० प्रतापसिंह डी० एस० सी०

हस्ताक्षर—वैद्य ख्यालीराम द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य

सचित्र आयुर्वेद में विज्ञापन

“सचित्र आयुर्वेद” में जब से बाहर के विज्ञापन लेने की घोषणा इसके संचालकों द्वारा की गयी है, तब से अनेक विज्ञापनदाताओं के पत्र विज्ञापन मूल्य तथा नियमादि जानने के लिए आ रहे हैं। यहाँ उनकी जानकारी के लिए नीचे विज्ञापन मूल्य तथा संक्षिप्त नियमादि दिए जाते हैं।

विज्ञापन-मूल्य तालिका

साधारण १ पेज (१५०), ३/४ पेज (८०), १/२ पेज (४५), प्रतिवार के लिए निश्चित किया गया है।

विज्ञापन भेजने से पूर्व

“सचित्र आयुर्वेद” में विज्ञापन भेजने से पूर्व निम्न बातों पर अवश्य ध्यान रख। (१) सचित्र आयुर्वेद में अश्लील और बोगस (भ्रमात्मक) विज्ञापन नहीं छपेगा। (२) विज्ञापन का मेटर देखने के बाद ही छापने की स्वीकृति दी जायगी। (३) बगैर पेशगी आये विज्ञापन नहीं छपेगा। (४) उपरोक्त विज्ञापन मूल्य साधारण पेज का है। (५) कभर पर तथा रिडिंग मेटर के साथ बाहर के विज्ञापन नहीं छपेंगे। विशेष नियमादि जानने के लिए सचित्र आयुर्वेद-विज्ञापन विभाग, नं० १ गुमालेन—कलकत्ता को लिखें।

लौह और मण्डूर भस्म द्वारा निमित्त वयनाथ की कुछ

सुप्रसिद्ध शास्त्रीय दवाएँ

आयुर्वेद-शास्त्र में लौह-मिश्रित दवाओं का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि लौह भस्म से बनी हुई दवा खून और अग्नि की वृद्धि में अद्वितीय होती हैं। नीचे कुछ ऐसी अद्भुत चमत्कारी गुणयुक्त लौह भस्म और मण्डूर भस्म सम्मिश्रित शास्त्रीय दवाओं का उल्लेख किया जाता है जिनका प्रयोग हजारों रोगियों पर सफलता पूर्वक हो चुका है।

अग्निमुख लौह—बादी ववासीर, पांडु, सूजन, तिल्ली बढ़ जाना, आमवात और मन्दाग्नि में बहुत लाभदायक है। कीमत—१ तोला २।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ॥=)॥

अष्टादशाङ्ग लौह—पांडु, कामला आदि में विशेष उपयोगी है। कीमत—एक तोला १।), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

अम्लपित्तान्तक लौह—अम्लपित्त, पित्तजन्य शूल, यकृत शूल, पेशाब की जलन और पेट-दर्द में लाभदायक है। कीमत—१ तोला २।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ॥=)॥

कार्श्यहर लौह—शरीर को मोटा करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ॥=)॥

कालमेघनवायस—जीर्ण ज्वर और मलेरिया ज्वर के बाद की कमजोरी, पाण्डु और यकृत प्लीहा-वृद्धि को नष्ट करता है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)॥

गुडूच्यादि लौह—वात-रक्त की सर्वोत्तम दवा है। कीमत—१ तोला ॥=), आठ आना भर ॥=)॥, चार आना भर ॥=)॥

चन्दनादि लौह—जीर्ण ज्वर और मन्द ज्वर की शतशः अनुभूत औषध है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)॥

चन्द्रामृत लौह—सब प्रकार की खाँसी की प्रसिद्ध दवा। कीमत—१ तोला १।), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

तारा मण्डूर—भोजन पचने के समय जोरों से दर्द होना, पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि, शोथ, ग्रहणी, गुल्म आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। कीमत—१ तोला ॥=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)॥

ताप्यादि लौह—पांडु, ज्वर, क्षय, हृदय की दुर्बलता, भोजन के बाद पेट फूलना, मासिक धर्म की गड़बड़ी, प्रदर आदि में फायदेमन्द है। कीमत—एक तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

त्रिफला मण्डूर—इसके सेवन से पांडु, कामला और कब्जियत आदि पेट-सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। कीमत—एक तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

धात्री लौह—अम्लपित्त रोग की सुप्रसिद्ध महौषध है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)॥

नवायस लौह—रक्ताल्पता (Anaemia) की खास दवा है। यकृत और बाल रोगों में विशेष लाभदायक है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

नवायस मण्डूर—खून बढ़ाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। कीमत—१ तोला १।), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)

प्रदरान्तक लौह—इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रदर-रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ॥=), चार आना भर ॥=)॥

पिप्पल्यादि लौह—खाँसी, श्वास, हिकका और वमन, दाह, प्यास आदि की सर्वोत्कृष्ट दवा है। कीमत—एक तोला २=), आठ आना भर १=), चार आना भर ॥१=)॥

पुनर्नवादि मण्डूर—शोथ-रोग (सूजन) की सबसे श्रेष्ठ दवा है। कीमत—१ तोला १॥१), आठ आना भर ॥१=), चार आना भर ॥३=)

मण्डूर—वटक—कामला, पाण्डु, शोथ, और उदर-विकारों में विशेष लाभदायक है। कीमत—१ तोला ॥१), आठ आना भर ॥३=), चार आना भर ॥१=)

यकृत प्लीहादि लौह—जिगर और तिल्ली के विकारों में विशेष लाभकारी है। कीमत—१ तोला ३॥१=), आठ आना भर १॥१=), चार आना भर ॥३=)॥

यकृतदि लौह—जिगर (Liver) के विकारों में विशेष लाभदायक है। कीमत—१ तोला १॥१), आठ आना भर ॥३=), चार आना भर ॥१=)

यक्ष्मारि लौह—राजयक्ष्मा रोग की प्रसिद्ध दवा है। कीमत—एक तोला ३), आठ आना भर १॥१=), चार आना भर ॥१=)

रक्तपित्तान्तक लौह—यह रक्त की गर्मी को शान्त करके मुख, गुदा, नाक आदि से बहने वाले रक्त को रोक कर कमजोरी दूर करता है। कीमत—एक तोला २॥१=), आठ आना भर १॥१), चार आना भर ॥१=)॥

रोहितक लौह—बढ़ी हुई तिल्ली, लीवर, पाण्डुरोग, शोथ और जीर्ण-ज्वर में अच्छा फायदा करता है। इसके सेवन से खून भी बढ़ता है। कीमत—१ तोला १॥१), आठ आना भर ॥१=), चार आना भर ॥३=)

वरुणाद्य लौह—मुजाक, पथरी मूत्रकृच्छ्र आदि में विशेष उपयोगी है। कीमत—१ तोला १), आठ आना भर ॥१=), चार आना भर ॥१=)

विडङ्गादि लौह—इसके सेवन से पेट की कृमि, अर्श, अरुचि, मन्दाग्नि रोग नाश होते हैं। कीमत—एक तोला ॥१=), आठ आना भर ॥३=)॥ चार आना भर ॥१=)॥

विषमज्वरान्तक लौह (पुटपक्व)—मलेरिया, कालाज्वर आदि कठिन ज्वर में विशेष लाभदायक है। कीमत—१ तोला २०), चार आना भर ५=), दो आना भर २॥१=), एक आना भर १॥१=)

सप्तामृत लौह—सम्पूर्ण नेत्र-रोगों में लाभ करता है। कीमत—१ तोला १॥१), आठ आना भर ॥३=), चार आना भर ॥१=)

सर्वज्वरहर लौह (बृहत्)—यह सब प्रकार के ज्वरों की अच्छी दवा है। खास करके जीर्णज्वर और रक्ताल्पता में बहुत फायदेमन्द है। कीमत—एक तोला ३२), चार आना भर ८=), दो आना भर ४=), एक आना भर २=)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर ।

ग्रीष्म ऋतु में सेवनीय सुप्रसिद्ध तीन दवाएँ

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गरमी से कफ का क्षय होता है जिससे रुक्षता और उष्णता के कारण वायु का संचय होने लगता है। वायु के प्रकोप से इस ऋतु में मन्दाग्नि, अपच, शोथ, शिथिलता, दाह, तृषा और मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं तथा हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ फैलती हैं। परन्तु निम्नलिखित दवाओं की एक-एक शीशी अपने घर में रख कर आप इन उपद्रवों से निश्चिन्त हो सकते हैं।

हैजा प्रारम्भ होते ही

वैद्यनाथ अर्क कपूर—वैद्यनाथ अर्क कपूर पिलाने से १०० में ६० रोगी अच्छे होते हैं। दस्त और के थोड़ी देर में बन्द हो जाते हैं, ऐंठन मिट जाती है, प्यास कम हो जाती है और हाथ-पैर में गर्मी आकर रोगी को नींद आ जाती है। हैजे के दिनों में २ बूंद “वैद्यनाथ अर्क कपूर” सेवन करने से हैजा होने का भय नहीं रहता। कीमत आधा आँस ॥१॥, चौथाई आँस ॥३॥

वैद्यनाथ अर्क पुदीना (सब्ज)—पुदीने की ताजी हरी पत्तियों का सार है। पेट फूलना, खट्टी डकार आना, अजीर्ण, जी मचलाना, भूख कम लगना, पेट दर्द आदि बादी के लक्षण इससे शीघ्र मिटते हैं। बच्चों के तमाम रोगों में अमृत के समान लाभदायक है। कीमत—१ आँस १), आधा आँस ॥१॥, चौथाई आँस ॥१॥

वैद्यनाथ अमरधारा—को पास रखकर आप रोगी की तरफ से निश्चिन्त हो जाइये। यह प्रायः सभी रोगों में तात्काल लाभ दिखलानेवाली दवा है। खाने और लगाने दोनों में तत्काल फायदा करती है। बुखार, खाँसी, दमा, हिचकी, कै, दस्त, हैजा, बदहजमी, पेटदर्द, अरुचि, सर्दी, जुकाम, निमोनिया, संग्रहणी आदि किसी भी प्रकार का रोग हो, दवा खिलाते ही लाभ होता है। चोट, मोच, जलना, कटना, वायु का दर्द आदि में लगाने से लाभ होता है। इसकी एक शीशी घर में रखना एक वैद्य या डाक्टर के बराबर काम देता है। कीमत—१ ड्राम की शीशी ॥१॥

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर ।

ग्रीष्म ऋतु के उपद्रव शान्त रखने के लिए बैद्यनाथ शर्वत और अर्क व्यवहार करें

क्योंकि—

- (१) ये गुणकारी और असली होते हैं ।
- (२) इनमें एसेन्स आदि कोई दूषित पदार्थ नहीं डाले जाते ।
- (३) ये बहुत समय तक रखने पर भी बिगड़ते नहीं ।

बैद्यनाथ केवड़ा शर्वत—सिर-दर्द और तरावट आदि के लिये उत्तम है । कीमत—चौबीस
अंश २॥)

बैद्यनाथ खस शर्वत—ग्रीष्मऋतु के उपद्रवों को शान्त रखता है ; पित्तशामक और तर है ।
कीमत—चौबीस अंश २॥)

बैद्यनाथ गुलाब शर्वत—बढ़िया गुलाबजल से बनाया गया है ; गर्मी के मौसम में रोज पीने
योग्य है । कीमत—चौबीस अंश २॥)

बैद्यनाथ गुलबनप्ता शर्वत—सर्दी, जुकाम, खांसी आदि में फायदेमन्द है । दवाओं के अनुपान
में भी काम आता है । कीमत—चौबीस अंश २॥)

बैद्यनाथ चन्दन शर्वत—कलेजे की गर्मी, पेशाब की जलन, दाह आदि की शान्ति तथा दिमाग
की तरावट के लिये अक्सीर है । कीमत—चौबीस अंश २॥)

बैद्यनाथ अजवायन अर्क—मन्दाग्नि और वायु-विकार आदि के लिये श्रेष्ठ है । कीमत—
चौबीस अंश १॥), आठ अंश ॥=)

बैद्यनाथ गोरखमुंडी अर्क—खून साफ करके फोड़ा-फुत्सी ठीक करने के लिये उत्तम है ।
कीमत—चौबीस अंश १॥), आठ अंश ॥=)

बैद्यनाथ दशमूल अर्क—प्रसूत-ज्वर एवं सब प्रकार के वात-रोगों के लिये प्रसिद्ध है । कीमत—
चौबीस अंश १॥), आठ अंश ॥=)

बैद्यनाथ महासुदर्शन अर्क—सब तरह के बुखारों में अक्सीर है । कीमत—चौबीस अंश
२), आठ अंश ॥=)

बैद्यनाथ सौंफ अर्क—आँव-पेचिस आदि में महोपकारी है । कीमत—चौबीस अंश १॥),
आठ अंश ॥=)

बैद्यनाथ जामुन का सिरका—मधुमेह और भयंकर पेट-दर्द में लाभदायक । कीमत—
४ अंश ॥=)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर ।

वैद्यनाथ सुगन्धित केश-तैल

सिर में लगानेवाले तैल से सिर्फ बालों का ही सम्बन्ध नहीं है। खराब बाजारू सुगन्धित तैल लगाने से बाल तो असमय में पक ही जाते हैं, साथ ही मस्तिक के ऊपर भी उसका बहुत बुरा असर पड़ता है। इसलिए उत्तम तैलों का ही व्यवहार करना चाहिये। हमारे तैल ऊंचे दर्जे के हैं। हमारे किसी भी तैल में हानिकारक दुर्गन्ध किरासन तैल आदि साबित करनेवाले को ५००) रुपये इनाम दिये जायेंगे।

आंवला केश तैल—नित्य व्यवहार से बाल रेशम की तरह मुलायम और भौरे की तरह काले हो जाते हैं। सुगन्ध २४ घण्टे तक स्थायी रहती है। दिमाग ठण्डा रहता है। कीमत—चार औंस १॥)

आमला तैल—यह बहुत ही उत्तम सुगन्ध युक्त तैल है। फायदेमन्द भी पूरा है। कीमत—एक पौंड ३॥), दस औंस २॥), छः औंस १॥)

आमला तैल नं० १०००—सुगन्ध में कम है, लेकिन गुणों में बहुत अच्छा है। कीमत—एक पौंड ३), दस औंस २=), छः औंस १=)

कामनीविलास तैल—इस महासुगन्धित तैल को इत्र ही समझिये। यह सुगन्धित तैलों का राजा है। कीमत;—दो औंस १=)

गुलरोगन—कीमत—एक पौंड ५॥), दस औंस ३॥=), छः औंस २॥)

चमेली का तैल—कीमत—१ पौंड ५), दस औंस ३॥=), छः औंस २=)

बेला का तैल—कीमत—एक पौंड ५), दस औंस ३॥=), छः औंस २=)

ब्राह्मी तैल—(औषध-सिद्ध)—उत्तम ब्राह्मी से बनाया गया है। यह बुद्धि बढ़ाता, दिमाग की कमजोरी हटाता और मधुर सुगन्ध-युक्त है। कीमत—चार औंस १=), दो औंस ॥=)

ब्राह्मी तैल—(औषध सिद्ध एवं सुगन्धित)—कीमत ४ औंस १॥=), २ औंस ॥॥=)

ब्राह्मी आमला तैल—यह तैल ब्राह्मी और आंवले के स्वरस से तैयार किया गया है। माथे को ठण्डा रखने एवं बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढ़ाने में अतुलनीय है। कीमत—एक पौंड ४॥=), दस औंस ३), छः औंस १॥॥=)

हिमानी कल्याण तैल—तैल लगाते ही बर्फ के जैसी ठण्डक मालूम होती है। सिर दर्द को ५ मिनट में अच्छा करता है। बहुत ही उत्तम और तेज सुगन्ध भी है। कीमत—दो औंस १॥), एक औंस ॥॥)

गुलरोगन, चमेली और बेला तैल—उपर्युक्त तीनों तैल गुलाब, चमेली और बेला के ताजे फूलों से तिल को सुवासित कर तैयार किये जाते हैं। इनमें सेण्ट नहीं डाले जाते। विषुद्धता की पूरी गारण्टी है।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर ।

सचित्र आयुर्वेद के प्रेमी ग्राहकों से

“सचित्र आयुर्वेद” के पंचमवर्ष का दसवाँ अंक अपने आदरणीय ग्राहकों-अनुग्राहकों और आयुर्वेद-प्रेमी वाचकों के पास भेजते हुए प्रसन्नता हो रही है। आगामी दो अंकों (मई-जून १९५३) के बाद आपका “सचित्र आयुर्वेद” नवीन (छठे) वर्ष में पदार्पण करेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि अबतक जिस प्रकार आयुर्वेद प्रेमी जनता, सरकार तथा वैद्य समाज का अधिकाधिक सहयोग मिलता रहा है। वह हम भविष्य में भी इसी क्रम से प्राप्त करते रहेंगे।

विगत पाँचवर्षों में “सचित्र आयुर्वेद” ने आयुर्वेद-जगत् की जो सेवा की है, वह आप-लोगों से अविदित नहीं है, कहना न होगा कि आज आयुर्वेद की जो कुछ प्रगति दीख रही है। “सचित्र आयुर्वेद” ने उसमें सर्वाधिक भाग लेकर अपनी ऐकान्तिक सेवा का परिचय दिया है। यही कारण है कि आज समस्त भारत में प्रकाशित होनेवाले आयुर्वेदीय पत्रों में “सचित्र आयुर्वेद” के ग्राहक अधिक हैं। राष्ट्रपति से लेकर सुप्रसिद्ध आयुर्वेद के विद्वान वैद्य तथा आयुर्वेद-प्रेमी साधारण जनता तक का सहयोग इसे प्राप्त है; क्योंकि इसमें प्रकाशित साहित्य-वैज्ञानिक, ठोस तथा सर्वसाधारणोपयोगी होते हैं। इसके विगत विज्ञेयों “स्वास्थ्य-अंक” ने तो आयुर्वेद-जगत् में धूम मचा दी। “स्वास्थ्य-अंक” की उत्तमता पर रीझकर ही उत्तर प्रान्तीय सरकार ने ५०० प्रतियाँ खरीद कर अपने औषधालयों में वितरित कर आयुर्वेद की महानता को सम्मानित किया। अन्य कई प्रान्तीय सरकारों द्वारा “सचित्र आयुर्वेद” की अपनी शिक्षण संस्थाओं में स्वीकृत करने की शान्त्वना भी मिली है।

छठे वर्ष की विशेषता

आगामी जुलाई १९५३ से “सचित्र आयुर्वेद” का नवीन (छठा) वर्ष प्रारम्भ होगा। छठे वर्ष में आपको कई विशेषताएँ देखने-पढ़ने को मिलेंगी। सर्वप्रथम तो आपको नि० भा० आ० शास्त्र-चर्चा परिषद्; जो २० मई १९५३ से हरद्वार में हो रही है; जिसमें समस्त भारत के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद, दर्शन, न्याय, सांख्य तथा अन्य शास्त्रों के आचार्यगण एकत्र होंगे; उनसे द्वारा निर्णयात्मक गवेषणा पूर्ण विचार-विवरण (रिपोर्ट) सचित्र आयुर्वेद में आपको मुफ्त पढ़ने के लिए दिया जायेगा। जो आपकी ज्ञान वृद्धि के लिए बहुत उपयोगी होगा, परन्तु ध्यान रहे यह पुस्तक सिर्फ सचित्र आयुर्वेद के ग्राहक मात्र को ही दिया जायेगा। अतः जिन ग्राहकों का चन्दा आगामी जून में पूरा हो जाता है, वे ग्राहक महानुभाव पंचम वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही अपना चन्दा ४) कार्यालय में अवश्य भेज दें।

आवश्यक निवेदन

जिन ग्राहकों का चन्दा आगामी जून, १९५३ में पूरा हो जाता है वे इस अंक में अन्यत्र लगे आवेदन-पत्र द्वारा नवीन (षष्ठ) वर्ष में ग्राहक बने रहने तथा वार्षिक शुल्क भेजने की सूचना दें, साथ ही दो-दो नवीन ग्राहक बनाकर इस आवेदन-पत्र द्वारा सूचित करने का उनसे अनुरोध है।

आशा है, सहृदय ग्राहक नवीन (षष्ठ) वर्ष के लिए अपना तथा अपने बनाए नवीन दोनों ग्राहकों का वार्षिक शुल्क कार्यालय को भेजते हुए अपनी तथा उनकी सेवा करने का सुयोग प्रदान करेंगे।

— व्यवस्थापक

सम्पादक-मण्डल

निर्देशक—आ० म० म० पं० भागीरथ स्वामी, रसायनाचार्य
 प्रधान सम्पादक—पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री
 सहायक सम्पादक—वैद्य सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री

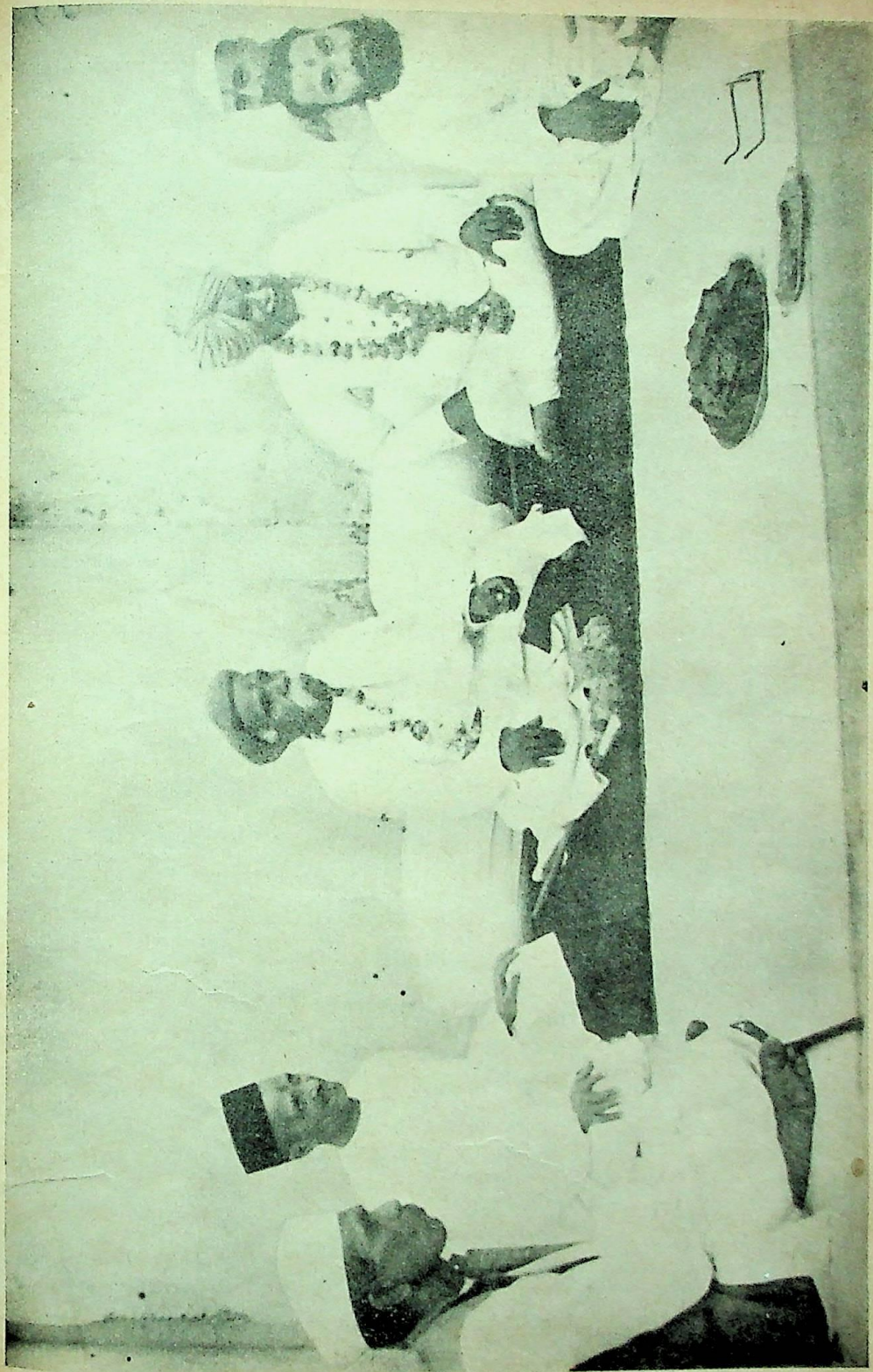


विषय-सूची



विषय	लेखक	पृष्ठ
आचार्य यादवाभिनन्दन कोष	...	... ८११
नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद्	...	... ८१२
नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद् के सम्बन्ध में पत्र	...	... ८१३
हरद्वार में वैद्यों का समागम	...	... ८१४
दवाओं की मिलावट (सम्पादकीय)	...	... ८१५
मुख विरेचनी बटो	...	... ८१६
निदान-चिकित्सा हस्तामलक	...	... ८१७
शीतला (चेचक)	...	... ८१८
चेचक (वसन्त रोग)	...	... ८१९
माता-रोग	...	... ८२०
सौन्दर्य और उसकी साधना	...	... ८२१
टहलिए और दौड़ लगाइए	...	... ८२२
स्वास्थ्य के साथ धर्माचरण	...	... ८२३
शहब	...	... ८२४
बालकों का वर्तमान स्वास्थ्य एवं उनका सुधार	...	... ८२५
भारतीय स्वास्थ्य हीनता के मूल कारण	...	... ८२६
आयुर्वेद-दृष्टि से स्वप्न विचार	...	... ८२७
सार्वजनिक स्वास्थ्य का अनुपम उपाय	...	... ८२८
मधुमेह चिकित्सा	...	... ८२९
वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा का भाषण	...	... ८३०
बिहार की वनस्पतियाँ	...	... ८३१
आयुर्वेद-जगत्	...	... ८३२
	श्रीयुत किशोरीदास बाजपेयी	... ८३३
	वैद्य रणजितराय	... ८३४
	वैद्य रणजितराय	... ८३५
	वैद्य रामलखन मिश्र, आयुर्वेद विशारद	... ८३६
	वैद्य हरिनारायण जोशी, न्या० व्या० शास्त्री,	... ८३७
	वैद्य लक्ष्मीनारायण चौरसिया	... ८३८
	श्री शशिकान्ता वर्मा	... ८३९
	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री	... ८४०
	राजवैद्य भ्रमरदत्त मिश्र	... ८४१
	वैद्य रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार	... ८४२
	वैद्य सीताराम केजड़ीवाल	... ८४३
	आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेद शास्त्राचार्य	... ८४४
	अत्रि	... ८४५
	श्रीयुत मदनगोपाल वैद्य, ए० एम० एस०	... ८४६
	आ० डॉ० शंकरलाल भेड़ा, एम० बी० बी० एस	... ८४७
	प्रो० ठा० बलचन्तसिंह, एम० एस-सी०	... ८४८

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के झाँसी निर्माण केन्द्र में स्वागत समारोह



वापें से दाएँ :—

वैद्य नाथूरामजी गंधी, वैद्य पं० रामनारायणजी शर्मा, अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, राजवंधा ख्यालीरामजी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य इन्दौर, कविराज प्रताप सिंहजी डी० एस. सी. प्रिंसिपल राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कालेज इन्दौर इत्यादि ।



बाएँ से दाएँ :—

- (१) वैद्य राम गोपालजी शास्त्री (माला पहिने), (२) आर० जी गोडवले शास्त्री, (३) वैद्य परमानन्दजी व्यास, (४) वैद्यराज ख्यातीरामजी द्विवेदी इन्दौर, (५) कविराज प्रतापसिंहजी डी० एस. सी. प्रिंसिपल श्री राजकुमार सिंह आधुनिक कालेज इन्दौर ।

ॐ श्री धन्वन्तरये नमः ॐ

आ० जगत् में सर्वजन समादृत, सर्वाधिक बिक्री होनेवाला, आ० विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र



आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ५

कलकत्ता, अप्रैल, १९५३

अंक १०

आचार्य यादवाभिनन्दन कोष

“सचित्र आयुर्वेद” द्वारा स्थापित आचार्य यादवाभिनन्दन कोष का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है। सचित्र आयुर्वेद के ग्राहकों, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के औषध बिक्रेताओं तथा हमारे अन्य बहुत परिचित मित्रों ने इस कोष में धन जमा कराने के लिये मनीआर्डर भेजना प्रारम्भ किया है। जो महानुभाव इस पुनीत कार्य में धन दान देकर उत्साह प्रकट कर रहे हैं उनकी इस कर्तव्य परायणता का हम हृदय से स्वागत करते हैं।

जिन महानुभावों ने उपरोक्त कोष में धन जमा कराया है, उनकी नामावलि “सचित्र आयुर्वेद” के इसी प्रस्तुत अंक में प्रकाशित करने का हमारा विचार था। परन्तु बम्बई से श्रीयुक्त वैद्यराज पं० गजाननजी जोशी सीकरवालों ने जो कि बहुत पहले से ही इस कार्य के लिये धन संग्रह कर रहे हैं, उनके पास जिन महानुभावों ने धन जमा कराया है उनकी नामावलि सचित्र आयुर्वेद के इसी अंक में प्रकाशित करने को आग्रह के साथ भेज दी थी। उसमें उन्होंने सिर्फ बड़े-बड़े लोगों ने जो धन जमा कराया है उसी का विवरण लिखा था, सर्वसाधारण द्रव्यदाताओं का विवरण कुछ भी नहीं था। अतः उसमें सर्वसाधारण द्रव्य दाताओं का विवरण भी सम्मिलित करने के लिये हमने उसे वापिस बम्बई भेज दिया। वह विवरण “सचित्र आयुर्वेद” के प्रस्तुत अंक के प्रकाशित होने तक हमें वापिस नहीं मिला और उसकी प्रतीक्षा में हम “सचित्र आयुर्वेद” द्वारा स्थापित कोष में जमा हुए धन का विवरण भी प्रकाशित नहीं कर सके। इस विवशता के लिये हम कृपालु पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। ‘सचित्र आयुर्वेद’ के आगामी अंक में हम सचित्र आयुर्वेद के यादवाभिनन्दन कोष में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के उद्योग से जमा हुए धन का विवरण उपस्थित करेंगे। और सचित्र आयुर्वेद के ग्राहकों से साग्रह निवेदन है कि वे अपना दान तक ही इसको सीमित न रखें, अपने प्रभाव का भी उपयोग करें।

निवेदक :—

वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री

प्रधान सम्पादक—सचित्र आयुर्वेद

नि० भा० आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषद्

निलिज भारतीय आयुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषद् के आगामी अधिवेशन के समालोच्य विषय पर प्राप्त निबन्धों के निबन्ध-संग्रह ग्रन्थ में प्रकाशन सम्बन्धी निर्णय करने के लिये परिषद् की निबन्ध निर्णायक समिति की बैठक अप्रैल के प्रथम सप्ताह में बम्बई में हो रही है। समिति की इस बैठक में सम्मिलित होने के लिये परिषद् की प्रबन्ध-नियोजन समिति के अध्यक्ष वैद्य पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री परिषद् कार्यालय में अब तक प्राप्त हुए निबन्धों को लेकर बम्बई पहुँच गये हैं। समिति के सुयोग्य एवं द्रव्यगुणशास्त्र के विशेषज्ञ सदस्यों द्वारा प्रत्येक निबन्ध के विषय में उसकी समालोच्य-विषय पर उपयोगिता को ध्यान में रखकर निर्णय किया जायेगा। निबन्ध निर्णायक समिति जिन निबन्धों को प्रकाशन योग्य निर्णीत करेगी, उन्हीं निबन्धों को निबन्ध-संग्रह ग्रन्थ में सम्मिलित किया जायेगा। बहुत शीघ्रतापूर्वक कार्य करके ही अप्रैल के अन्तिम सप्ताह तक ग्रन्थ को प्रकाशित कर आयुर्वेद विशेषज्ञों की सेवा में विचारार्थ प्रस्तुत किया जा सकेगा।

परिषद् का अधिवेशन निश्चित समय २० मई से प्रारम्भ हो, इसके लिये हरद्वार में सभास्थल, निवासस्थान, भोजन व्यवस्था आदि प्रबन्धों की व्यवस्था के लिये सुप्रसिद्ध औषध-निर्माता श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० अभी से पूर्ण प्रयत्नशील है। जिन आयुर्वेद-विशेषज्ञ महानुभावों की सेवा में परिषद् की ओर से विशेष रूप से छपा हुआ निमन्त्रण पत्र भेजा जाएगा उनके निवास स्थान और भोजन-व्यवस्था का खर्च श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ने देना सहर्ष स्वीकार किया है। इसके अलावा स्वेच्छा से सम्मिलित होने वाले महानुभाव दर्शक रूप में सम्मिलित हो सकेंगे तथा उनके निवास स्थान भोजन-व्यवस्था आदि का प्रबन्ध उनके स्वयं के खर्च (पाँच रुपये प्रतिदिन के हिसाब) से किया जा सकेगा। परिषद् का अधिवेशन दस दिन तक चालू रहेगा। अतः पूरे दस दिन का खर्च ५०) रु० १० मई तक अग्रिम जमा कराने पर ही उन महानुभावों के निवास-स्थान, भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध किया जा सकेगा। इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक महानुभाव प्रबन्ध-नियोजन समिति के अध्यक्ष वैद्य पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री, मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, गुसाईं पुरा, झाँसी (उत्तर प्रदेश) से पत्र व्यवहार करें।

निवेदक :—

वैद्य—मोहनलाल चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य
स० संयोजक—नि० भा० आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषद्
Cl० श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
गुसाईं पुरा, झाँसी (उ० प्र०)

नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद् के सम्बन्ध में पत्र

प्रसन्नता की बात है कि आगामी २० मई, १९५३ से हरद्वार में प्रारम्भ होनेवाली नि० भा० आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषद् की कार्यवाही संस्कृत भाषा में न होकर राष्ट्र भाषा हिन्दी में क्यों हो रही है, इसकी ओर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्री बी० बी० नटराज शास्त्रीजी ने एक पत्र द्वारा मेरा ध्यान आकृष्ट किया है, (पत्र की प्रतिलिपि नीचे प्रकाशित है) एक आयुर्वेद-सेवी के नाते संस्कृत भाषा को मैं उनसे कहीं अधिक श्रद्धा तथा सम्मान की दृष्टि से देखता हूँ, जितना एक संस्कृत-प्रेमी देखते हैं। इतना होते हुए भी मैं एकान्त संस्कृत भाषा में इसका कार्यक्रम क्यों न रख सका, इसका समुचित उत्तर नीचे बी० बी० नटराज शास्त्री के पत्र के साथ प्रकाशित है।

श्रीयुत बी० बी० नटराज शास्त्री का पत्र

वैद्यराज पण्डित श्री रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्र महोदयेभ्यः सबहुमानं विज्ञापनम् !
आर्याः ।

तत्र भवद्भिरनुष्ठीयमानेषु नानाप्रकारेषु आयुर्वेद समुद्धरण पुण्यकर्मसु आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषत् संपादनं प्रशस्ततमम् । भवतां समुद्यमस्य फल समृद्धये परमेश्वरम् प्रार्थयामः ।
परिषदमधिकृत्येदं किञ्चित् स्मारयितुमीहे !

शास्त्रीय चर्चासु निबन्धे संभाषायां वा संस्कृत भिन्न भाषा समाश्रयणेन नाभीष्ट सिद्धिः शक्य संपादा । हिन्दी भाषानभिज्ञाः पण्डितवराः भूयांसः सन्ति आयुर्वेद लोके, विशिष्य दक्षिण भारते बंगेषु च । संस्कृत भाषायां स्वातन्त्र्य विहीनानां हिन्दी मात्र विदां भिषजां शास्त्रीय चर्चासु प्रवेष्टुं नाधिकार संगतिः कथमपि सिद्धयेत् । परिषदि चर्चायां निबन्धेषु च हिन्दी भाषा प्रयोगः नूनं बहून् भिषक्तमान् वधिरान् मूकांश्च करोति । निखिल भारतीयायुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषदिति संज्ञामुद्घोष्य निखिल भारत व्यापिनीं सर्व साधारणीं संस्कृत भाषाव्युदास्य, प्रान्तीय देशभावयाः हिन्द्याः परिषद्व्यवहारे प्रयोगः सर्वथा असमीचीन एव । विभिन्न प्रान्तीयानां सर्वेषां भिषजां एतादृशः शास्त्र विचार सभा प्रविविक्षूणां संस्कृत भाषायाः प्रयुज्यमानायां सम्यग् ज्ञानं स्यात् । मैवहिन्द्याम् । अतः शास्त्रचर्चा परिषत् संबन्धिनः सर्वे व्यवहारा एकान्ततः संस्कृते संचालनीया भवन्ति । अन्यथा भारते निखिल प्रान्तीय पण्डिताशय संकलने परिषद् द्वारं विहितमेव भवेत् अतः संस्कृतेन संपूर्ण व्यवहारः संपद्येत तथा तत्र भवद्भिः प्रधान पुरुषैः प्रयतितव्यमिति !

यद्यपि निबन्धनं रसादि विषयकं रचयित्वा प्रेषयितुं ममावकाशो नास्ति तथाऽपि हरिद्वारे सदसि चर्चासु भागी बुभूषुरस्मि ! अतः कृपया रसादि विषयके प्रकाशिष्यमाणं (विमर्शकानामुपकाराय) निबन्ध संग्रह ग्रन्थमेकं मह्यं कृपया प्रकाशितानुपदं प्रेषयत्विति प्रार्थये । यद्यपि लोकव्यवहारात्मिकां हिन्दी मतिलेशत एव बुद्धये, तथाऽपि इदानीं सचित्रायुर्वेद पत्रिकावलोकनेन आयुर्वेदकीं ग्रन्थगतां संस्कृत प्रचुरां हिन्दी एक देशतोऽवगच्छामि !

श्री वैद्यनाथायुर्वेद भवन प्रकाशितेषु ग्रन्थेषु आयुर्वेद सार संग्रहमन्तरा सर्वग्रन्था मयि सन्ति । अधुना आयुर्वेद सारसंग्रहस्यापि एकं पुस्तकं देयं मूल्य विधानेन (बी० पी०) मह्यमविलम्बेन प्रेषयितुं भवत्-कार्यालये आदिश्यतामिति प्रार्थये !

यद्युचितं चिन्त्यते संस्कृत विषये मदीयमभ्यर्थनं तर्हि कृपया एकं प्रतिपत्रं विसृज्यताम् ।

भवतांविधेयः आयुर्वेद सेवकान्यतमः

बी० बी० नटराज शास्त्री

अस्य पत्रस्योत्तरम्

सेवायाम् :—

श्रीमतामात्रेयायुर्वेदशालाध्यक्षाणां बी० बी० नटराज शास्त्रिणाम् ।

सम्माननीय महोदयाः !

सबहुमानपुरःसरन्नमस्कृतयः सन्तु ।

श्रीमतांकरकमलांकितम् पत्रमवाप्तम् वृत्तंचावगतम् । नि० भा० आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा परिषद्विषयिकीं कार्यवाहीम्भवन्तः संस्कृते चिकीर्षन्तीति महान् प्रमोदोवरिवर्तते । अस्माकंचिकीर्षाऽप्येता दृश्येवाऽऽसीत् परमधुना समस्तोत्तर भारते हिन्दीभाषामाध्यमेनैवायुर्वेदाध्ययनाध्यापन प्रणाली प्रचलिता विद्यते । तेन प्रति दिनं संस्कृतज्ञवैद्यानामभाव एव दृश्यते । यतो हि नि० भा० आयुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषदः समालोच्यविषये प्राप्तपंचाशदधिकेषु निबन्धेषु केवलं त्रयो निबन्धाः संस्कृते सन्ति, चत्वारो निबन्धा आंगलभाषायामेकश्च बंगभाषायाम् विद्यते । शेषास्तु सर्वे हिन्द्यामेव सन्ति । एतादृशी परिस्थितिः संस्कृतस्य विद्यते । परं दक्षिण भारतीयानाम् बंगीयानांचायुर्वेदज्ञानां कृते संस्कृतस्यव्यवहारस्य भवतामनुरोधः स्वागताहः समीचीनश्च विद्यते । परम् प्रायशः संस्कृतज्ञवैद्यानामभावं दृष्ट्वा भृशं चेखिद्यते मदीयम् मनः ।

शास्त्रचर्चासु यदि दक्षिणात्या बंगीयाश्चायुर्वेद विदो विद्वांसः प्रभूतसंख्यायाम् सम्मिलिताः भविष्यन्ति तर्हि परिषत्कार्यवाह्याम् संस्कृत प्रयोगस्यापि सुविधा भवितुमर्हतीति विज्ञेयम् । परिषदि चर्चायां निबन्धेषु च संस्कृत प्रयोगः कदापि नैव वारितोऽस्माभिः । समागताः सदस्याः यदि संस्कृते चर्चा चिकीर्षयिष्यन्ति तर्हि महत्सौभाग्यम् भविष्यति भारतस्य तद्विज्ञानस्य आयुर्वेदस्य च समुन्नतिरप्यवश्यम्भावित्येव विद्यते ।

‘निखिलभारतीयायुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषदिति संज्ञामुद्घोष्य निखिलभारत व्यापिनीं संस्कृतभाषां व्युदास्य प्रान्तीयदेश भाषयाः हिन्द्याः परिषद्व्यवहारे प्रयोगः सर्वथा असमीचीन एव, इति भवद्भिर्भयं द्विलिखितम् तेन स्वतन्त्रभारत राष्ट्रस्य राज्यभाषात्वेन स्वीकृतायाः हिन्द्या विरोधः प्रदर्शितः । अस्मिन् विषये भवन्त उदाराशयाः भवेयुरिति प्रार्थयामो वयम् ।

दाक्षिणात्याः बंगीयाश्चायुर्वेद विदो विपश्चिन्महानुभावाः संस्कृतज्ञाः सन्ति परन्तु तैरपि पत्रव्यवहारे संस्कृत भाषा न प्रयुक्ता । दाक्षिणात्यैरांगल भाषा प्रयुक्ता बंगीयैश्च बंगभाषा प्रयुक्ता तदा तेषाम् संस्कृतज्ञानस्य कथम् प्रतीतिर्भवितुमर्हति । दाक्षिणात्यानाम् पत्रेषु भवतामेव प्रथमम् पत्रमवाप्तम् यस्मिन् संस्कृत प्रयोग आस्ते ।

‘द्रव्यस्य रस-गुण-वीर्य-विपाकस्य-प्रभावाणाम् स्वरूपनिर्णयः कैः साधनैर्भवितुमर्हतीति, अस्मिन् महत्त्वपूर्णं शास्त्रचर्चा विषये भवादृशोऽपि विपश्चिन्महानुभावस्य नावकाशो विद्यते इति विज्ञायातीव दूयंते चेत्तः । ईदृश्याम् परिस्थितौ शास्त्रोक्ततेः कः साधनः कथं च सा भवितुमर्हत्येतदपि शोचनीयं विद्यते । शास्त्रचर्चापरिषद्विषयिकाग्रिमा विज्ञप्तिः सचित्रायुर्वेदस्याप्रैलमासस्यांके प्रकाशिता भविष्यति तयैव वृत्तमवगन्तव्यम् भवद्भिः ।

आयुर्वेदसार संग्रहस्यैकं पुस्तकम् वी० पी० द्वारा चिरेणैव प्रेषयिष्यते । भवन्तः आयुर्वेदशास्त्र चर्चा परिषदि सम्मिलिताः भविष्यन्तीति विज्ञाय नितान्तशान्तस्वान्तोऽहमभूवम् । पत्रोत्तरमचिरेणैव प्रदेयम् भवद्भिरिति भूयो भूयः प्रार्थयेऽहम् ।

भवतामेव विनम्र निवेदकः—

पं० रामनारायण शर्मा वैद्य :

अध्यक्ष—प्रबन्ध नियोजन समिति नि० भा० आयुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषद्

Cl० श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

गुसाईपुरा—झाँसी

हरिद्वार में वैद्यों का समागम

‘सचित्र आयुर्वेद’ के पिछले अंक में यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि इसी मई की २० तारीख से हरिद्वार में अ० भा० आयुर्वेदशास्त्र चर्चा-परिषद् का द्वितीय अधिवेशन होने जा रहा है । हिमालय का प्राङ्गण इस काम के लिए कितना उपयुक्त है, बताने की जरूरत नहीं ।

ऋतु बड़ी सुन्दर है, हरिद्वार के लिए । फिर, परिषद् में भाग लेने के बाद जो लोग ऊपर (हिमालय पर) जाना चाहेंगे, उनके लिए भी विशेष सुविधा है । सुन्दर पर्वतीय दृश्य और पवित्र तीर्थ-यात्रा । बदरी-केदार-गंगोत्री आदि की यात्रा एक मास में सम्पन्न हो जाती है । बड़ा रेला इससे पहले ही यात्रियों का निकल जाता है । मई के अन्त में जाग्रो और जून के अन्त में उतर आग्रो ।

जो लोग ऊपर न जाएँ, वे यहीं रह कर पार्वतीय छटा का आनन्द महीने भर ले सकते हैं । गंगा जी उस समय उमंग से उमड़ती हुई आनन्द-प्रद दृश्य को और अधिक रमणीय कर देती हैं । इस वर्ष आम इस तरह आए हैं कि क्या कहा जाए । कभी ऐसे नहीं आए । यहाँ का कलमी आम इतना सुस्वादु होता है कि उसकी समता में कहीं का कोई आम ठहर नहीं सकता । सस्ते भी रहते हैं । गंगा जी के हिम-शीतल जल में ठंडे कर के लोग रस लेते हैं । यहाँ की लीची मेवा भी प्रसिद्ध है, जो उन्हीं दिनों होती है । सो, स्वागत वैद्य समाज ।

कनखल

५-३-५३

}

किशोरीदास वाजपेयी

दवाइयाँ में मिलावट

भारत सरकार ने औषध उद्योग के सम्बन्ध में जांच करने के लिए ग्यारह सदस्यों की एक जांच समिति नियुक्त की है। इस समिति की पहली बैठक में स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने कहा कि भारत सरकार का स्वास्थ्य मंत्रणालय औषध सम्बन्धी कानूनों में ऐसी व्यवस्थाएँ करने का विचार कर रहा है जिसमें दवाइयों में मिलावट मुनाफे का सौदा न रह जाय।

स्वास्थ्य मन्त्रिणी के इन शब्दों ने—‘जिससे दवाइयों में मिलावट मुनाफे का सौदा न रह जाय’—हमारे ध्यान को विशेष रूप से आकृष्ट किया है। दवाइयों में मिलावट से जन स्वास्थ्य पर तो बहुत बुरा असर पड़ ही रहा है, उससे औषध उद्योग को भी बहुत हानि हो रही है क्योंकि उससे लोगों का उस पर से विश्वास हटता जा रहा है। दवाइयों में मिलावट इतनी बढ़ गई है कि उससे जनता और ईमानदार औषध-निर्माताओं दोनों को बहुत चिन्तित बना दिया है।

सरकार से लगातार मांग की गई कि वह दवाइयों में मिलावट की रोक-थाम के लिए कड़ी कार्रवाई करे। इस तरह की मांग करने वालों के दिमाग में साधारणतः यह बात थी कि सरकार नकली दवाएँ बनाने वालों की धर-पकड़ में ज्यादा सतर्कता बर्ते और इस जुर्म के करने वालों के लिए कड़ी सजा की व्यवस्था कानून न की जाय।

उपर्युक्त मांगों के औचित्य से कोई इनकार नहीं कर सकता। नकली और मिलावटी दवाएँ बनाने वालों के लिए कानून में कड़ी सजाओं की व्यवस्था करने की ज़रूरत से भी कोई इनकार नहीं कर सकता। यह तो करना ही पड़ेगा। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या केवल ये कार्रवाइयाँ पर्याप्त होंगी? यह बुराई देश व्यापी है और इस जुर्म को करने वाले बहुत चालाक किस्म के लोग हैं अतः केवल यही नहीं कि उनके विशुद्ध कानूनी व्यवस्था मात्र पर्याप्त न होगी, उन व्यवस्थाओं पर अमल के लिए इतने बड़े विभाग की आवश्यकता होगी कि सरकार शायद उतना खर्च बर्दाश्त न कर सके। दूसरे, इस विभाग पर भ्रष्टाचार की काली छाया न पड़ने पायेगी, इसकी क्या गारण्टी हो सकती है?

हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि सरकार नकलालों की धड़-पकड़ और उनके लिए कड़ी सजाओं की व्यवस्था

न करे। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, यह तो करना ही पड़ेगा। लेकिन केवल उतना पर्याप्त नहीं होगा। हमें इन व्यवस्थाओं के साथ-साथ अन्य व्यवस्थाएँ भी करनी पड़ेंगी, अर्थात् ऐसी व्यवस्था भी करनी पड़ेगी जिससे दवाओं में मिलावट मुनाफे का सौदा न रह जाय।

दवाओं में मिलावट युद्धकाल में बहुत बढ़ी और नकली दवाओं की बाढ़ आ गयी। इसके मुख्य कारण थे असली दवाओं की कमी और उनकी कीमतों में बेतहाशा वृद्धि। युद्धोत्तर काल में भी यह स्थिति किसी न किसी अंश में कायम रही। दवाओं की जितनी मांग बढ़ गयी है असली औषधों के निर्माण में उतनी वृद्धि नहीं हुई है। असली औषधों की कमी के कारण नकलालों की वन आयी है। अतः सरकार को इस बात की भी कोशिश करना है कि औषध उद्योग इतनी तेजी से विकसित हो कि देश में औषधों की कमी न रह जाय।

नकली और मिलावटी दवाओं का कारबार इतना बढ़ जाने का कारण यह भी है कि बहुत-सी पेटेण्ट दवाओं और खास तौर से एलोपैथिक दवाओं की कीमतें इतनी अधिक हैं कि आम लोग उन्हें आसानी से खरिद नहीं पाते। उसी नाम की या उसके मिलते-जुलते नाम की नकली दवा कुछ सस्ते दामों पर मिलने पर वे आसानी से धोखे का शिकार हो जाते हैं। आयुर्वेदिक दवाएँ सस्ती होती हैं और उनकी निर्माण की व्यवस्था भी उतनी खर्चीली नहीं है, जितनी कि एलोपैथिक दवाओं की। किन्तु सरकार ने आयुर्वेद के साथ हमेशा सौतेला व्यवहार किया है। आयुर्वेद को प्रोत्साहन देती तो लोगों की सस्ते दामों में अच्छी दवाएँ उपलब्ध होतीं। सरकारी अस्पतालों में आयुर्वेदिक दवाओं के इस्तेमाल के प्रोत्साहन से सरकार उन अस्पतालों में अधिक मात्रा में दवाओं की व्यवस्था कर सकती है। पर सरकार ने आयुर्वेद के प्रति उपेक्षा की नीति अपनायी और आज भी उसी नीति पर चल रही है। जब तक वह अपनी यह नीति बदलेगी नहीं तब तक न तो देश का औषध उद्योग इस स्थिति को पहुँच सकेगा कि वह देश को दवाएँ संबंधी समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर सके, और न तब तक जनता के लिए सस्ती दवाओं की समुचित व्यवस्था हो सकेगी। दवाओं की कमी को दूर करने और सस्ती

दवाएँ उपलब्ध करने का एकमात्र उपाय है आयुर्वेद को प्रोत्साहन देना।

आजकल यह रोग भी बहुत बढ़ गया है कि आकर्षक विज्ञापनों के जरिए बहुत से लोग दवा के नाम पर कूड़ा-कंकट बेच रहे हैं। इसकी रोक-थाम भी आवश्यक है। सरकार को विज्ञापित दवाओं के बारे में यह जांच पड़ताल भी कराते रहना चाहिए कि उनमें विज्ञापित गुण हैं कि नहीं। जो दवाएँ बीमारी साबित हों उन पर तत्काल रोक लगानी चाहिए और उनके निर्माताओं को कड़ी सजा मिलनी चाहिए। ऐसा करने पर ही असली दवाओं के निर्माताओं को प्रोत्साहन मिल सकेगा और जनता धोखेबाजों से बच सकेगी।

---:o:---

आयुर्वेदालंकार डा० केसरवानी का मामला

इलाहाबाद, २६ मार्च। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश-चिकित्सा-परिषद को राज्य में चिकित्सा की प्रैक्टिस करनेवालों के रजिस्टर में से आयुर्वेदालंकार डा० धर्मानन्द केसरवानी (जो रोम की रॉयल यूनिवर्सिटी के एम० डी० हैं) का नाम काटने से रोक दिया है।

माननीय न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में कहा है कि हम शिक्षासंस्थाओं और घरेलू न्याय-अधिकारियों की स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते किन्तु अन्याय और पक्षपात न होने देना हमारी जिम्मेवारी है। जहाँ स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लङ्घन होता हो वहाँ हस्तक्षेप करना न्यायालय का कर्तव्य है।

प्रार्थी इलाहाबाद के तपेदिक के सरकारी अस्पताल के चिकित्साधिकारी हैं और भुवाली के सेनेटोरियम में क्षय विशेष के रूप में सुपरिन्टेंडेंट रह चुके हैं। रोमविश्व-विद्यालय से एम० डी० उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् महायुद्ध के दौरान में वे इटली और जर्मनी में भी प्रैक्टिस कर चुके हैं। यू० पी० मेडिकल कौंसिल ने प्रार्थी को नोटिश दिया था कि उसका नाम प्रैक्टिसनरों के रजिस्टर में से क्यों न काट दिया जाय। इस पर प्रार्थी ने न्यायालय में प्रार्थना की कि मेडिकल कौंसिल को रजिस्टर से मेरा नाम काटने से रोका जाय। न्यायालय ने उसकी प्रार्थना पर विचार करके कौंसिल को नाम काटने से रोक

दिया है और प्रार्थी को ५००) रु० लागत व्यय दिलवाया है।

रोम जाने से पूर्व डा० केसरवानी गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी के छात्र थे और वहाँ से उन्होंने ने १९२८ में आयुर्वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की थी।

न्यायाधीशों ने अपने फैसले में कर्नल चोपड़ा तथा ऐलोपैथी के अन्य डाक्टरों की सम्मति की चर्चा की है जिसमें कहा गया है कि गुरुकुल की डिग्री केवल आयुर्वेद की डिग्री नहीं है। गुरुकुल में आयुर्वेद के साथ-साथ आ० शिक्षा की वर्तमान प्रणाली की भी शिक्षा दी जाती है। यह प्रश्न अप्रासंगिक है कि गुरुकुल का शिक्षास्तर भारत के अन्य स्वीकृत विश्वविद्यालयों के समकक्ष है या नहीं। प्रश्न यह है कि प्रार्थी ने रोम विश्वविद्यालय में भर्ती होने के समय गुरुकुल के शिक्षा स्तर के सम्बन्ध में कोई गलत बयानी तो नहीं की?

न्यायाधीश ने कहा कि हम इस बात से सन्तुष्ट हैं कि गुरुकुल विश्वविद्यालय को केवल प्राचीन और मृत आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धतिकी शिक्षा देनेवाली संस्था कहना ठीक नहीं है। योग्यता के विषय में मतभेद की गुंजाइश हो सकती है किन्तु यह बात निर्विवाद है कि वहाँ आयुर्वेद पद्धति के साथ-साथ आधुनिक ऐलोपैथिक पद्धति की भी शिक्षा प्रदान की जाती है। इस टिप्पणी को हम इसलिए आवश्यक समझते हैं क्योंकि मेडिकल कौंसिल ने रोम विश्वविद्यालय के रेक्टर को जो पत्र लिखा उसमें कहा गया था कि डा० केसरवानी ने गुरुकुल में प्राप्त शिक्षा के बारे में गलत बयान की है और गुरुकुल में केवल प्राचीन आयुर्वेद की ही शिक्षा दी जाती है।

१९२८ में गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक बनने के बाद डा० केसरवानी ने बम्बई के अनेक अस्पतालों में कार्य किया। १९३१ में वे देहरादून में आ गए और उनकी प्रैक्टिस धड़ल्ले से चली। १९३८ में उन्होंने ने यूरोप जाने का निश्चय किया क्योंकि इसके लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिल गई थी। उन्होंने ने इटली में पढ़ने का निश्चय किया वे वहाँ प्रो० विनयकुमार सरकार से परिचयपत्र लेकर गए। उनकी योग्यता को देखकर रोम विश्वविद्यालय ने उन्हें ४ वर्ष की छूट दे दी। वहाँ एम० डी० प्राप्त करने में ६ वर्ष लगते हैं। किन्तु उन्हें ११ वर्ष में ही डिग्री मिल गई। उन्हें चार कठिन परीक्षाएँ देनी पड़ीं जिनमें वे यशस्वी हुए। अन्तिम परीक्षा में उन्हें ८८ प्रतिशत

अंक मिले। इसके बाद म्यूनिख (जर्मनी) में उन्होंने ने 'शिष्टता' (डिस्टिकेशन) प्राप्त की। १९४१ से १९४७ तक वे जर्मनी में ही प्रैक्टिस करते रहे।

भारत में अवस्था सुधरने पर वे १९४७ में अपने देश लौट आए और उन्होंने ने राज्य के मुख्यमन्त्री को अपनी वापसी तथा अपनी योग्यताओं के बारे में पत्र भी लिख दिये। अपने लौटने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने ६ अगस्त, १९४७ को भुवाली सैनेटोरियम के मैडिकल सुपरिटेण्डेंट के पद की विज्ञप्ति देखी। उन्होंने प्रार्थना पत्र भेज दिया। भेंट के लिए उन्हें बुलाया गया और वे चुन लिए गए। १० मार्च, १९४८ को उन्होंने कार्यभार संभाला। यू० पी० मैडिकल ऐक्ट की दफा १८ के अन्तर्गत मैडिकल कौंसिल ने खूब ध्यानबीन करने के बाद उन्हें 'रजिस्टर्ड' करार दिया।

पत्र-व्यवहार

उसके बाद ऐसा घटनाचक्र चला कि मैडिकल कौंसिल का इरादा बदल गया और २६ अप्रैल, १९४८ को लिखे एक पत्र में डा० केसरवानी से उनकी योग्यता के बारे में पूछा गया। और इस के बाद मैडिकल कौंसिल के रजिस्ट्रार ने रोम विश्वविद्यालय को पत्र लिखा कि डा० केसरवानी जिस गुरुकुल विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है वह सरकारी नौकरी से स्वीकृति नहीं है और उसमें केवल प्राचीन आयुर्वेद की ही शिक्षा दी जाती है। मैडिकल कौंसिल में भी उनके रजिस्ट्रेशन के बारे में एतराज किए गए।

न्यायाधीशों ने कहा कि डायरेक्टर के पत्र से यह स्पष्ट है कि केसरवानी ने रोम में कोई गलत बयानी नहीं की। अलवत्ता यह बात ठीक है कि गुरुकुल कांगड़ी सरकारी तौर पर स्वीकृत संस्था नहीं है। किन्तु यह विख्यात लोकप्रिय संस्था है और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रियों और विद्वानों ने उसकी प्रशंसा की है। यह सुविदित है कि इस संस्थाने शिक्षा की नई दिशा में परीक्षण किया। सरकारी सहायता

लेने की अनिच्छा का कारण वह सरकार थी जो १९४७ से पहले इस देश में विद्यमान थी। यह कोई अज्ञात संस्था नहीं है और उसे रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्तिनिकेतन जैसी संस्थाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। गुरुकुल विश्वविद्यालय का चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का स्तर अन्य मेडिकल कालिजों के समकक्ष हो या न हो, किन्तु यह कहना तो सर्वथा असत्य है कि गुरुकुल में केवल आयुर्वेद ही पढ़ाया जाता है। इस सिलसिले में न्यायाधीशों ने भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्जे मैकडोनाल्ड, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, कर्नल चोपड़ा तथा उप राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन की भी सम्मति व्यक्त की है। इससे यह स्पष्ट है कि डा० केसरवानी ने किसी अज्ञात और अख्यात विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की, किन्तु ऐसे सुज्ञात और सुविख्यात विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है कि जिसने कभी सरकारी सहायता की इच्छा नहीं की।

सफाई पेश करने का मौका भी नहीं

न्यायाधीश ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि मेडिकल कौंसिल जैसी जिम्मेवार संस्था ने इस प्रकार गैरजिम्मेवारी का काम किया है। इस मामले में डा० केसरवानी को अपनी सफाई पेश करने की कोई अवसर दिए बिना और निष्पक्ष दृष्टि से तथ्य का निश्चय किए बिना मेडिकल कौंसिल ने रोम विश्वविद्यालय को यह लिख कर कि वह डा० केसरवानी की उस डिग्रीको रद्द कर दें, जिसके लिए उन्होंने ने रोम में सख्त परिश्रम किया था, स्वाभाविक न्याय के नियमों का उल्लंघन किया है।

“स्वायत्तशासी संस्थाओं का यह कर्तव्य होता है कि वे निष्पक्षता, न्याय और जिम्मेवारी से कार्य करें। किन्तु जहाँ इस प्रकार के औचित्य का अभाव हो वहाँ हस्तक्षेप करना इस न्यायालय का कर्तव्य है”—यह कहते हुए न्यायाधीशों ने यू० पी० मेडिकल कौंसिल के प्रति निषेधादेश जारी कर दिया।

सुख विरेचनी वटी

वैद्य रणजितराय

विमानस्थान के सप्तम अध्याय के अन्त में कृमि रोग की चिकित्सा का उपसंहार करते हुए आचार्य ने कहा है कि ; रोगमात्र के उपचारों को संक्षेप में तीन विभागों में बाँटा जा सकता है ; संशोधन, संशमन और निदान-परिवर्जन । देखिए--

संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम् ।

एतावद् भिषजा कार्यं रोगे रोगे यथाविधि ॥

च. वि. ७।३०

इनमें अंतिम निदान-परिवर्जन पथ्यापथ्य इस पर्याय नाम से प्रसिद्ध है । इसका साक्षात् सम्बन्ध रोग के उत्पादक कारणों से है । उनके त्याग का और व्याधि-प्रत्यनीक (रोग तथा उसके हेतु के विरोधी) आहार, विहार, देश और काल के सेवन का उपदेश इस पद द्वारा आचार्यों ने किया है । पथ्य के सेवन और अपथ्य के त्याग का महत्त्व अनुभव-सिद्ध है । एक इसी उपाय से रोग का निवारण किया जा सकता है । उधर अच्छा से अच्छा औषध भी निरर्थक सिद्ध होता है, यदि रोगी अपथ्य का त्याग न कर सके । लोलिम्बरज की एतद्विषयक सदुक्ति वैद्यमात्र के कण्ठगत होते हुए भी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे पुनः पुनः कहने में भी पुनरुक्ति नहीं कही जा सकती ।

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः ।

पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणैः ॥

पथ्य का सेवन किया जाय तो औषधों के सेवन से क्या प्रयोजन ? (उनके बिना भी व्याधि स्वयं निवृत्त हो जाती है ।) उधर, पथ्य का सेवन न किया जाय तो भी औषधों के सेवन का क्या प्रयोजन ? (अपथ्य होते हुए स्वयं ब्रह्मदेव भी आकर औषध दें तो उनका कुछ परिणाम नहीं होता ।) अन्य भी प्रसिद्धि है :

विनाऽपि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।

न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥

केवल पथ्य से, औषध के बिना ही रोग शान्त हो सकता है । परन्तु पथ्य-सेवन न किया जाय तो सहस्रों औषधों से भी कुछ हो नहीं सकता ।

लोक में कुछ ऐसी भ्रांति व्याप गई है कि वैद्य की

चिकित्सा में पथ्य की बड़ी माथापच्ची है । यत्सत्यं (सत्य तो यह है कि) पथ्यापथ्य का सम्बन्ध औषध के साथ उतना नहीं, जितना रोग के कारण के साथ है । दुर्बल मनवाले रोगी इस बात से भी अपथ्य का त्याग और पथ्य का सेवन करेंगे कि अन्यथा औषध भारी अपाय (अवगुण) करेगा, इस दृष्टि से प्राचीन वैद्यों ने पथ्यापथ्य का सम्बन्ध औषध के साथ जोड़ दिया है, ऐसा प्रतीत होता है । सुबोध रोगी को पथ्यापथ्य का सत्य स्वरूप बताना मेरे खयाल से अधिक अच्छा है । अस्तु ।

द्वितीय उपाय संशमन का अर्थ है विरोधी गुणवाले पदार्थों का अभ्यास (सतत सेवन) । यथा-बार-बार जिस वच्चे या वयःस्थ को प्रतिश्याय और कास होते हों, उसे चनेका सेवन कराया जाय तो अपने रुद्ध गुण से ये अनुबद्ध (साथ सम्बन्ध) कफ को शान्त करते हैं । अपरंच, अपने गुरु गुण तथा अधोगमनशीलता (मल-वात-प्रवर्तक स्वभाव) के कारण वायु और मल को प्रवृत्त कर प्रतिश्याय तथा कास के मूल का उच्छेद करते हैं । जिन्हें ये रोग पीड़ित करते हो उन्हें, विशेषतया शिशुओं को इस पथ्य का सेवन करा देखिए । कितना गुण होता है ? चने छिलके-सहित होने चाहिए । और भुने हुए, न कि कच्चे और अङ्कुरित, जिनके सेवन का विधान आधुनिक निसर्गोपचारक करते हैं ।

शेष उपाय संशोधन है । पंचकर्म आयुर्वेद का प्रधान अङ्ग है । और यह संशोधन का ही अपर पर्याय है । इसका महत्त्व प्रतिपादित करते संहिताकार कहते हैं:-

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः ।

जिताः संशोधनैर्न तु न तेषां पुनरुद्भवः ॥

च. सु. १६।२०

न तेषां पुनरुद्भव इति बलवद्दोषकारणत्वं विनैति मन्तव्यम् ॥

लङ्घन और पाचन इन संशमन उपायों के द्वारा दोषों का उपचार किया जाय तो उनका समूल नाश न होने से उनके पुनः प्रकोप की सम्भावना रहती है । परन्तु संशोधन

नाम वमन, विरेचन और बस्ति द्वारा उनका शरीर से बाहर निहर्ण कर दिया जाय तो मूलोच्छेद हो जाने से उनके कोप का प्रश्न नहीं रह जाता। अलबत्ता, प्रबल कारण उपस्थित होने से उनका प्रकोप होता ही है।

वर्ष में तीन बार दोष-भेद से पृथक् संशोधन का विधान प्राचीनों ने ऋतुचर्या के प्रकरण में किया है। इसके अतिरिक्त रोग-भेद से तत्-तत् संशोधन का जो विधान किया है, वह भिन्न है। पंचकर्म के विधिवत् उपयोग को हम भूल गये हैं। इतना ही नहीं, नैत्यक-चिकित्सा व्यवहार में भी एकमात्र विरेचन हमारी दृष्टि में रह गया है, परन्तु उसका भी उपयोग उतना नहीं करते जितना आवश्यक है। यह विरेचन भी कम गुणकारी नहीं है। पित्त के संशोधन का यह तो प्रधान उपाय है ही, वात का भी अनुलोमन होने से उसमें विधेय है। साथ ही कफ के लेखन और दीपन द्रव्यों के साथ विरेचन दिया जाय तो उसका भी अनपाय संशोधन इस द्वार से होता है। विरेचन के पूर्व यों वमन का विधान शास्त्रकारों ने किया है। कारण, अन्यथा कफ का अधःप्रवर्तन होकर वह ग्रहणी को आच्छादित कर देता है, जिससे अग्निमांश, रसका सम्यक् ग्रहण न होना तथा तज्जन्य अन्य विकृतियां होती हैं। परन्तु, विरेचन द्रव्य के साथ शुण्ठी आदि कफघ्न द्रव्यों की योजना हो तो यह अपाय नहीं होता।

निसर्गोपचारक विरेचन का निषेध करते हैं। उनके प्रचार का प्रभाव वैद्यों पर भी पड़ता है। परन्तु प्रकारान्तर से निसर्गोपचारक भी विरेचन क्रिया का आश्रय लेते ही हैं। तथाहि, वे आहार में तण्डुलीयक (चौलाई) आदि रेशेदार शाकों, चोकर तथा अंजीर आदि विरेचक फलों का उपयोग करते हैं। इन द्रव्यों की क्रिया और विरेचक औषधों की क्रिया में अणुमात्र भेद नहीं है। सो, रोग और रोगी का बल देखकर विरेचक औषध का प्रयोग निसर्गोपचार की दृष्टि से भी विरुद्ध नहीं है। प्रत्युत आयुर्वेद और अनुभव के आधार पर खूब अपना योग्य है।

यथायोग्य विरेचन की आवश्यकता आज कदाचित् पहले से कम नहीं है। व्यवसाय-वश सदासन^१, चाय-

सुपारी-कत्था-चूना-पान आदि कषाय अतएव विबन्धकारी द्रव्यों का अतियोग, वेगधारण इत्यादि कारण आज अत्यधिक व्याप्त हो जाने से आनाह (कब्ज) भी वर्तमान सम्यता का एक अङ्ग-सा हो गया है। ये स्थितियां शीघ्र बदलने वाली नहीं हैं। अतः सौम्य विरेचक द्रव्यों का घरेलू किंवा विशेष रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सक के हाथों सेवन भी हमारे व्यवहार का अङ्ग बन गया है।

जो सदासन तथा वेगधारण आज प्रायः प्रत्येक व्यवसाय का अङ्ग बना हुआ है, वह प्राचीनकाल में कुछ व्यवसायों तक ही मर्यादित था। इन व्यवसायों में लगे व्यक्ति सदा रोगी रहते हैं यह प्राचीनों का दर्शन (अनुभव, आन्व-वर्शन) था। अति सुन्दर वंशस्थों में इस दर्शन का उल्लेख करते हुए चरक—प्रतिसंस्कर्ता दृढवृत्त कहते हैं :—

अथाग्निवेशः सतततुरात्ररान्—
हितं च पप्रच्छ गुरुस्तदाह च ।
सदातुराः श्रोत्रियराजसेवका—
स्तथैव वेश्या सह पण्यजीविभिः ॥
द्विजो हि वेदाध्ययनं व्रताह्निक—
क्रियादिभिर्देहहितं न चेष्टते ।
नृपोपसेवी नृपचित्तरक्षणत्
परानुरोधाद्गृहं चिन्तनाद् भयात् ॥
नृचित्तवर्तिन्युपचारं तत्परा
मृजाभिभूषानिरता पणाङ्गना ।
सदासनादत्यनुबन्धविक्रय—
क्रयादिलोभादपि पण्यजीविनः ॥
सदैव ते ह्यागत वेगनिग्रहं
समाचरन्ते न च कालभोजनम् ।
अकालं निर्हारं विहारं सेविनो
भवन्ति येऽन्येऽपि सदातुराश्च ते ॥

च. सि. १२।२७।३०

सदातुरे (सदा रोगी, दायमुल मरीज) कौन होते हैं और क्यों ? शिष्य के इस प्रश्न का उत्तर देते गुरु कहते हैं ; ब्राह्मण, राज्य के कर्मचारी, वेश्या और वैश्य तथा इन लोगों की आगे कही चर्या के सदृश ही जिनकी चर्या हो वे पुरुष सदातुर होते हैं। तथा हि—

ब्राह्मण स्वाध्याय और प्रवचन (अध्ययन-अध्यापन) व्रत, आह्निक क्रिया (दैनिक-कृत्य) इत्यादि में रत रहने के कारण अपने शरीर-स्वास्थ्य का विचार और तदनुषंग

१—आस = बैठना। सदासन का उल्लेख नवीन Sedentary habit—सिडेण्टरी हेबिट नाम से करते हैं, तथा इसे विबन्ध का एक प्रमुख कारण कहते हैं। सदासन = कायम बैठ रहना।

आचरण नहीं करते। नाम, आगे कहे 'सदासन, वेगधारण, अकाल भोजनादि अहिताहारविहार करते हैं। राज-कर्मचारी को सदा राजा (अपने उच्चाधिकारी) की चित्त-वृत्ति को लक्ष्य में रखकर अपना कार्यक्रम बनाना पड़ता है, अपने विचार दबाने पड़ते हैं, अत्यन्त चिन्ता और भयग्रस्त जीवन बिताना पड़ता है। वैश्या को भी राजा तथा अन्य आराधनीय पुरुषों का ध्यान कर अपनी चर्चा बनानी पड़ती है—अकाल-भोजन-शयन, असात्म्य चेष्टा, वेगावरोध आदि करने को बाधित होना पड़ता है; अनेक बार लेपन-स्नानादि करने पड़ते हैं। वैश्यों को भी क्रय-विक्रय के लोभ से सदा बैठा रहना पड़ता है तथा भोजन, मलमूत्र विसर्जन आदि असमय में करने पड़ते हैं। ये सब एक ओर इन अहिताहार विहार करने को विवश होते हैं दूसरी ओर भ्रमणादि शरीर स्वास्थ्योपयुक्त चेष्टाएँ वे कर नहीं पाते। अतः ये लोक सदा रोगी रहते हैं।

यही पुरुष क्यों, किसी भी कारण से जो कोई अकाल-भोजन, वेगनिग्रहवश अकाल में वेगप्रवर्तनादि करते हैं वे भी सदैव रोगी रहते हैं। कहना न होगा कि, कुछ अज्ञानवश, कुछ प्रमादवश और कुछ वर्तमान युग के प्रभाव से पढ़ाई, नौकरी आदि का कार्यक्रम ही असात्म्य होने के कारण प्रायः लोक अकाल-भोजन, वेगावरोध, अकाल-वेगप्रवर्तनादि करने को बाधित हो गये हैं। अतः सदैव रोगों को जैसे निमंत्रण दिये रहते हैं।

वेगधारण और वेगोदीरण का निषेध जितना आयुर्वेद में है उतना कदाचित् अन्य किसी चिकित्सा-पद्धति में नहीं है। परन्तु प्रायः वैद्य भी इस बात का उल्लेख इस प्रकार करते हैं जानों आज के निसर्गोपचार ने हमें यह नई बात सिखाई हो। विभिन्न वेगों का धारण या उदीरण विभिन्न प्रकार से कार्य करता है। यथा, क्षुधा और तृषा के वेगों का धारण करने से धातुक्षय होकर तदुत्थ विपरिणाम होते हैं। प्रसंग होने से मल, मूत्र और वात के वेगों के धारणोदीरण का विवरण देता है।

वेग के पूर्व मलादि का धारण और वेग होने पर उनका प्रवर्तन अपान वायु का कार्य है। उपस्थित वेग का निग्रह किया जाय तो अपान का जो भेद वेग के पूर्व मलादिका धारण करता है उसपर आकस्मिक कार्य आ पड़ता है, जिससे उसकी वृद्धि होती है। नव्य मत से इस स्थिति को उसका उदीपन (स्टिमुलेशन) कह सकते हैं। यह वृद्धि ही

रोगोत्पादक स्थिति में पहुँच जाय तो इसे प्रकोप कहा जाता है। इसके विपरीत अनुपस्थित वेग का उदीरण किया जाय तो अपानका वह प्रकार प्रकुपित होता है, जिसका कर्म वेग उपस्थित होने पर मलादिका प्रवर्तन करना है। स्पष्ट है कि, अपान के ये दो विरुद्ध कर्म होने से वह दो प्रकार का है : यत्सत्यं, आधुनिक क्रियाशारीर में यह कर्म स्वतंत्र नाडी संस्थान के दो पृथक् भेदों का बताया भी गया है। वेग उपस्थित होने तक मलादिका धारण करना किंवा वेगों का निग्रह किया जाय उस स्थिति में इनको धारण करना स्वतंत्र नाडीसंस्थान के एक भेद का कर्म है, जिसे आग्नेय (सिम्पेथेटिक) नाडी संस्थान कहते हैं। उधर वेग उपस्थित होने पर मलादिका प्रवर्तन किंवा वेगों की अनुपस्थिति में उनका उदीरण स्वतंत्र नाडी संस्थान के द्वितीय भेद सौम्य (पेरासिम्पेथेटिक) नाडी संस्थान का कर्म है। आग्नेय नाडी संस्थान का प्रकोप होने पर साथ-साथ समान-कर्मा धातुविशेष अधिवृक्क (एड्रीनलीन) ग्रन्थि के अन्तःस्राव का भी प्रकोप होता है। इन नाडी संस्थानों का प्रकोप या विक्षोभ (इरिटेशन) होने से मस्तिष्क में स्थित इनके केन्द्रों का भी विक्षोभ होता है। परिणामतया उनसे संबद्ध ऐच्छिक नाडी-संस्थान के केन्द्र भी क्षुभित होते हैं। उसी प्रकार जैसे किसी तन्त्र के अनेक कार्यालय एक ही स्थल पर कार्य करते हों और उनमें किसी एक या अनेक कार्यालयों में घटना-विशेष हो जाय तो उसका परिणाम साथ रहे कार्यालयों के काम पर भी पड़ता है। किसी कारण मलाशय में मल का, मूत्राशय में मूत्र और वात का, गर्भाशय में आर्तव का एवं आमाशय में अन्न का संचय हो तो आक्षेप, अपस्मार, अपतंत्रक आदि के वेग होते हैं। वैद्यमात्र का यह अनुभव उक्त वस्तु का निदर्शन है। निगू-हीत मल-मूत्र में कोथ होकर उत्पन्न द्रव्यों का शरीर में प्रसर हो तत्-तत् रोग होते हैं, सो पृथक्। वेगों के धारणो-

१—सिम्पेथेटिक और पेरासिम्पेथेटिक नाडीसंस्थानों को सुषुम्णा के दोनों ओर स्थलविशेष पर उनकी स्थिति को दृष्टि में रखकर प्रत्यक्ष शारीर में क्रमशः मध्य स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाम दिये हैं। मैं कर्मसूचक आग्नेय तथा सौम्य नाडीसंस्थान नाम प्रस्तुत करता हूँ। 'आग्नेय' तथा 'सौम्य' संज्ञाएँ आयुर्वेद में सुपरिचित होने से सरलता से पचायी जा सकती हैं—अपनायी जा सकती हैं।

दीरण का इस प्रकार समस्त तन्त्र पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतएव आयुर्वेद में इनका स्थान-स्थान पर निषेध किया है।

निसर्गोपचार की बात जाने दीजिए, एलोपैथी में भी आनाह या विबन्ध को समस्त नहीं तो अधिकांश रोगों का निदान कहा है और आनाह का भी कारण वेगावरोध बताया है^१। आधुनिकों ने रोग-निदान में जो महत्त्व विबन्ध को दिया है, वही महत्त्व प्राचीनों ने विबन्ध के भी कारणभूत वेगधारण को दिया है। यत्सत्यं, इन दोनों से हुई क्षति का दर्शन प्राचीनों ने आधुनिकों से कहीं अधिक किया था। तभी तो राजयक्ष्मा जैसे रोगों की भी उत्पत्ति में वेगधारण को चार कारणों में एक कारण बताया है। प्रकारान्तर से विबन्ध की रोगकारणता का निरूपण विरेचन के महत्त्व के प्रतिपादन के रूप में किया है। इससे यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि यह विषय वैद्यों को कुछ निसर्गोपचार के प्रवक्ताओं से लेने का नहीं है। स्वयं आयुर्वेद में इसका कहीं उत्तम विवरण है। चाहिए शास्त्रों का अवगाहन!

और हाँ, आनाह या विबन्ध की चिकित्सा में शाक या भाजी की उपयोगिता भी हमें नवीनों से नहीं सीखनी है। इन रोगों का एक कारण उभय मत से मलक्षय है। च. शा. ६।११ में मल-क्षय की चिकित्सा में शाकादि का विधान है। च. सू. २७ में चौलाई, पोई, बथुआ, पालक आदि को मल-भेदन कहा है। च. सू. २-२८ में शाकादि-सिद्ध यवागू का यही कर्म बताया है। निसर्गोपचारक आनाह में प्रातः लवणोदक का विधान करते हैं। सुश्रुत ने ऐसे रोगों में 'प्राशाश्च लवणोत्तराः (सु. चि. ४।५)' लवण-प्रधान आहारों का विधान कर वही बात कही है। प्राश का अर्थ टीकाकार ने आहार किया है।

आनाह या कब्ज के प्राचीनों ने चिकित्सोपयोगी दो स्मरणीय भेद किये हैं—आमज तथा पुरीषज। दोनों के

लक्षण सु. उ. ५६ से नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

आमं शकृद्वा निश्चितं क्रमेण

भूयो विबद्धं विगुणानितेन।

प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं

विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ सु. उ. ५६।२०

—अपक्व अन्नरस (आम) किंवा पुरीष थोड़ा-थोड़ा करके संचित हो जाय, और पश्चात् प्रतिलोम हुए वायु के प्रभावसे और भी शुष्क होकर अवरोध हो जाय; परिणामतया अधोमार्ग से उनकी यथावत् प्रवृत्ति न हो तो इसे आनाह कहते हैं। आम और पुरीष के संचय के भेद से इसके दो भेद हैं:—आमज और पुरीषज।

आमज में वमन, दीपन पाचनादि उपचार करना चाहिए तथा पुरीषज में विरेचन, वस्ति, वर्ति आदि। आनाह के इस लक्षण से स्पष्ट है कि जिसे कब्ज या कॉन्स्टि-पेशन कहते हैं, उसी रोग का प्राचीन नाम आनाह है। इसके लिए मल-बन्ध, बद्ध-कोष्ठ आदि नाम नये रचे हैं। प्राचीन संज्ञा रहते उसी का व्यवहार करना योग्य है।

विरेचनादि संशोधनों का विधान तीन प्रसंगों में हुआ है। १-रसायन या वाजीकरण द्रव्यों के सेवन करने के पूर्व देहशुद्धयर्थ; कारण जैसे रंगीन वस्त्र का पूर्व वर्ण धोकर उसे श्वेत न कर लिया जाय, तबतक उस पर नया रंग चढ़ता नहीं। वैसे दोष-पूर्ण शरीर पर रसायनों और वाजीकरणों की क्रिया नहीं होती। २-ऋतु-भेद से संचित हुए तत्-तत् दोष की शुद्धयर्थ, जिससे वे ऋतु-प्रकोपज रोगों को उत्पन्न न कर पाएँ। ३-आनाह, ज्वर, आमातिसार, उदर इत्यादि रोगों में दोष के शोधनार्थ।

विरेचन की विशेष क्रिया पित्त के संशोधन के रूप में होती है। यों जैसा कि लेख के प्रारम्भ में कहा है विरेचन से दोष-मात्र की शुद्धि होती है। परन्तु इसका विशेष प्रभाव पित्त पर होता है। तबीनों ने विरेचन के तीव्र मन्द, मध्य आदि भेद से अनेक भेद किये हैं, साथ ही कौन विरेचन-द्रव्य किस वस्तु का संशोधन विशेषतया करता है इस बात को दृष्टि में रखकर भी विरेचन के भेद किये हैं। इन पिछले प्रकार के भेदों में एक पित्त-विरेचक (कॉलेगांग) है। जो विरेचन याकृत पित्त (बाइल) का संशोधन सविशेष करते हैं, उन्हें यह संज्ञा दी गई है। याकृत-पित्त की शुद्धि हो जाने से यकृत और आयुर्वेद मत से यकृत और प्लीहा इन दोनों अवयवों की शुद्धि के कारण इन अवयवों में स्थित

१—देखिये—Neglect is one of the commonest causes of Constipation, for the retained faeces continue to lose water, and get harder and more difficult to expel. Constipation is a possible cause of many—according to same, the majority of human ailments, because of the absorption of toxic products of putrefaction, (Vide, The Handbook of Physiology & Biochemistry, by Medowall, formerly by Halliburton, 1950, P. 368)

रंजकपित्त को अपना प्राकृत कर्म करने का अवकाश यथावत् मिलता है ।

इस प्रसंग में विद्यार्थी वाचक का चित्त एक वस्तु की ओर आकृष्ट करना आवश्यक है । शास्त्र में पित्त तथैव वात और कफ तीनों दोषों के वाचक पदों का प्रयोग एकवचन में ही हुआ है । परन्तु यह प्रयोग 'जाति' या वर्गवाचक होने से हुआ है । अर्थात्-प्रत्येक दोष तीनों अवस्थाओं में समान गुणकर्म अनेक द्रव्यों की एक-एक जाति या वर्ग है । 'जाती एक वचन' संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध नियम है । इस विषय का विस्तर मत्कृत आयुर्वेदीय क्रियाशारीर में देखा जा सकता है । जो हो । याकृत पित्त और रंजक-पित्त पित्तजाति या पित्तवर्ग के दो पृथक् द्रव्य हैं । इनका स्थान सर्व शरीर होते हुए भी यकृत और प्लीहा विशेष रूप से हैं । याकृतपित्त का संचय इन अवयवों में हो तो रंजक-पित्त की क्रिया यथावत् नहीं होती । अतएव पांडुरोग, कामला, शोथादि में इस याकृत पित्त के संशोधन पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

इस रंजक पित्त के विषय में भी एक स्पष्टता कर दूं । रंजक पित्त का प्राकृत कर्म सामान्यतया रक्त का उत्पादन माना जाता है । परन्तु प्रचलित शब्द का प्रयोग कहूँ तो रक्त का शोधन नाम निर्विषीकरण भी इसका एक कर्म है । नव्य क्रियाशारीर में इसे 'डीटॉक्सिकेशन' कहते हैं । इसका अर्थ यह है कि महास्रोत में जीवाणु आदि की क्रिया से उत्पन्न किंवा आहारादि द्वारा गये विषों का यकृत में विनाश होता है । यकृत (साथ ही प्लीहा) का यह कर्म भी रंजकपित्त द्वारा ही होता है । रंजन का प्रसिद्ध पर्याय प्रसादन है । दोनों शब्दों का प्रसन्न या आनन्दित करना अर्थ प्रसिद्ध है । प्रसादन का निर्मलीकरण यह अन्य अर्थ भी होता है । प्रसन्न शब्द निर्मल के अर्थ में सुविदित है । रंजक पित्त के रंजन कर्म का अर्थ भी उत्पादन एवं प्रसादन दोनों होने चाहिए । विज्ञ वाचक विचार करें ।

अस्तु ; अब पुनः प्रकृत विषय पर आता हूँ । उक्त तीनों में किसी भी प्रयोजन-वश विरेचन का उपयोग करने के लिए चरकादि मुनियों ने अनेक द्रव्यों का निर्देश कर उनके अनेकानेक कल्पों का सविस्तर विधान किया है । उनका विचार और व्यवहार आयुर्वेद के लुप्त अङ्ग कालक्रम से जैसे-जैसे प्रकाश में आयेंगे तब होगा । आजकल जिन द्रव्यों और कल्पों का प्रयोग होता है, वे वंशों को सुविज्ञात हैं ।

प्राचीनकाल से अद्यावधि प्रचलित एक विरेचन द्रव्य जयपाल (जमालगोटा) है । उदरादि में तीव्र विरेचनार्थ तथा आनाहादि में भी इसके योगों अश्वकंचुकी, इच्छामेदी, विश्वतापहरण, नाराच रस आदि का व्यवहार किया है । इनके प्रयोगों में दो विप्रतिपत्तियाँ (उच्च) हैं । प्रथम तो इनमें प्रयुक्त जयपाल-बीजों का शोधन प्रायः इतना अधिक कर दिया जाता है कि तद्गत विरेचनकर्मा स्नेह का बड़ा भाग निकल जाता है । परिणामतया, अच्छी मात्राएँ लेने पर भी ये योग अभीष्ट कर्म नहीं करते । अपरंच, इनसे विरेचन कर्म ही लेना हो तो पारद, गन्धक, हिंगुलादि द्रव्यों का प्रक्षेप में नहीं समझता क्यों करना चाहिए ? केवल जयपाल-बीज साधित कोई कल्प क्यों न पसन्द किया जाय ? अवश्य ही जयपाल के अवगुण के परिहार के लिए उसमें विशिष्ट द्रव्य की योजना की जानी चाहिए ।

इस दृष्टि से उपयोगी एक कल्प सुख विरेचनी वटी है । नागपुर के सुप्रसिद्ध वैद्यभूषण पंडित गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी से प्राप्त इस योग का उल्लेख वैद्य वाचस्पति वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने अपने 'सिद्धयोग संग्रह' (वैद्यनाथ प्रकाशन) में किया है । इसकी निर्माण-विधि यह है । जयपाल के बीज फोड़कर उनकी मज्जा (सींगी) की दो-दो दालें कर लें । ऐसी २६ दाल (दल) रात को एक कलईदार पात्र में उबलते पानी में छोड़कर रात भर ढँक कर रख दें । प्रातः दलों को हाथ से मसल, जल से धो खरल में डाल खूब घोंटे । (धोने तक की क्रिया में बीज-गत जिह्वा (अड़कुर) स्वयं निकल जाती है ।) दल अच्छी तरह पीस जाने पर उसमें दो तोला शुष्ठी का कपड़छान चूर्ण मिला जल से तीन घंटा मर्दन कर, दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें । रात को सोते समय एक गोली शीतल जल से निगलने से प्रातः एक दस्त साफ हो जाता है । (शुष्ठी जयपाल के अवगुण का परिहार करती है ।)

जैसा कि नाम से द्योतित है इस वटी से प्रातः अच्छी एक मलप्रवृत्ति बिना कष्ट हो जाती है । किसी-किसी को रात को भी उठना पड़ता है । किसी को एक के स्थान पर दो या अधिक वटियाँ देनी पड़ती हैं । इनसे मल प्रवृत्ति न हो तो यथावश्यक मुख द्वार से स्नेहन, फलवर्त्ति या वर्त्ति का उपयोग करें । उदर पर स्नेहन-स्वेदन करें । फल-वर्त्ति के अनेक पाठ हैं । कई वैद्य इन दिनों गिलसरीन- (शेष पृष्ठ १०६ पर)

नामूलं लिख्यते किंचिच्चानपेक्षितमन्यते

२८—छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

हृद्रोग^१

हृद्रोग का निदान और संप्राप्ति^२

हृद्रोग का निदान गुल्म के समान ही है। वेगावरोध ; उष्ण-रूक्ष, गुह, कषाय, तिक्त, तीक्ष्ण तथा असात्म्य अन्नपान

१—देखिये—च० सू० १७।३०-४०; च० चि० २६।७७-१०३; सु० उ० ४३; अ० ह० नि० ५।३८-४५।

२—प्रवेशक : आधुनिकों ने हृद्रोग के प्रथमतः दो विभाग किये हैं। १—जिनमें हृदय की कपाटिका आदि के स्वरूप में परिवर्तन हो जाते हैं। इन्हें आर्गेनिक या स्ट्रक्चरल (Organic or Structural) हृद्रोग कहते हैं। २—जिनमें हृदय के किसी भाग की रचना में कोई विकृति नहीं होती। उन्हें फंक्शनल (Functional) हृद्रोग कहते हैं। इस प्रकरण में कहे हृद्रोग नवीनों के द्वितीय वर्ग के हृद्रोग हैं। प्रथम वर्गोक्त हृद्रोगों का वर्णन प्राचीनों ने कदाचित् हृदय-विद्रधि (यथा हृदय की कपाटिका आदि में पाक—इन्फ्लेमेशन होकर होने वाले विकार); हृदय-गुल्म (यथा, संभवतः डायलेटेशन का उल्लेख वातिक हृदय-गुल्म के नाम से ; एवं हृदयधराकला का पाक होकर उसके अवकाश में द्रव-संचिति—पेरी कार्डाइटिस विय इफ्युजन—Pericarditis with effusion—का कफज हृदय-गुल्म नाम से) इत्यादि रूपों में किया है।

इन भेदों के विषय में चिकित्सा व्यवहार में यह विशेषतः स्मरण रखना चाहिए कि यों नवीनों ने भी कहा है कि रचनात्मक हृद्रोग पीड़ित रोगी कोई चार-पाँच प्रतिशत होते हैं, जब कि पंचानवे-छियानवे प्रतिशत हृद्रोगी द्वितीय वर्ग के ही पाये जाते हैं। तथापि ग्रन्थों तथा भाषणों में वक्तव्य की अधिकता के कारण प्रथम वर्ग का विस्तार द्वितीय

का अतियोग ; विरुद्ध भोजन, अध्यशन, अजीर्ण ; आम, कर्शन (कृश करने वाले कारण), अतिश्रम ; वमन, विरेचन तथा बस्तिका अतियोग ; गदातिचार (रोगों का असम्भक् उपचार); (मानस या शारीर) आघात ; शोक, अति चिन्ता, भय, त्रास—इन कारणों से दोष

वर्ग की तुलना में रोगियों की संख्या के विपरीत अनुपात में होने से नवीन चिकित्सक को प्रथम स्मरण पहले वर्ग के रोग का ही हो आता है। ये रोग वस्तुतः चिन्तनीय होने से रोगी को और घबराहट में डाल देते तथा रोग के लक्षणों में सुतरां वृद्धि करते हैं।

दूसरी निर्देशनीय सचाई इस विषय में यह है कि, नव्य मत से प्रथम-वर्गोक्त हृद्रोग का निर्णय करने पर भी आयुर्वेदीय चिकित्सा का अवलम्बन किया जाय तो उसमें बड़ी सिद्धि मिलती है। सचित्र आयुर्वेद के जनवरी, १९५३ के अङ्क में निकला वैद्य प्रभुभाई का हृदय-विद्रधि लेख इस विषय का उत्तम निदर्शन है। इसी अङ्क में इसी रोग पर एक अन्य अनुभव प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रसंग में सहयोगी पाक्षिक 'आयुर्वेद-पत्रिका' में कुछ मास पूर्व प्रकाशित लेख को स्मरण किया जा सकता है। इसमें हृदय के विस्तार (डायलेटेशन) की एक रुग्णा की सफल चिकित्सा हृदय-चिन्तामणि द्वारा होने का विवरण था। पाश्चात्य चिकित्सा में यह विकार असाध्य माना जाता है—विस्तृत हृदय कभी अपनी पूर्वावस्था में नहीं आ सकता यह मन्तव्य है। निदान और चिकित्सा तीन डॉक्टरों द्वारा की गयी थी, जो आयुर्वेद के प्रबल समर्थक थे।

हृद्रोगों के प्रसंग में एक अनुमान लिखने योग्य प्रतीत होता है। महाधमनी के एन्युरिज्म आदि रोगों का उल्लेख भी कदाचित् प्राचीनों ने हृद्रोग के वर्णन में किया है। आयुर्वेदोक्त चिकित्सा का उपयोग कर निर्णय करना चाहिए।

कुपित हो रस को दूषित कर उसके साथ हृदय में पहुँच, हृदय में विभिन्न प्रकार की बाधा (क्लेश) उत्पन्न करते हैं। इसे हृद्रोग कहते हैं।

हृद्रोग के भेद

हृद्रोग पाँच प्रकार का है : पृथक् तथा समस्त दोषों से चार और कृमियों से एक।

हृद्रोग के सामान्य लक्षण

वैवर्ण्य (वर्णनाश), मूर्च्छा, ज्वर, कास, हिकका, श्वास^१, मुख-वैरस्य, तृषा, प्रसोह (इन्द्रियों की विषय-ग्रहण में मन्दता), वमन, कफोत्क्लेश, अरुचि इत्यादि।

हृद्रोगों के विशिष्ट लक्षण

वातज हृद्रोग—हृदय की शून्यता, हृद्द्रव^२, शोष, स्तम्भ^३, मोह; हृदय में आघात (जाने कोई हृदय को विस्तृत करता हो ऐसी प्रतीति), तोद, भेद, मथन, दारण स्तोदन या पाटन के सदृश वेदनाएँ; हृदय में शूल; अकस्मात् दीनता, शोक, भय^४, शब्दासहिष्णुता, कम्प^५,

१—यह नवीनों का कार्डीअक अस्थमा (Cardiac Asthma) है। हृदय के दौर्बल्य आदि के कारण नील (दूषित) रक्त की शुद्धि सम्यक् न होने से यह होता है। कालक्रम से दक्षिण निलय (वेंट्रीकल) विस्तृत होकर श्वास में और वृद्धि होती है।

२—Palpitation—पेल्लिपटेशन; दिल की धड़कन।

३—इसमें हृदय के रस-रक्तवह स्रोत (कारोनीरी आर्टरीज—Coronary arteries) का संकोच (स्तम्भ) होकर हृदय जकड़ा हुआ-सा प्रतीत होता है। अंग्रेजी में इसे एन्जाइना (Angina) कहते हैं। आगे कहे शूल, दीनता आदि इसके अङ्गभूत लक्षण हैं। ये कभी स्वतन्त्र भी होते हैं। स्तम्भ आयुर्वेद-मत से वातिक रोग है। कभी रस-रक्त का वर्त (जमाव) होकर भी हृदय की पेशी को इसी प्रकार रस-रक्त की प्राप्ति रुक जाने से ऐसे ही लक्षण होते हैं। पिछले लेखों में इसका किंचित् विस्तार आ चुका है। यह भी वातज विकार है।

४—जीर्ण रोगों (संतत ज्वर आदि) में रक्त, शुक्र आदि धातुओं की क्षीणता होकर हृदय और उसमें रहने वाला मन क्षीण होकर दुर्बल होता है, जिससे भय (मृत्यु आदि का भय या विविध आशङ्काएँ) होता है।

५—जठराग्नि (लवणाम्ल) या धात्वग्नि-विशेष

वेष्टन, श्वास-रोध, अल्प निद्रा—ये वातिक हृद्रोग के लक्षण हैं।

पित्तज हृद्रोग—तृषा, दाह, ओष (ताप) चोष, हृदय-क्लम, धूमोद्गार^१, मूर्च्छा, स्वेद, मुखशोष, भ्रम, अम्लरस पित्त की वान्ति, पीतता, ज्वर, तम, दूयन (वेचनी) संत्रास—ये पित्तिक हृद्रोग के लक्षण हैं।

कफज हृद्रोग—गौरव (हृदय पर पत्थर रखा हो ऐसा भार प्रतीत होना), कफ स्राव, अरुचि, स्तम्भ (जड़ता), अग्निमाँदव, मुखमाधुर्य, कास, तन्द्रा, निद्रा, आलस्य, ज्वर, वमन—ये कफज हृद्रोग के लक्षण हैं।

त्रिदोषज हृद्रोग—इसमें तीनों दोषों के लक्षण होते हैं।

कृमिज हृद्रोग—त्रिदोषज हृद्रोग हो और रोगी मधुर, गुरु अन्न का सेवन करे तो कृमिज हृद्रोग होता है। इसमें उत्क्लेश, छीवन (थूक में कफ पड़ना), तोद, शूल, हल्लास, तम (अन्धकार-दर्शन या श्वास), अरुचि, श्यावनेत्रता, (आँखों के चारों ओर कालापन) शोष, तीव्र पीड़ा, कण्डू, क्लेद (त्वचा आदि में चिकनापन), कृमि तथा हृदय में कर्तनवत् पीड़ा ये लक्षण होते हैं। यह भयंकर तथा आशु-कारी रोग है। इसमें तत्काल चिकित्सा आवश्यक है^२।

चुल्लिका-ग्रन्थि (थायरॉयड) के स्राव का प्रकोप (हाथ पर थाय रॉयडिज्म) होकर रस-रक्त की क्षीणता (रस-क्षय) होकर हृदय तथा अन्य अवयवों में कम्प होता है। रोगी को दोनों ओर हाथ फैलाकर अंगुलियाँ दूर कराकर देखें तो अंगुलियों में कम्प दृष्टिगोचर होगा। अल्प मात्र कम्प हो तो धूप में रोगी को खड़ा करें। कम्प छाया में स्पष्ट दिखाई देगा।

१—Offensive eructation—ऑफेन्सिव (दुर्गन्ध युक्त) इरक्टेसन; या—Belching of fowl smelling gases—बेल्लिचिंग आफ फाउल स्मेलिङ्ग गैसेज।

२—कहना मुश्किल है, नव्य मत से कृमिज हृद्रोग का क्या स्वरूप है? संभव है, आम पक्वाशय में कृमियों के कारण हुए अवरोध के कारण मल का कोथ, प्राणदा नाडी (Vagus Nerve—वेगस नर्व) तथा स्थानीय नाड़ी सूत्रों का क्षोभ, कृमिज पाण्डु रोम से अन्य शरीरावयवों के सदृश हृदय का दौर्बल्य आदि कारणों से हुआ हृद्रोग प्राचीनों का कृमिज हृद्रोग हो। बच्चों में गण्डूपद कृमि के शिशु (Larva—लार्वा) शरीर में संचरण

हृद्रोग के उपद्रव

दोषजन्य हृद्रोगों में भ्रम, क्लम, साद, शोष एवं कृमिज हृद्रोग में कफज कृमियों के समान उपद्रव होते हैं।

हृद्रोग की चिकित्सा

सामान्य चिकित्सा-सूत्र : प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः प्रकुप्य-

त्यामाशये शोधनमेव तस्मात्।

कार्यं तथा लङ्घनपाचनं च,

सर्वं कृमिघ्नं कृमिहृद्गदे च॥

च० चि० २६।१०३।

—अर्थात् चिकित्सा की दृष्टि से हृद्रोगों के दो भेद करने चाहिए दोषज हृद्रोग तथा कृमिज हृद्रोग। दोषज हृद्रोगों में प्रायः स्थिति यह होती है कि विभिन्न कारणों से वायु अवरुद्ध होकर आमाशय में^२ वृद्धि को प्राप्त होता है तथा हृदय संबन्धी लक्षण उत्पन्न करता है^३। अतः इसमें शोधन नाम (यात्री) यथावश्यक वमन, विरेचन और बस्ति तथा लङ्घन-पाचन द्रव्यों का व्यवहार करना चाहिए। कृमिज हृद्रोग में कृमि के उपाय करने चाहिए^४।

करते हुए प्राणवह स्रोतों में पहुँचते हैं तो उनके कारण हुए क्षोभ से जैसे सहसा श्वास-कास-प्रधान सन्निपात ज्वर (ब्राँडो न्यूमोनिया) होता है, वैसे हृदय के भी लक्षण होते हैं। जो हो, कृमिज हृद्रोग देखा अवश्य जाता है। हृद्रोगियों में, विशेषतया आनूप देशों में जहाँ कृमि रोगी प्रायः पाये जाते हैं इस कारण को अवश्य लक्ष्य में रखना चाहिए।

१—जैसा कि पहले कह आये हैं, यह चिकित्सा नवीनों के 'फंक्शनल' हृद्रोगों पर चरितार्थ है—उन्हें लक्ष्य में रख कर लिखी गयी है।

२—डॉ० ब्रनर्जी सभी कोष्ठाङ्गों के दो विभाग करते हैं—आमाशय और पक्वाशय। उनके मत से यहाँ फुफ्फुस हृदय आदि का ग्रहण करें यह प्रश्न है?

३—प्रकुपित वातादि दोष हृदय पर साक्षात् पीड़न (Direct Pressure—डाइरेक्ट प्रेशर) द्वारा तत्तत् लक्षण उत्पन्न करते हैं। साथ ही प्राणदा नाड़ी को क्षुभित कर परम्परया भी हृद्रोगोक्त लक्षण उत्पन्न करते हैं। यह नाड़ी पचन-संस्थान के अवयवों तथा हृदय दोनों में जाती है। परिणामतया इन अवयवों की विकृति होने पर प्रति-संक्रम (रिफ्लेक्स—Reflex) से हृदय में भी क्षोभ होकर तद्गत लक्षण होते हैं।

४—मेरे एक सतीर्थ (सहपाठी) को सात-आठ

हृद्रोग की दोषानुसारिणी चिकित्सा

हृद्रोग वात-प्रधान हो तो रोगी को दशमूल क्वाथ से मदनफल चूर्ण देकर वमन करावें। वात और मल का अनुलोमन करानेवाले स्निग्ध विरेचन दें। आवश्यक हो तो बस्ति दें^१। शुण्ठी का उष्ण काथ दीपन, पाचन, अनुलोमन और विशेषतः हृद्रोगहर है। नाम यह अग्नि स्थान और समान वायु^४ को अपनी उष्णता और स्रोतों के विवृत (खुला) करने के सामर्थ्य के कारण प्राकृत स्थिति में लाता है तथा उसके द्वारा हृद्रोग को दूर करता है^२। पुष्कर मूल, शुण्ठी, पिप्पली, देवदारु, वचा, हिंगु, विभिन्न क्षार, शठी, पञ्चमूल, दशमूल आदि द्रव्य वातिक हृद्रोग में उत्तम हैं। पूर्व कथित द्विरुत्तर हिंवादि चूर्ण इन द्रव्यों का अति उत्तम समवाय है और हृद्रोग में उपयोगी है। शुण्ठी और देवदारु का काथ किंवा क्षीर पाक वातिक हृद्रोग में विशेष कार्य करता है। शुण्ठी पूर्व लिखित प्रकार से एवं देवदारु अपनी स्निग्धता और उष्णता से स्तब्ध हुए स्रोतों को विवृत करता है—उनका उद्घाटन करता है।

आहार में वातिक-हृद्रोगी को जीर्ण (पुराने) शालि, जाङ्गल रस, घृत, तथा वातघ्न द्रव्यों से साधित तैल दें।

पैत्तिक हृद्रोग—पित्त-प्रधान हृदय-रोग में विरेचन प्रथम विधेय है। पश्चात् मधुयष्टी और कटुरोहिणी^३

मास हृद्भव रहा। मिष्टान्न सेवन से प्रायः इसके वेग होते थे। अन्त को एक वेग के समय परीक्षा करते हुए चिकित्सक का ध्यान रोगी को हुई अन्नवृद्धि के प्रति गया। स्पष्ट ही उसके कारण कुपित वात हृद्रोग का कारण था, यह सिद्ध हो गया। शस्त्र कर्म से अन्नवृद्धि का उपचार करने पर हृद्रोग स्वयं शान्त हो गया।

१—समान वायु से नव्यमतोक्त तथा प्राचीन तन्त्र ग्रन्थोक्त स्थानीय नाड़ी चक्र (Nerve Plexuses—नर्व प्लेक्सेज) किंवा उनका प्रवर्तक वायु यहाँ अभिप्रेत है।

२—अनुमान है, शुण्ठी तथा अन्य उष्ण द्रव्य अपनी तीक्ष्णोष्णता के कारण हृदय के पोषक रस-रक्तवह स्रोतों को भी विवृत करते हैं—उनके स्तम्भ को दूर करते हैं; एवं हृद्ग्रह या हृच्छूल में क्रिया करते हैं।

३—कटुरोहिणी वत्सनाभ-वर्ग का उद्भिद् होने से शोधित वत्सनाभ के समान उत्तम हृद्य है। विशेषतया

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

१०५

का चूर्ण, सितोपला-जल के साथ दें। ये उभय द्रव्य हृद्य तो हैं ही, पित्त के शमन तथा विरेचन होने से पैत्तिक हृद्रोग के मूल का भी नाश करते हैं। अर्जुन का क्षीरपाक किवा अर्जुन, लघु पञ्चमूल, बला और मधूक (महुआ) का क्षीरपाक सितोपला-सहित पैत्तिक हृद्रोग में विशेष गुणावह है।

आहार में पैत्तिक-हृद्रोगी को द्राक्षा, सितोपला, घृत, बाङ्गल मांस, दूध, खजूर आदि दें।

श्लैष्मिक हृद्रोग—कफ-प्रधान हृद्रोगी को प्रथम वचा और निम्ब-कषाय देकर वमन करावें। त्रिफला, त्रिवृत् आदि विरेचन एवं बस्ति दें। लङ्घन विशेषतः करावें। आवश्यक हो तो स्वेदन करावें। कट्फल, शुण्ठी, देवदारु, प्रभाया, अतिविषा^१, पिप्पली, शठी, पुष्करमूल, वचा, अर्जुन^२ आदि द्रव्य गोमूत्र के साथ हृद्रोग में उत्तम हैं। व्यवहार में वाताधिकारोक्त देवदारु, शुण्ठी तथा अर्जुन का क्षीरपाक कफ-प्रधान हृद्रोग में प्रसिद्ध है।

त्रिदोषोत्थ हृद्रोग में लङ्घन तथा दोषों का तारतम्य देखकर तदनुरूप उपचार करें।

शृङ्ग हृद्रोग में प्रसिद्ध है। उष्ण होने से यह कफ-प्रधान हृद्रोग में विशेष उपयोगी है। इसे चून्ना ही शिला पर घिस कर (अनुपानतया) दें किवा भस्म रूप में दें^३। अभ्रक-भस्म के साथ प्रवाल^४ और पित्त-विरेचन गुण के कारण पैत्तिक हृद्रोग में। तित्काल के कारण रोचक-दीपक होने से कफ और वात के अनु-बन्ध में भी उपयुक्त है।

१—यह भी वत्सनाभ-वर्ग का द्रव्य है।

२—अर्जुन की क्रिया उसमें स्थित सुधा (केल्शियम) के कारण होती है। इसमें इस धातु के क्षार ४३ प्र० श० होते हैं। नव्य मत से सुधा हृदय की पेशी का संकोचक होने से हृदय के लिए बल्य होती है।

३—भस्म बनाने के पूर्व आरी से काटकर शृङ्ग के छोटे-छोटे खण्ड किये जाते हैं। यह एक कष्ट कर क्रिया है। सरल विधि यह है कि अभ्रक आदि का मारण करना तो समूचा शृङ्ग ही सीधा गाड़ दें। अग्नि के प्रभाव से वह मृदु हो जायगा।

४—केल्शियम के आयुर्वेदोक्त तथा अन्य-तन्त्रोक्त रोगों का प्रयोग उनके उष्ण और शीत गुणों को दृष्टि में रखकर करना योग्य प्रतीत होता है। शृङ्ग, कपर्द, शृङ्ग आदि

शृङ्ग चिरकाल से बंध हृद्रोग में देते आ रहे हैं। सम्प्रति बंध तिल पुष्पी^१ पत्र चूर्ण १ भाग, शृङ्गभस्म २ भाग का हृद्य चूर्ण नाम से १ गुञ्जा मात्रा में मधु के अनुपान से पुष्कल व्यवहार करते हैं। हृद्रोग के उपद्रव-भूत सर्वाङ्ग शोथ में आरोग्यवर्धनी के साथ हृद्य चूर्ण दिया जाता है। जीर्ण कास में जब कफ अति पिच्छिल और पुष्कल पड़ता हो और हृदय दुर्बल हो तो इस चूर्ण में शुष्क वनपलाण्डु^२ का चूर्ण भी एक भाग मिला दें। हृद्य चूर्ण के प्रयोग काल में रोगी को हल्लास, उत्तलेश और वमन हो जाय तो कुछ काल इसका प्रयोग स्थगित कर दें^३।

रस कल्पों में नीचे लिखे कल्पों का व्यवहार विशेष होता है। चिन्तामणि रस (पारद, गन्धक, अभ्र, लोह, वङ्ग, शिलाजतु, अम्बर, सुवर्ण, मुक्ता, रौप्य—चित्रक, भृङ्गराज और अर्जुन की सात दिन भावना; एक-एक रत्ती की गोली); 'प्रभाकर वटी' (माक्षिक, लोह, अभ्र, तुगाक्षीरी, शिलाजतु—अर्जुन की भावना; ४ रत्ती की गोली); जवाहर मोहरा, याकूती और ब्राह्मीवटी (तीनों के प्रधान द्रव्य प्रायः—माणिक्य, पन्ना, मुक्ता, प्रवाल, संगेशब, तृणकान्त—कहरबा, रौप्य, सुवर्ण, अबरेशम—रेशम के कीड़े का कोश, शृङ्ग, कस्तूरी, अम्बर, चन्द्रोदय, केशर, अभ्रक, अक्कीक, अगर तथा कतिपय उद्भिद); मकरध्वज वटी^४, हृदयार्णव (पारद, गन्धक, ताम्र);

उष्ण तथा प्रवाल, मुक्ता आदि शीत हैं। में समझता हूँ, प्रवाल मुक्ता आदि शीत द्रव्यों का व्यवहार कफ-प्रधान वय (वात्य) तथा रोगों में न करना चाहिए। या—अर्कक्षीर, अर्कपत्र-स्वरस, कुमारी-स्वरस आदि की भावना देकर जिस का शीत गुण शान्त कर दिया गया हो ऐसे प्रवाल आदि का उपयोग करें। पैत्तिक रोगों या वय में गुलाबजल आदि से बनायी पिष्टि आदि का व्यवहार योग्य है।

१—संस्कृत नूतन नाम तिलपुष्पी। यह हिमालय में स्वयं उत्पन्न होती है। कुमाऊँ, नीलगिरि आदि में कृषि भी की जाती है। यह हृदय की अवसादक है। शृङ्ग इसके अवगुण का परिहार और गुण में वृद्धि करता है। अंग्रेजी नाम डिजिटेलिस।

२—सिल्ला (Scilla); संस्कृत पर्याय—कोलकन्द।

३—विशेष प्रतिपत्ति के लिए देखिये सिद्धयोग संग्रह।

४—सिन्धु आयुर्वेदिक फार्मसी से प्राप्य। अनुपान

कल्याण सुन्दर (रस सिन्दूर, अभ्र, रौप्य, ताम्र, स्वर्ण, हिंगुल—चित्रक तथा हस्तिशुण्डी की भावना)। अन्य कल्प सुलभ न हो तो रस सिन्दूर या कच्चा (अशोधित) हिंगुल ही मधु और आर्द्रक स्वरस के अनुपात से दें। आवश्यक हो तो पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के अन्तर से दो-तीन बार दें। शीताङ्ग में भी यह उत्तम है।

औद्धिद कल्पों में अर्जुन के योग यथा—अर्जुनारिष्ट, अर्जुन क्षीर या पार्थाद्यरिष्ट तथा बलादिघृत का उपयोग होता है।

कृमिज हृद्रोग में उक्त कल्प भी दें। सहैव कृमिहर उपाय करें। तीन दिन स्निग्ध भोजन करा पश्चात् विरेचन दें। अनन्तर चिरकाल तक विडङ्ग का औषध और आहार रूप में प्रचुर सेवन कराएँ।

आमवात

प्रवेशक—प्रायः नव्य मत में जिसे 'रूमेटिज्म' कहते हैं उसे प्राचीनों का आमवात कहा जाता है। वस्तुस्थित्या रूमेटिज्म के लिए एक नाम आयुर्वेद में नहीं है। सामान्यतया सर्वाङ्ग-शूलादि लक्षण-साम्य से इसे आमवात कहते हैं। परन्तु वृद्धत्रयी में यह नाम नहीं पाया जाता। उनमें 'संधिगत वात' या 'संधिवात' नाम से एक रोग का उल्लेख है। कई विद्वान् इसे आधुनिकों का 'रूमेटॉयड आर्थ्राइटिस' मानते हैं। आमवात के लक्षणादि माधव-कर ने दिये हैं। संग्रह तथा हृदय में प्रक्षिप्त श्लोक हैं, जिन में साम तथा निराम वायु के लक्षण लिखे हैं। ये रूमेटिज्म के लक्षणों से कुछ मिलते हैं। रूमेटिज्म में

द्रव्यों की इसमें भावना होने से केवल जल से यह दी जा सकती है।

१—Rheumatoid arthritis इस रोग के लक्षणादिक नवीनों के ग्रन्थों में देखिए। रूमेटिज्म से होनेवाले लक्षणों में तथा इसमें स्मरणीय भेद यह है कि रूमेटिज्म में कालान्तर में हृदय की विकृति हो जाती है। मुंबई की 'एलासिन कंपनी' नामक आयुर्वेदिक फार्मसी की बनायी 'रूमोफन' नामक वटिकाएँ रूमेटॉयड आर्थ्राइटिस और अन्य संधि-शोथों में अति उत्तम सिद्ध हुई हैं। अच्छे-अच्छे डाक्टरों ने भी इन का प्रयोग कर अपने पत्रों में इस पर लेख प्रकाशित किये हैं। यह महायोगराज, रास्नादि क्वाथ तथा सुवर्णभस्म का संयुक्त कल्प है।

हृदय के लक्षण उपद्रव-रूप में उत्पन्न होकर स्वतन्त्र रोग के रूप में परिणत हो जाते हैं। माधव ने आमवात के लक्षणों में 'दौर्बल्यं हृदयस्य च' यह एक लक्षण दिया है। परन्तु आधुनिकों ने रूमेटिज्म में होनेवाली हृदय-विकृति के स्वरूप हृदय के भिन्न-भिन्न भागों के शोथ (कार्डाइटिस) के रूप में दिये हैं। उससे इन शोथों को प्राचीनों का हृदय-विद्रधि मानना उचित प्रतीत होता है। विद्रधि आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार की है। आभ्यन्तरों में एक हृदय की विद्रधि है। दोनों प्रकार की विद्रधियाँ प्रमेह तथा उसके उत्पादक कारणों से होती हैं; तथा अन्य भी कारणों से होती हैं।

हृदय-विद्रधि में हृदय का घट्टन (पीड़ा, जकड़ाहट), तम, प्रमेह (इन्द्रियों की विषय-ग्रहण में मन्दता से प्रवृत्ति), कास, श्वास और हृदय में शूल—ये लक्षण होते हैं। य प्रसाध्य मानी गयी है।

इस प्रकार आमवात का विचार करते हुए तीन रोगों के लक्षण तथा चिकित्सा ध्यान में रखने चाहिए : आमवात या साम वायु, संधिवात तथा हृदय-विद्रधि। इनमें हृदय-विद्रधि के लक्षण ऊपर दिये हैं। शेष रोगों के लक्षण अधोलिखित हैं।—

संधिगत वात या संधिवात में संधि में ऐसा शोथ होता है कि वह स्पर्श से वायु से भरी पखाल (मशक) जैसा प्रतीत होता है। सन्धियों में यों भी शूल होता है; पर प्रसारणाकुञ्चन (चेष्टा) से वह बढ़ जाता है।

साम वायु के लक्षण ये हैं—विबन्ध (विशेषतः

१—आम के दो भेद—

आम के जितने भी प्रसिद्ध लक्षण हैं, सबमें जठराग्नि दौर्बल्य से सम्यक् पक्वता को न प्राप्त तथा आमाशयगत (आमपच्यमानाशयगत) आम का ही उल्लेख है। पर आमपच्यमानाशयगत आम से अन्य अङ्गों में रोगोत्पत्ति हो ही सकती है? कारण, जो अन्नपान जठराग्नि के दुर्बल होने से रसरूप को प्राप्त नहीं होता, अतएव जो आम-संज्ञक उसका महास्रोत में रस-रक्तवह स्रोतों से ग्रहण होना संभव न होने से शरीर में पहुँचना और वहाँ रोगोत्पत्ति करना शक्य ही नहीं। सो शरीर के इतर भागों में जिस रोगजनक आम का निर्देश है वह अवश्य ही धात्वग्नियों की दुर्बलता से अपक्व रहे रस धातु का ही द्योतक है। वस्तुतः

मल तथा वायु का संग—अप्रवृत्ति), मूखादि स्रोतों का लेप, अनिमान्द्य, तन्द्रा, अन्न कूजन ; कालक्रम से शरीर के विभिन्न अङ्गों में तीव्र वेदना, शोफ और निस्तोद^१ ; ये सभी-कभी एक साथ भी होते हैं। प्रातः, रात्रि तथा मेघ-युक्त काल में लक्षणों की वृद्धि होती है। साथ ही आम होने के कारण स्नेहन उपचारों से भी रोग की वृद्धि होती है^२।

दिये चक्रपाणि और डहहन के वचनों में आम के प्रथम भेद के स्थान पर द्वितीय भेद के ग्रहण का विधान है भी। देखिये—“आम एवेति इवार्थोऽयमेव शब्दः, रक्तादि रूपेणापरिणततया अपक्व इवेत्यर्थः ; ननु ‘आमाशयस्थः कायामेवैकव्यादविपाचितः’ इत्यादिनोक्तः ; तस्य रोग हेतु-तयाऽऽमाशयस्थत्वेन च मेदो जनकत्वायोगात्” —सु. सू. १५-३२ पर चक्रपाणि। “कथं रसश्चापक्वश्चेति विरोधनीय वचनम् ? नह्यपक्वो रसव्यपदेशं लभते। सत्यम् जाठरेणानिना रसः कद्भावेन कृत एव, किंतु धात्वग्निभिरपाका-राम इत्युच्यते”—उसी स्थल पर डहहन।

तर्क से भी आम के ये दो भेद होना सिद्ध है। कारण, वंचक में धात्वग्नियों का बलावल जठराग्नि के बलावल के अधीन होता है, यह कहा गया है। सो, जठराग्नि दुर्बल हो तो जो यत्किंचित् रस बनता है शरीर में उसके पहुँचने पर धात्वग्नियों की दुर्बलता से उसका भी पूर्ण पचन नहीं होता।

अलबत्ता, आम-पाच्यमानाशय गत आम भी अपक्व होने के कारण शुक्तरूप (सिरके के समान अम्ल) जिन सूक्ष्म द्रव्यों में परिणत होता है वे अपनी सूक्ष्मता के कारण रस-रक्तवह स्रोतों से गृहीत हो कर शरीर में पहुँच विष-गुण विकार उत्पन्न करते हैं। तथाहि—अपच्यमानं शुक्तत्वं आत्यन्तं विषरूपताम्—च० चि० १५-४४। नव्य मत से ये विष द्रव्य तत्-तत् जीवाणुओं की अन्नपान पर क्रिया होने से उत्पन्न हुए सेन्द्रिय अम्ल हैं। सिरका भी विशिष्ट जीवाणुओं की क्रिया से ही बनता है ; सो चरक ने इन अम्लों को ठीक ही शुक्तरूप कहा है।

१—शोथ एक समय एक अङ्ग (सन्धि) में रहता है ; वह शान्त होने पर अन्य अङ्ग में होता है। यह आम अन्य कारणों से हुए संधिशोथों से इस की विशेषता—आवर्तक चिह्न—है।

२—नव्य मत से संधिशूल, नाडीशूल (न्यूरेल्जा)

इसके विपरीत निराम वायु विशद नाम मूखादि को शुष्क रखनेवाला, रूक्ष—त्वचादि को रूक्ष रखनेवाला, विबन्ध रहित, अल्प वेदना वाला एवं स्निग्ध उपचारों से शान्त होने वाला होता है^१।

आमवात का निदान तथा संप्राप्ति

विभिन्न कारणों से अग्नि के मन्द होने से जो अन्नपान पूर्णतया रस-रूप में तथा रस इतर धातुओं के रूप में परिणत नहीं होता उसे आम कहते हैं^२। पुरुष इस आम से पीड़ित हो तथापि विरुद्ध आहार करे, किंवा विरुद्ध (अहिता) चेष्टा करे, किंवा मन्दाग्नि-पीड़ित होता हुआ निश्चल रहे—किसी प्रकार का श्रम न करे ; स्निग्ध भोजन करके व्यायाम करे—ऐसी स्थिति में वह आम वायु की प्रेरणा से और भी दूषित हो धमनियों में तथा आमाशय, संधि आदि कफ-स्थानों में पहुँचता है। अग्नि की मन्दता के कारण कुपित हुए वात, पित्त और कफ से यह आम और भी दूषित, विभिन्न वर्णवाला तथा अति पिच्छल होकर स्रोतों में भी अभिष्यन्द उत्पन्न करता है। साथ ही हृदय में दौर्बल्य और गौरव उत्पन्न करता है। यह आम अनेक व्याधियों का आश्रय तथा बड़ा घोर है।

व्युत्पत्ति

इस रोग में आम तथा वात एक साथ कुपित होकर त्रिक (कटि के नीचे का भाग ; एवं मन्या और अंस की संधि) तथा अन्य संधियों में प्रविष्ट होकर उन्हें स्तब्ध (कठिन और निश्चल) कर देता है। अतः इस रोग को आमवात कहते हैं।

सामान्य लक्षण

अङ्गमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, गौरव, ज्वर, अजीर्ण, अङ्गों में शोथ।

या मांसशूल (मायेल्ला) निदान करके भी उसकी सामता निरामता जानना व्यवहार में उपयोगी है।

१—साम तथा निराम वायु के ये लक्षण जानने के लिए देखिये—अ० ह० सु० १३।

२—नव्य मत से आम का अर्थ है—अन्नपान का पूर्ण पचन हो कर अन्त में जो मल द्रव्य बनने चाहिए वे न बन कर मध्यवर्ती द्रव्य (Intermediary Product —इंटर मीडियरी प्रोडक्ट) बनें वे आम हैं। उभय मत से आम का विचार जानने के लिए देखिए मत्कृत आयुर्वेदीय क्रियाशारीर।

अति वृद्धि होने पर लक्षण

सर्व रोगों में यह आमवात सबसे अधिक कष्टदायी है। यह जब प्रकुपित (अति वृद्धिगत) हो जाता है तो हाथ, पैर, शिर, गुल्फ, त्रिक (कटि और मत्स्यांस सन्धि), जानु तथा ऊरु की संधियों में वेदना-सहित शोथ उत्पन्न करता है। जिस स्थान में दोष पहुँचता है वहाँ अत्यन्त वेदना होती है। ऐसा लगता है जैसे बिच्छुओं ने काटा हो। अग्नि की दुर्बलता, प्रसेक, अरुचि, गौरव, अनुत्साह, वरस्य (मुख का स्वाद फीका लगना), दाह, बहुमूत्र, कुक्षि में कठिनता तथा शूल, निद्रानाश, तृषा, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृद्ग्रह मल-बन्ध, जड़ता (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की विषयों में न्यून प्रवृत्ति), अन्न कूजन, आनाह तथा अन्य कष्ट कर उपद्रव।

दोष-भेद से चिह्न

पित्ताधिक आमवात में दाह तथा राग (रक्तिमा) विशेष होते हैं; वाताधिक में शूल; कफाधिक में शरीर में जड़ता, गुरुता तथा कण्डू विशेष होते हैं।

साध्यासाध्यता

एक दोषानुबन्ध युक्त आमवात साध्य, द्विदोषानुबन्ध युक्त याप्य तथा त्रिदोषज जिसमें सर्वदेह व्यापी शोथ होता है वह कष्ट साध्य होता है।

आमवात की चिकित्सा

चिकित्सा-सूत्र : लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥

आमवात में (उक्त तीनों विकृतियों में) सामान्य चिकित्सा-सूत्र यह है—लङ्घनं स्वेदनं, कटु-तिक्त द्रव्य, दीपन, विरेचन, उष्ण स्नेह और वस्ति।

१—आमवात और सन्धिवात में लङ्घन अत्यन्त उपयुक्त है। निसर्गोपचारक इन रोगों में इस उपचार तथा स्वेदन का अवलम्बन कर यश प्राप्त करते हैं। वैद्यों को पुनः इसे अपनाना चाहिए। क्षुधा दीप्त न हो तबतक केवल उष्ण जल पर रोगी को रखना चाहिए। पश्चात् मण्ड, यूष आदि क्रम से रोगी को सात्त्व्य आहार पर लाना चाहिए। हृदय के लक्षण (प्रतिसरण-रीगजिटेसन) में भी इस से गुण होता है। यरोडा जेल में महात्मा गांधी द्वारा चिकित्सित वर्षों के सन्धिवात रोगी का प्रसिद्ध वृत्तान्त इस प्रसंग में स्मरण किया जा सकता है।

तीनों विकारों में अल्प वस्तव्य होने से प्रथम हृदय-विकृति लेता है।

हृदय-विकृति की चिकित्सा में भी द्रव्य ऐसे ही लेते चाहिए जो सामता के भी विरोधी हों। विद्रधि में सामान्यतया नीचे लिखे द्रव्य दिये जाते हैं—वरुण, अर्जुन, विष्णु, कर्कट शृङ्गी, पुनर्नवा, बृहती, कण्टकारी, गुग्गुलु, शुण्ठी देवदारु, त्रिवृत्। इनमें अर्जुन, शुण्ठी और देवदारु हृदय-रोग में भी उपकारी हैं तथा आमवात में भी लाभ करते हैं। इनका क्षीरपाक हृदय रोग के लिए उत्तम है। सानुपात चन्द्रोदय उक्त क्षीरपाक-सहित दिया जाय तो हृद्रोग, हृदय-दौर्बल्य तथा आमवात इत्यादि में उत्तम है। सानुपात चन्द्रोदय का पाठ यह है : कूपी के तल में स्थित सुवर्णभस्म १ भाग, मकरध्वज ८ भाग, कर्पूर ८ भाग, लवङ्ग ८ भाग, केशर ८ भाग, जायफल ८ भाग, कस्तूरी १ भाग। सुवर्ण और मकरध्वज एकत्र मर्दन कर पश्चात् अन्य द्रव्य मिला एक दिन मर्दन करें। मात्रा—३-६ गुंजा।

अनुपान—मधु या पान का स्वरस।

आमयुक्त वात के कारण एकाङ्ग (एक या अधिक पेशी) या सर्वाङ्ग में वेदना हो तो उक्त चिकित्सा-सूत्र के अनुसार यथावश्यक विरेचन दें। लङ्घन कराएँ। पञ्च कोल-सिद्ध दूध दें। रुग्ण एकाङ्ग या सर्वाङ्ग पर स्वेद कराएँ। स्वेद के लिए अन्य द्रव्यों की अपेक्षया निर्गुण्डी उत्तम है। वेदना अधिक हो तो वातघ्न लेप लगाएँ। औषध में—

रसोन विश्व निर्गुण्डी क्वाथमामादितः पिबेत्।

नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥

—लशुन, शुण्ठी और निर्गुण्डी-पत्र का क्वाथ आमवात में सर्वोत्तम कल्प है। निर्गुण्डी सामान्यतया वातरोगों में उत्तम है। गृध्रसी आदि में भी यह क्वाथ

१—कुन्दरू २० तोला, आँबाहल्दी ४ तोला, एलु ५ तोला, हीराबोल ४ तोला, रेवन्दचीनी ४ तोला, गेरू १ तोला, श्वेत सरसों १ तोला, हिंगु १ तोला, उसारेवन्द १ तोला, अञ्जूरूत २ तोला, नाड़ी हिंगु (डीकामाली) २ तोला, मेदा लकड़ी ४ तोला, चन्द्रशूर (अहालिम) १ तोला, गुग्गुलु २ तोला, अलसी २ तोला, उशक २ तोला, मेथी २ तोला। सब का सूक्ष्म चूर्ण करें। जलमें सूक्ष्म पीस कर जहाँ पीड़ा हो या आघात लगा हो वहाँ स्पृश प्रलेप कर ऊपर रुई लगा दें (सिद्धयोग संग्रह)।

उपयोगी है। अथवा—समुद्रफल चूर्ण को निर्गुण्डी-पत्र-स्वरस की इक्कीस भावना देकर छायाशुष्क कर लें। आमवातिक वेदना, गृध्रसी, वृषणवृद्धि, ज्वर आदि में यह उत्तम कार्य करता है।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीर वन चारिणः।

एक एव निहन्ताऽलभेरण्डस्नेहकेशरी ॥

आमवात में एरण्ड-तैल सुप्रसिद्ध है। शुण्ठी या दशमूल क्वाथ में मिलाकर इसका सेवन करें। अथवा—दशमूल, गुडूची, एरण्डमूल, रास्ना, शुण्ठी, देवदारु—इनका क्वाथ; अथवा—रास्ना, गुडूची, आरग्वध-मज्जा, देवदारु, गोक्षुर, एरण्डमूल, पुनर्नवा—(रास्ना-सप्तक); अथवा—रास्ना, गुडूची, एरण्डमूल, देवदारु, शुण्ठी—(रास्नापञ्चक)—इन क्वाथों में एरण्ड तैल डालकर लें।

अथवा—सुखोष्ण जल से हरीतकी तथा शुण्ठी चूर्ण मिलित लें। या—गुडूची तथा शुण्ठी चूर्ण एकत्र लें। वैश्वानर चूर्ण (सैन्धव-२, यवानी-२, अजमोद-३, शुण्ठी-१, हरीतकी-१२ भाग) सुखोष्ण जल से आमवात, गुल्म आदि में लें। यह चूर्ण अग्निमान्द्य आदि विभिन्न उदर विकारों में बँधों में सुप्रसिद्ध है। अन्य योगों में—महारसोन पिण्ड (रसोन, सौवर्चल, अजमोदा, हिंगु, सैन्धव, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, दोनों जीरक, तिल तैल); रसोन-पिण्ड (रसोन—१२॥ सेर, तिल ०॥ सेर, हिंगु, त्रिकटु, यवक्षार, सर्जक्षार, पञ्चलवण, शतपुष्पा (सोआ), कुष्ठ, पिप्पलीमूल, चित्रकमूल, वनयवानी, यवानी, धान्यक प्रत्येक १ पल) आमवात तथा अन्य वातरोगों में प्रशस्त माने गये हैं। वातरोगों में प्रसिद्ध योगराज गुग्गुलु तथा महायोगराज गुग्गुलु रास्नादि क्वाथ के अनुपात से आमवात में भी उपयोगी हैं। महायोगराज गुग्गुलु, रास्नादि क्वाथ तथा सुवर्ण भस्म का पेटेण्ट कल्प रूमोफन (अलासिन कंपनी) आजकल अन्य पद्धतियों के चिकित्सकों में भी अच्छा प्रचार पा रहा है। सिंहनाद गुग्गुलु (विभिन्न वीपन-पाचन प्रक्षेप द्रव्यों के अतिरिक्त जयपाल बीज विशेष प्रमाण में—१००० नग) सुखोष्ण जल से दें। यह उत्तम अग्नि वीपन (अतएव आम पाचन), कोष्ठ शोधन, षलगुष्टिवर्धक तथा आमवातादि रोगों में उपकारी है।

रसों में महायोगराज गुग्गुलु के अतिरिक्त—उदय-भास्कर (प्रधान द्रव्य—ताम्र, हरताल, विष, शिलाजतु—

निर्गुण्डी, अण्ड, अरणी, भृङ्गराज की भावना); आमवातारि वटी (लोह, ताम्र, तुल्य, गुग्गुलु, त्रिवृत्, चित्रक); आमवातारि रस (पारद, गन्धक, त्रिफला, चित्रक, गुग्गुलु); वृद्धदार्वादि लोह (वृद्धदारु, त्रिवृत्, दन्ती—सर्वसम लोह); तथा लोह के अन्य विभिन्न प्रकार प्रचलित हैं।

सन्धिवात में भी उक्त रस तथा क्वाथ प्रसिद्ध हैं।

आमवात में पथ्यापथ्य

कफ वात नाशक रूक्ष पदार्थ, स्वेदन, लङ्घन, उष्ण स्नेहपान, चावल, यव, कुलत्थ, सामा, तक्र, लशुन, परवल, पुनर्नवा, निम्बपत्र, करेला, बैंगन, शिपु, उष्णोदक तथा अन्य तिक्त-कटु द्रव्य पथ्य हैं।

दही, मत्स्य, गुड़, दुग्ध, पोई, माष, कलाय, (मटर तथा खेसारी), पिष्टान्न, आनूप मांस, कफकर तथा पिच्छिल द्रव्य आमवात में अपथ्य हैं। (क्रमशः)

(पृष्ठ ६०१ का शेष)

सपोजीटरी का उपयोग करते हैं। यह मूल्यवान् और प्रायः परदेशी होने से देश के अर्थशास्त्र की दृष्टि से अनुपादेय हैं। बाहर की ओर से रुग्ण के अंगुष्ठ जितनी मोटाई की (करांगुष्ठनिभां वर्तिम्—चरक) कोणाकार वर्ति साबुन की बना उसे एरण्ड-तैल से लिप्त कर उसका व्यवहार अपनाने योग्य है। एक बार उपयोग कर इसे धोकर रखने में भी क्षति नहीं। अथवा फेंक दें।

किसी-किसी मृदुकोष्ठ रोगी में इस वटी से उत्क्लेश (मिचली), वमन और साटोप मल-प्रवृत्ति होती है। उनमें योग्य उपचार करें। एक सुलभ द्रव्य बेर की अस्थि की मज्जा है। मिले तो उसका उपयोग करें। इतर उत्क्लेशों में भी यह उपयुक्त है। योगरत्नाकर, वमनाधिकार में आये रसादिचूर्ण का यह एक अङ्ग है भी।

औषध-निर्मात्री संस्थाएँ अश्वकंचुकी आदि के समान इसे शर्करावगुण्ठित (शुगर-कोटेड) कर विक्रयार्थ प्रस्तुत कर सकती हैं। इससे विदेश से आनेवाले परगोलेक्स, केस्टोफीन, फिनाल्फेथेलीन आदि का आयात भी अटकाया जा सकता है। आयुर्वेदोक्त कई चूर्ण या क्वाथ सुकुमारों के लिए असेव्य होते हैं। उन्हें इस गोली का सेवन कराया जा सकता है। अनुभवी चिकित्सक इसका उपयोग अपने रोगियों पर कर मतामत देने की कृपा करें।

—:०:—

शीतला (चेचक)

वैद्य रामलखन मिश्र, आयुर्वेद विशारद

चेचक जैसे भयंकर बीमारी से बचने के लिए तीन अनुभवी वैद्यों ने अपने-अपने अनुभव और शास्त्रीय विचारपूर्ण लेख भेजे हैं, इनमें प्रथम हैं—वैद्य रामलखन मिश्र, आप श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना-निर्माण-केन्द्र के प्रधान और पीयूषपाणि वैद्य हैं, दूसरे—कविराज हरिनारायणजी कलकत्ते के प्रसिद्ध अनुभवी चिकित्सक तथा औषध-व्यवसायी हैं, तीसरे—लक्ष्मीनारायण चौरासिया-आगरा के हैं, आपकी लेखमाला “मातारोग” शीर्षक से सचित्र आयुर्वेद में बराबर छपते हैं। आशा है सचित्र आयुर्वेद के पाठक इनके अनुभव से अवश्य लाभ उठावेंगे। —स० संपादक

प्रायः भारतवर्ष, योरोप आदि देशों में व्यापक रूप से इस रोग का प्रसार है। परन्तु; हिंदुस्तान तो इस रोग का प्रधान केन्द्र ही है। यह भयंकर संक्रामक रोग है। राजयक्ष्मा, कुष्ठ रोग, खुजली आदि भी संक्रामक रोग हैं, परन्तु इनसे उतना अनिष्ट नहीं होता, जितना कि प्लेग (ताऊन), हैजा एवं चेचक से होता है। प्रचलित भाषा में चेचक के विभिन्न नाम एवं स्वरूप हैं। मसूरिका, बड़ी-माता, छोटी माता, रोमान्तिका, वसन्त, दुलारी माता, खसरा आदि सब शीतला के ही उपनाम हैं। अंग्रेजी में जल एवं पीप भरनेवाली बड़ी शीतला को स्मॉलपॉक्स तथा बिना जलवाली छोटी माता को चिकेन पॉक्स एवं रोमान्तिका और खसरा को मीझल्स कहते हैं।

उत्पत्ति

आयुर्वेद के मत से—कटु, अम्ल, लवण, खार पदार्थ की अधिकता, दूषित खाद्यान्न, अनियमित एवं परस्पर विरोधी पदार्थ का सेवन, दूषित जलवायु, पाप कर्म की अधिकता एवं क्रूर ग्रहों की दृष्टि आदि से शरीर के वातादि दोष प्रकुपित हो रक्त को दूषित कर नाना प्रकार की पिड़िकाओं को पैदा करना उत्पत्ति-कारण माना जाता है। पाश्चात्य चिकित्सानुयायियों के मत से यद्यपि अभी तक इस रोग का मूल कारण निश्चित नहीं हो सका है, फिर भी सूक्ष्म जीवाणु ही कारण माने जाते हैं। चेचक के दानों में जो पूय तथा खुरण्ड होता है, उसमें सूक्ष्म जीवाणु विद्यमान रहते हैं। ये जीवाणु जलवायु एवं खाद्य पदार्थों द्वारा एवं रोगी के श्वास प्रश्वास तथा वस्त्रादि के संसर्ग से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में समावेश

कर चेचक पैदा करने का कारण माना जाता है। वास्तव में इस प्रकार इस रोग का प्रसार होता है, इसमें सन्देह नहीं है। यह भी सत्य प्रतीत होता है कि रोग स्वतः शरीर में पैदा होने पर उतना भयंकर नहीं होता, जितना कि पूय एवं खुरण्डों के जहर के कीटाणुओं के प्रवेश से प्रबल होता है। अतः यह निर्विवाद है कि यह महान् औपसर्गिक (छुआछूत) का रोग है। यह सभी उम्रवालों को तथा सभी मौसम में होते देखा जाता है, परन्तु बच्चों को यह विशेष रूपसे होता है। वसन्त और ग्रीष्म—फरवरी और मार्च आदि महीनों में इसकी प्रबलता ज्यादा होती है।

रोग के प्रसार का कारण

इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में इस रोग का इतना अधिक प्रसार नहीं था, जितना कि आज है। इसके भी अनेक कारण हैं। सर्व प्रथम तो हमारे देश में शुद्ध खाद्य पदार्थ, उत्तम आचरण, एवं यज्ञादिक शुभ कर्मों का इतना अभाव होता जा रहा है, जो किसी से छिपा नहीं है। दूसरे इस रोग की चिकित्सा के विषय में जो अज्ञानता एवं भ्रामक विचार प्रचलित हैं, वह रोग वृद्धि में कम सहायक नहीं है। प्रायः चेचक में चिकित्सा करना बहुत खतरनाक माना जाता है। केवल देवी की अर्चना, बन्दना, पूजन, पाठ, हवन आदि ही इस की सफल चिकित्सा मानी जाती है। क्योंकि; शीतला स्तोत्र में लिखा है कि ‘न मन्त्रो नौषधं किञ्चित् पाप रोगस्य विधत्ते। त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम्॥’ परन्तु; यह उनकी भयंकर

भूल है। जहाँ तक नियम-संयम, पूजा-पाठ आदि से रोग की शान्ति हो वहाँ तक तो चिकित्सा न करना श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रायः संयम एवं उचित उपचार से बहुधा चेचक स्वयं ठीक होते देखा जाता है, परन्तु जब कि चेचक बिगड़ जाता है और विविध उपद्रव होकर रोगी कालकवलित होने लगता है, उस समय चिकित्सा न करना सिवाय मूर्खता के और क्या कहा जा सकता है? हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष बिना चिकित्सा के हजारों व्यक्ति मरते देखे जाते हैं अतः माता रोगमें चिकित्सा न करना अपराध ही मानना चाहिये।

चेचक के पूर्व लक्षण

चेचक होने के पहले खूब जोरों का बुखार होना, सर्दी, जुकाम, अंगों का टूटना, खुजली, बेचैनी, भ्रम, शिरदर्द, उल्टी, त्वचा में शोथ होना, आँखें लाल हो जाना आदि मुख्य उपद्रव होते हैं। ज्वर १०३ से १०४ डिग्री तक हो जाता है। १-२ दिन बाद या कभी ३-४ दिन बाद विभिन्न रूप से सम्पूर्ण शरीर में रक्तवर्ण की पिडिकायें अथवा जल से भरे दाने निकल आते हैं। दानों के निकल आने पर ज्वर का वेग एवं अन्य उपद्रव कम हो जाते हैं।

रोग शमन के लक्षण

यदि रोग जल्द आराम होने को होता है, तो उपद्रव कम होने लगता है तथा सूखे दाने २-४ दिन में शमन होने लगते हैं अर्थात् माता ढल जाती है और रोगी स्वतः ठीक हो जाता है। इसी तरह जल से भरे बड़े दानों में भी पूर भरने लगता है और धीरे-धीरे सूखना प्रारम्भ होकर १०-१५ दिन के अन्दर रोगी ठीक हो जाता है।

चेचक बिगड़ने के लक्षण

जब रोग बढ़ाव पर होता है, तो ज्वरादिक उपद्रव घटने के बजाय बढ़ने लगते हैं तथा अतिसार, खाँसी, निमोनियाँ, दाह, तृषा, रक्तस्राव, मूर्च्छा, प्रलाप, बेहोशी, हिचकी, शोथ, आदि विविध उपद्रव होने लगते हैं और चेचक के दाने सूखने के बजाय सड़ने लगते हैं और उन में से दुर्गन्धि आने लगती है। इस तरह रोगी धीरे-धीरे असमर्थ होने लगता है और यहाँ तक की जलवायु ग्रहण करना कठिन हो जाता है एवं अन्त में विविध यातनाओं को सहते हुए प्राणी चल बसता है।

चिकित्सा—ग्रामीण एवं अनपढ़ समाज में पूजन-हवन, देवी स्तोत्र का पाठ, ग्रामीण गीत एवं माली द्वारा

देवी अर्चना आदि ही इसकी चिकित्सा मानी जाती है। सम्य एवं पंडित समाज में आजकल टीका लगाना ही इसकी अच्छी चिकित्सा मानी जाती है। कहते हैं कि टीका लगाने से चेचक का भय मिट जाता है और यदि चेचक हो भी जाय, तो ज्यादा जोर नहीं होता।

टीका के विषय में मतान्तर

टीका की प्रथा को कुछ लोग आधुनिक युग की देन मानते हैं तथा कुछ लोग इसे प्राचीन प्रथा बतलाते हैं। धन्वन्तरि संहिता में एक उल्लेख है, जिसमें टीका प्रथा को प्राचीन मानते हैं। यथा—धेनुस्तन्य मसूरिका नराणां च मसूरिका, तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रान्तेन गृहीतवान् ॥ बाहुमूलेच शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिं कराणि च। तज्जलं रक्त मिलितं स्फोटकज्वर संभवम् ॥ चेचक के शुष्क चर्म (खुरण्ड) को लेकर स्वस्थ मनुष्य की चमड़ी पर घिसकर या नाक द्वार पर घिसकर रक्त में उसके जहर को मिला देते थे, जिससे ज्वर आकर शरीर में पिडिकायें उत्पन्न हो जाती थी और धीरे-धीरे स्वतः शान्त हो जाती थी। इसे कृतक मसूरिका कहते हैं। परन्तु; यह विधि ज्यादा अच्छी न प्रतीत हुई तथा इससे कभी-कभी असावधानी से अनेक मृत्युएँ हो जाती थीं। अतः दूसरी विधि गो-मसूरिका विष के द्वारा टीका प्रथा का प्रचार हुआ। मसूरिका के विष को गाय के स्तन में प्रवेश करा मसूरिका उत्पन्न कर उसका लसीला चप टीका के लिये लिया जाता है। इसे ही गो-मसूरिका कहते हैं। इसके देने से ज्वर आ जाता है, और ५-६ दिन बाद टीकावाले स्थान पर दाने उभड़ आते हैं, जो धीरे-धीरे लगभग २ सप्ताह में सूख कर ठीक हो जाते हैं। “विषस्य विषमौषधम्” के सिद्धान्त से यह प्रथा चालू हुई। बहुत से लोगों को उपरोक्त श्लोक की प्राचीनता के विषय में सन्देह है। उनका कहना है कि यह पीछे का कल्पित है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि १७६६ ईस्वी के पूर्व चेचक ठीक करने का कोई इलाज ही नहीं था और न कोई ऐसा उपाय मालूम था, जिससे चेचक रोका जा सके। उस समय सर्व प्रथम अंग्रेज डॉक्टर जैन्सन ने टीका लेने की विधि निकाली, जिसे ही गो-मसूरिका कहते हैं। खैर; जो भी हो, परन्तु चेचक के लिये टीका का प्रचार जोरों का हुआ और आज भी है। १८२५ में जापान की सरकार तथा १८७४ में जर्मन की सरकार तथा १८८० ईस्वी में भारत-सरकारने तो कानून बनाकर टीका लेना अनिवार्य कर दिया।

कहते हैं कि उसके फलस्वरूप चेचक का प्रकोप कम हुआ और पहले की अपेक्षा मृत्यु संख्या बहुत घट गई। परन्तु; कालान्तरमें सन् १८२८ ईस्वी में जर्मन में विशेषज्ञों की रिपोर्ट से टीका लगाना बन्द किया गया। डच की सरकार ने भी इसका परित्याग किया। इंग्लैण्ड की सरकार ने भी चार चिह्न के बजाय १ चिह्न देना ही चालू रखवा। इस पर भी इसका असर अच्छा न रहा और मृत्यु संख्या उल्टे बढ़ गई। इस पर डॉक्टर लेडिङ्गहाम ने १८३२ ईस्वी में टीका लेने के आग्रह का स्पष्ट विरोध किया। इस तरह यह विवाद प्रस्त है कि टीका लेना सर्वथा उपयुक्त है या अनुपयुक्त। अच्छा तो यह है कि टीका लेने के बजाय अपनी जीवनीय शक्ति को बढ़ाकर चेचक से रक्षा किया जाय।

प्राचीनकाल में चेचक का इलाज

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कहा गया है कि १७६६ ईस्वी से पहले चेचक के रोक थाम एवं चिकित्सा की कोई विधि ही नहीं थी। समझ में नहीं आता है यह कैसे कहा गया! चिकित्सा की आदि जननी आयुर्वेद में इसकी उत्पत्ति एवं चिकित्सा आदि का वर्णन पहले से आ रहा है। हम तो कहेंगे कि अगर आयुर्वेद के सिद्धान्त से इस रोग का उपचार किया जाय, तो इसकी बढ़ती हुई प्रबलता बहुत कम हो जाय। क्योंकि; हमारा शास्त्र केवल चिकित्सा मान का उपदेश ही नहीं देता, बल्कि स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं रोगी मनुष्य को रोग से मुक्त करने का मार्ग भी प्रदर्शित करता है। भगवान धन्वन्तरि के वचनों द्वारा इसकी पुष्टि होती है यथा—व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च। अतः हमें अपनी प्राचीन आदर्शमयी चिकित्सा पद्धति का अनुसरण कर इस भयंकर संक्रामक रोग से देश की जनता की रक्षा करनी चाहिये। आगे कुछ उपाय एवं चिकित्सा का उद्धरण है, जिसको व्यवहार में ला कर लाभ उठाना चाहिये।

चेचक के प्रतिबन्धक

- १—बच्चा पैदा होने के बाद नाल छेदन के समय नाल में १-२ रत्ती कस्तूरी रखने से बच्चों को उत्फुल्लिका एवं चेचक का भय मिट जाता है।
- २—हरीतकी का बीज स्त्रियों के बायें भाग में तथा

पुरुषों के दाहिने भाग में चेचक के प्रकोप के समय बांधने से चेचक का आक्रमण नहीं होता।

- ३—रुद्राक्ष और काली-मिर्च का बराबर भाग चूर्ण १ माशा से ३ माशे तक बासी जल के साथ ३ दिन से ७ दिन तक प्रातःकाल लगाने से चेचक का भय नहीं रहता। योग उत्तम है।

- ४—इमली का बीज और हल्दी पीसकर पानी या केला के स्वरस में सफेद चन्दन मिला कर लेना अथवा चमेली या वासा के स्वरस में मुलेठी मिलाकर लेने से चेचक के भय से बचा जा सकता है।

- ५—नीम का कोमल पत्ता ३ से ६ माशा लेना अथवा नीम छाल या पत्ता, बहेड़ा बीज, हल्दी—प्रत्येक १-१ माशा ठंडा जल में पीस-छानकर १ सप्ताह पीना और घर के चारों तरफ नीम का पत्ता बांधना चेचक से बचने में उपयोगी है।

- ६—खैर की छाल, हरें, बहेड़ा, आंवला, नीम-छाल, पटोल-पत्र, गिलोय, वासक—इन सब को समान भाग जब-कुट कर लें। २॥ तोला से ५ तोला तक लेकर चौगुने या अठगुने जल में मिला कर क्वाथ बना लें। चौथाई बाकी रहने पर छानकर प्रातः कुछ दिन पीलाने से रक्त शुद्धि हो जाती तथा खून की गर्मी शान्त होकर चेचक का भय बिल्कुल मिट जाता है। चेचक हो जाने पर भी इसका प्रयोग गुणकारी है। इसका नाम खदिराष्टक कषाय है; अत्युत्तम योग है।

- ७—चेचक के मौसम में दूध पिलाने वाली माताओं को २-४ तोला गरी (खोपरा) खिलाने से चेचक का जोर बच्चों को नहीं होता।

- ८—वसन्त ऋतु एवं खासकर चैत मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को प्रातः काल थूहर—(सेहुड़) की डाल लाकर उसके आगे भाग पर लाल झन्डी लगा कर सफेद कलश के ऊपर स्थापन कर घर के द्वार पर चौतरा-सा बनाकर उसके ऊपर रखना चाहिये, इससे शीतला का प्रकोप नहीं होता।

- ९—स्वच्छ जलवायु एवं खाद्य पदार्थों का सेवन, वस्त्रों को साफ कर धूप में सुखाना, मकान एवं आसपास की गन्दगी को साफ रखना, मक्खियों से खाने-पीने की वस्तुओं की रक्षा करना, घर में कीटाणुनाशक धूना,

गुग्गुलु, धूप, आदि की धूनी देना अथवा नीम का पत्ता जलाना, स्नान प्रति दिन करना आदि चेचक के मौसम में आवश्यक है।

चेचक हो जाने के बाद

१—स्वच्छ लिपे-पोते हवादार कमरे में और जहाँ तक हो सके मकान के ऊपरी भाग में रोगी को रखना उत्तम है। गर्म वस्त्र या मोटी खादी आदि का कपड़ा धारण करना, कमरे में कम से कम २ बार धूप देना, कमरे के द्वार पर नीम की ताजी पत्तियों का गुच्छा बाँधना और खिड़कियों पर ताल कपड़ा बाँधना अच्छा है। कमरे में अंत संट तथा अधिक सामान यथा संभव न रखना चाहिये।

२—रोगी के मल-मूत्र आदि पर तत्काल चूना या राख डालकर उसे बाहर जमीन में गाड़ देना चाहिये।

३—रोगी के विस्तर, कपड़े, बर्तन, जूठा आदि अन्य व्यक्तियों को इस्तेमाल न करना तथा साबुन से कपड़ों को प्रति दिन साफकर धूप में सुखाना चाहिये।

४—रोगी के कमरे में रजस्वला स्त्री या अन्य किसी संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति एवं बच्चे वगैरह को न जाने देना चाहिये।

५—सेवा करनेवाले को अपनी स्वच्छता पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिये। नाखून कटवा लें तथा बिना गरम पानी और साबुन से हाथ धोये कोई वस्तु न छूएँ या खाएँ। रोगी के श्वास-प्रश्वास से यथासंभव बचकर रहें।

६—पंखे की जगह नीम की हरी टहनियों का प्रयोग करना ज्यादा अच्छा है।

७—कमरे में धूप दोबारा अवश्य दें।

चिकित्सा

१—चेचक निकलने का समय अधिकतर फाल्गुन, चैत, वैशाख आदि महीने हैं। अतः, इन महीनों में विशेष कर चैत मास में वमन, विरेचन आदि से उदर शुद्ध कर रक्त शोधक दवायें—महामज्जिष्ठाद्यर्क, सारिवा-घरिष्ट प्रभृति लेने से रक्त सम्बन्धी तथा चेचक आदि रोग नहीं होते।

२—चेचक के निकलते ही बीज निकाला हुआ मूनक्का के ७-८ दानों या थोड़ी-सी केसर जल में पीसकर पिला देने से शरीर का जहर दानों में जल्द आ जाता है।

३—करेला के पत्तों के ३-४ तोला स्वरस में १ माशा हल्दी-चूर्ण मिला कर देने से वमन विरेचन हो कर चेचक में अच्छा लाभ होता है।

४—रोगी सकल हो तो ज्वर आने के पूर्व ही पटोल पत्र, नीम पत्र और वासक के क्वाथ में वच, इन्द्रजव, मुलेठी और मैनफल प्रत्येक का आधा माशा से १ माशा तक चूर्ण मिला कर वमन करा देना चाहिये। वमन के बाद हल्का विरेचन दें। इससे शारीरिक शुद्धि हो जाती है जिससे दाने वगैरह निकलने पर भी जल्द सूख जाते हैं। कमजोर को वमन विरेचन न कराकर शमन-चिकित्सा करनी चाहिये। बच्चों को विरेचन के लिये आवश्यकता होने पर ग्लिसरीन की बत्ती या मोम और एरण्ड तैल कबीला चूर्ण की बत्ती बनाकर गुदा मार्ग में देने से दस्त हो जाता है। पान की डंडी से भी छोटे-छोटे बच्चे को दस्त हो जाता है।

५—पानी गरम कर के ठंडा कर के पिलाना चाहिये अगर उसमें गरम करते समय विजय सार या खैर की छाल मिला लिया जाय, तो अत्युत्तम है। इसी पानी को शौच आदि के काम में भी लाना चाहिये। गरम पानी कदापि न पिलाना चाहिये।

६—ब्रासी जल में शहद मिलाकर पिलाने से रोग जल्द आराम होता है।

७—सूखे बेर के भीतर की मज्जा (गूदी) ६ माशा बराबर गुड़ मिला कर देने से किसी प्रकार के चेचक का दाना हो, शीघ्र पककर सूख जाता है।

८—कभी-कभी दाने जल्द नहीं निकलते तथा निकलते-निकलते यदि किसी कारणवश अन्तर्लोन हो जाते हैं, तो कष्ट बहुत बढ़ जाता है और अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसी हालत में कचनार की छाल के क्वाथ में स्वर्णमाक्षिक १ रत्ती मिलाकर प्रतिदिन देने से दाने सब बाहर आ जाते हैं।

९—मुंह और कंठ में व्रण (घाव) हो जाने पर चमेली का पत्ता, मंजीठ, दास हल्दी, सुपारी, शमी (खैर) की छाल, आंवला, मुलेठी सब को समान भाग ले क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर कुल्ली करने से अच्छा लाभ होता है। अथवा—छोटी इलायची, कबाबचीनी, कत्था, संग जराहूत—सब का समान भाग चूर्ण कर मुंह में थोड़ा-थोड़ा रखकर पानी या जात्यादि कषाय से कुल्ली करना चाहिये। जात्यादि कषाय-चमेली की पत्ती, अनार की पत्ती, दबूल की छाल, बेर की जड़ प्रत्येक समान भाग लेकर जौकूट कर २॥ तोला

- दवा १ सेर पानी में पका कर आधा रहने पर शु० फिटकीरी एवं शुद्ध टंकण (सुहागा) २-२ आना भर देकर कुल्ली करावें । दिन में दो तीन बार उसका प्रयोग करना चाहिये ।
- १०—चेचक के दानों से अधिक लाव निकलने से घाव हो जाने पर बट, गूलर, पीपल, पिलखन, बेंत की छाल का बारीक चूर्ण या जंगली कंडों की राख अथवा सूखे कंडों (गोबर) का कपड़-छन चूर्ण या दशाङ्गुलेप का चूर्ण आदि में से यथा प्राप्त कोई चीज घाव पर बुरकाना चाहिये । सूखी माता में दाह, जलन और खुजली होने पर नीम-पत्ती जलमें पीस कर लगाना चाहिये ।
- ११—चेचक के दानों से कीड़े न पड़ने पायें अथवा पड़ गये हों तो राल, नीम का पत्ता और गुग्गुलु को खाट के पास निर्धूम आँच पर रख कर धूप देना चाहिये ।
- १२—दानों में खुजली, वेदना, एवं घाव की शुद्धि तथा दानों के पीव सुखाने के लिये पूर्व लिखित खदिराष्टक क्वाथ में १ माशा गुग्गुलु और थोड़ा शहद मिलाकर पिलाना चाहिये । बच्चों को स्वल्प मात्रा में देना चाहिए ।
- १३—व्रण हो जाने से कण्ठावरोध, घर-घर आवाज होना, कफ से गला रुंध जाना आदि उपद्रव हो जाने से पीपल चूर्ण २ रत्ती, हरे ६ रत्ती मधु से मिलाकर ३-४ बार चटाना या अष्टांगावलेह देना चाहिये ।
- १४—खुजली होने पर या घाव दूषित हो जाने पर पंचतिक्त घृत जल या दूध के साथ अथवा भोजन के साथ लेना श्रेयस्करो है ।
- १५—प्रायः चेचक में आँखों के खराब होने का बहुत भय रहता है । इसके लिये खस, लोध्र और मजीठ को जल में पीसकर आँखों के ऊपर लेप करें अथवा क्वाथ बनाकर आँखों में आश्च्योतन करें । आँख के ऊपर पहले लगाने से उस जगह माता प्रायः निकलती ही नहीं ।
- १६—लिसोढ़े का लेप भी आँखों के ऊपर लगाने से वेदना की शान्ति होती है ।
- १७—व्रण को धोने के लिये पंचवल्कल (बट, पीपल, गूलर, पाकड़, बेंत) के क्वाथ का उपयोग लाभदायक है ।
- १८—उदर शूल होने पर एरण्ड तैल लगाकर पेट को स्नेह देना चाहिये ।
- १९—पैरों में दाह-जलन होने पर कच्चे चावल के धोवन से पैर को तिञ्चन करना चाहिये ।
- २०—खाँसी होने पर कासबटी, खदिरादि बटी आदि पिलाना चाहिये ।
- २१—अतिसार आदि उपद्रव होने पर सर्वांगसुन्दर रस और जायफल को पानी में घिसकर उसके साथ देना लाभदायक है ।
- २२—चेचक में सर्वतोभद्र रस के प्रयोग से प्रायः कोई उपद्रव नहीं होने पाता तथा उपद्रव हुए भी हों तो शमन हो जाते हैं । प्रयोग उत्तम है ।
- २३—कमजोरी, खून की कमी, गुर्दे का विकार, मूत्र-दाह आदि उपद्रव होने पर इन्दुकला बटी, भैषज्य रत्नावली लिखित का प्रयोग पटोलादि क्वाथ के साथ करने से अच्छा लाभ होता है ।
- २४—दुर्बलता बढ़ जाने पर कभी-कभी अनिष्ट होने की संभावना रहती है अतः ऐसी हालत में रससिन्दूर १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, पीपल चूर्ण ३ रत्ती मधु से दिन में दो बार चटाना चाहिये । भोजनोत्तर द्राक्षासव का लेना भी उत्तम है ।
- २५—प्रलाप, मूर्च्छा, बेहोशी, हृदय दुर्बलता, नाड़ी क्षीणता, शीताङ्ग आदि उपद्रव होने पर ब्राह्मी बटी स्वर्ण घटित देना उत्तम है ।
- २६—अगर चेचक में दुर्लभ रस का प्रयोग विषम भाग मधु और घी के साथ सवेरे-शाम तथा भोजनोत्तर एलाघरिष्ट का प्रयोग किया जाय, तो ज्वरादिक सभी उपद्रव शान्त हो कर पिडिकायें सूख जाती हैं और रोग शमन हो जाता है ।
- २७—पके हुए दानों में खुजली होने पर लाल या सफेद चन्दन घिस कर लागाना या नीम का तेल लगाना गुणकारी है । चन्दन को सर्वांग में लेप न कर केवल दानों के ऊपर ही लगाना चाहिये । निकलने हुए दानों पर कभी भी न लगाना चाहिये ।
- २८—माता अच्छी हो जाने पर भी अपना चिह्न हमेशा के लिये छोड़ जाती है । कभी-कभी चेहरा अति विकृत हो जाता है और ऐसी हालत में दूध के साथ वसन्त मातुली का कुछ समय सेवन किया जाय, तो दुर्बलता भी दूर हो जाती है तथा साथ-साथ शरीर का वर्ण एवं मुँह की कान्ति बहुत अंशों में ठीक हो जाती है । इसके साथ-साथ

आग में जलाई हुई कौड़ी की राख, आमाहल्दी, सर (सरकंडा) की जड़ समान भाग भेंस के दूध में पीसकर रात में मुँह पर लेप करना और शाम को जौ, गेहूँ या धान की सहील भूसी जल में भिगो कर सुबह उसी से खूब रगड़ कर मुँह को धोना चाहिये। अथवा चिरौंजी, मसूर की दाल गो-दुग्ध में पीस कर लेप करना चाहिये। लेप साता के खूब सूखकर अच्छा हो जाने पर ही करना चाहिये।

२६—कहते हैं कि घोड़ा की अगाड़ी और साता की पिछाड़ी खतर नाक है अतः, पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये।

३०—चेचक में अगर आँखें बन्द हो जायँ, तो सावधानी से खोलकर बीच-बीच में घी या भेसलीन लगा देने से आँखें चिपकती नहीं और दूषित जलछाव हो जाने से आँखें खराब नहीं होने पाती।

पथ्य—अन्न न खाने वाले बच्चों को माँ का दूध लेना चाहिये। अन्न खानेवाले बच्चों एवं सभी उम्रवालों को ज्वरावस्था में गाय या बकरी का दूध, वाली, साबूदाना, धान का लावा, अंगूर, बेदाना, किशमिश आदि फल लेना चाहिये। ज्वर का वेग शमन होने पर पुराना चावल, चना, मूँग की दाल, मसूर, जौ, परवल, करेला, केला, विजोरा नीबू, चिकित्सक की सलाह मुताबिक देना चाहिये।

परहेज—परिश्रम, स्त्री संभोग, तेल, खटाई, लाल मिर्चा, गरिष्ठ पदार्थ, धूप एवं अग्नि का सेवन, क्रोध, परस्पर विरोधी पदार्थ का सेवन, सेम, आलू आदि कन्द साग, नमक, अत्यधिक भोजन, कड़ुवे और खट्टे सभी पदार्थ मलमूत्र के वेग को रोकना आदि सर्वथा वर्जित हैं।

विशेष नोट—१. पथ्यापथ्य का पालन दूध पिलानेवाली चेचकवाले बच्चे की माँ को भी करना चाहिये।

२—जबतक कोई उपद्रव न हो चिकित्सा के लिये जल्दबाजी न करना चाहिये।

३—नमक का परहेज ज्यादा रखना चाहिये अन्यथा खुजली बढ़ जायगी तथा व्रण में शोथ आदि उपद्रव बढ़ जायँगे।

४—पानी सदा गर्म किया हुआ ठंडा ही लेना चाहिये। जावित्री चेचक में लेना हानिकारक है।

५—मच्छर, मक्खियाँ एवं खटमल से रोगी की रक्षा करनी चाहिये। इनसे अन्य व्यक्ति के शरीर में जहर फैलने की बड़ी आशंका रहती है।

६—शीतला को पाप कर्म जन्य भी माना है अतः, देवपूजन हवन, ब्राह्मण भोजन, शीतला स्तोत्र का पाठ आदि शुभ पुण्य कर्म भी यथा शक्ति करते रहना चाहिये। इनसे मानसिक शान्ति तथा स्वच्छता के साथ-साथ पाप का निवारण भी होता है।

७—जबतक चेचक के दाने खूब सूखकर खुरण्ड गिर न जायँ, तबतक स्नान भूल कर भी न करना चाहिये।

८—चेचक में ज्यादा जोर से खुजलाया न जाये अन्यथा बड़े गहरे घाव होने से सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

९—अत्यधिक शीतल क्रिया न करनी चाहिये।

१०—निखोनिया प्रभृति कठिन अवस्था में चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक है।

नोट—पाठकों से अनुरोध है कि वे इनका प्रयोग करें और जनता में प्रचार करें।

(पृष्ठ ९१६ का शेष)

चेचक की अनुभूत चिकित्सा

रोग के लक्षण मालूम पड़ते ही लौंग, कूठ और बवाई तुलसी को पानी में उबाल कर पीने के लिए देना चाहिए। ब्राह्मी वटी १, मुक्ता चौथाई रत्ती, प्रवाल १ रत्ती—एक साथ मिलाकर सुबह-शाम बाली-स्वरस और मधु या खाली मधु से देना चाहिए। साथ में कफ का दोष होने पर चन्दा-मृत १ रत्ती, टंकण २ रत्ती, प्रवाल १ रत्ती, कस्तूरी चौथाई रत्ती, दोपहर और रात को पान के रस और शहद से देना चाहिए। पथ्य के लिए साबूदाना या बाली के पानी में मिश्री मिलाकर देना चाहिए। विशेष उपद्रव होने पर कफ प्रधान सन्निपात की चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिए। इस रोगी के परिचारक को भी बहुत ध्यान देने की जरूरत है। हलका पथ्य देना एवं बहुत सफाई से रखना चाहिए। घरवालों को रोगी के कपड़े और उसकी हवा से दूर रहना चाहिए और समूचे घर में नीम की पत्तियों की धुआँ करना चाहिए।

—:०:—

चेचक (वसन्त) रोग और उसकी चिकित्सा

वैद्य हरनारायण जोशी, न्या० व्या० शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

यह रोग प्रायः वसन्त ऋतु में होता है, इसीसे इसका नाम वसन्त रोग पड़ा है। हमारे पूर्वज आचार्य इस रोग को क्षुद्र रोगों में मानते थे। किन्तु; सन्ध परिवर्तन के कारण यह घोर एवं संक्रामक रोगों में माना जाता है। सुश्रुत के क्षुद्ररोगाधिकार में लिखा है--“दाह ज्वर रुजावन्तस्ताम्राः स्फोटाः सपीतकाः। गात्रेषु वदने चान्त-विज्ञेयास्ता मसूरिकाः॥ अर्थात् दाह-ज्वरयुक्त ताम्र वर्ण, पीत वर्ण जो स्फोटक शरीर में होते हैं, उन्हें मसूरिका (माता) रोग कहा जाता है। चरक के चिकित्सा प्रकरण में लिखा है--“याः सर्वगात्रेषु मसूर मात्रा मसूरिका पित्त कफात् प्रदिष्टाः” अर्थात् पित्त और कफ की दृष्टि से समस्त शरीर में मसूर के समान ज्वर सहित जो पिंडिका हों, उन्हें मसूरिका कहते हैं। हमारे पूर्वज ऐतिहासिकों का लिखना है कि पन्द्रह सौ वर्ष पहले यह रोग इतने भयंकर रूप से नहीं था।

माधव और भावमिश्र आदि आचार्यों के सिद्धान्त से इस बीमारी को तीन भागों में बांटा गया है। (१) बड़ी चेचक (२) छोटी चेचक एवं (३) रोमान्तिका। चेचक के इस बीमारी का वेग प्रायः वसन्त ऋतु के आदि में होता है। इसी से इस का नाम वसन्त रोग कहा गया है, अंग्रेजी में इसे स्माल पाक्स, एवं हिन्दी में चेचक या माता कहा गया है।

(१) मसूरिका (बड़ी माता)--बड़ी माता में ज्वर १०४-१०५ डिग्री तक निरन्तर बना रहता है, बेचैनी, शरीर में दाह एवं अनिद्रा आदि उपद्रव चार दिन पहले ही से हो जाते हैं। यह रोग बीमार के ऊपर घातक रूप से आक्रमण करता है एवं पन्द्रह दिन का समय ले लेता है। इसी में विषाक्त होने पर रोगी में दुर्गन्धि आने लगती है और वह तत्काल मर जाता है। इसे कोई-कोई वैद्य गो-मसूरिका भी कहते हैं।

(२) छोटी चेचक--इसके सभी लक्षण बड़ी माता जैसे ही होते हैं, किन्तु दाने सघन न होकर फासले से निकलते हैं और आँखों में इसका जोर कम होता है। बड़ी माता की अपेक्षा इसके विषाक्त होने का डर बहुत कम होता है। ज्वर का वेग और दाह भी कम ही होता है।

इसमें ८ या ९ दिन लगते हैं, और दाने दूसरे ही दिन दीखने लगते हैं।

(३) रोमान्तिका चेचक--इस बीमारी में प्रत्येक रोम में महीन-महीन फुन्सियाँ निकलती हैं। यद्यपि इसे मसूरिका नहीं कहा जाता, परन्तु चेचक रोगाधिकार में होने के कारण ही मसूरिका रोगों में गिना जाता है। बच्चों के लिए यह बड़ी कष्टप्रद बीमारी है। प्रायः इसमें कफ का दोष देखने में आता है और इसका विष श्वास नलिका एवं फेफड़ों में ज्यादा असर करता है। और ; प्रायः बच्चों पर ही इसका प्रभाव होता है। यदि कफ का दोष ज्यादा न हो, तो यह बीमारी चार दिन में अच्छी हो जाती है। कफ का दोष ज्यादा होने पर निमोनिया, आन्त्रिक-ज्वर आदि नाना प्रकार के उपद्रव इसमें देखे जाते हैं। कहीं-कहीं बच्चे को तन्द्रा और अवसाद के साथ रक्तातिसार हो जाने से श्वास और कास का वेग बढ़ जाता है और बच्चा दुर्बल हो जाता तथा बीमारी असाध्य अवस्था पर पहुँच जाती है।

चेचक से बचने के साधारण उपाय--(१) चेचक का टीका ले लेना चाहिए इससे रोग नहीं होने पाता। यदि होता भी है, तो उग्र रूप धारण नहीं करता। (२) चेचक के रोगी को अपने से दूर रखें। यदि उसके पास रहना ही हो, तो सचेत होकर रहें। रोगी या उसके वस्त्रों को छूने के बाद हाथ को कीटाणु नाशक दवाओं से अच्छी प्रकार धो डालें। (३) चेचक के दिनों में भोजन कम करें। पेट की सफाई पर विशेष ध्यान रखें। (४) रोगी के मल, मूत्र और थूक को वस्ती के दूर जमीन के अन्दर गाड़ देना चाहिए। क्योंकि ; इसमें रोग के कीटाणु रहते हैं। (५) रोगी शरीर के दाने जब सूख जाते हैं, तब उनकी पपड़ी गिरने लगती है। उसमें भी रोग के जीवाणु रहते हैं। इसलिए उससे सावधान रहें। (६) रोगी के कमरे में नीम की धुआँ रखनी चाहिए और रोगी की चारपाई पर कमरे तथा कमरे के आसपास नीम की पत्तियाँ डाल देनी चाहिए। (७) रोगी के कमरे की सफाई पर विशेष ध्यान दें।

(शेष पृष्ठ ९१५ पर)

माता-रोग

(गताङ्क से आगे)

वैद्य लक्ष्मीनारायण चौरासिया

सचित्र आयुर्वेद वर्ष ५ अङ्क ८ में दिये गये माता-रोग के लेखान्त में सूचित किया गया था कि अग्निदग्धा मसूरिका पर अगले अङ्क में विचार किया जाएगा।

अग्निदग्धा का आयुर्वेद शास्त्रों में विस्फोटक रोगान्तर्गत वर्णन मिलता है। मसूरिकान्तर्गत नहीं, किन्तु हमने अपने २४ वर्ष के अनुसन्धान में एवं १० वर्ष में लगभग चार सौ मसूरिका रोगियों की चिकित्सा में यह अनुभव किया है कि अग्निदग्धा के शास्त्र वर्णित “अग्निदग्धा-निभाः स्फोटाः स ज्वरा रक्तपित्तजाः, ववचित् सर्वत्र वै देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः।” सम्पूर्ण लक्षण, मसूरिका-प्रकोप काल में उन माता-रोग (मसूरिका) से पीड़ित बच्चों के परिवार में अन्य बच्चों का सम्पर्क होकर मसूराकृति स्फोटों से आरम्भ होकर अग्निदग्धा का रूप धारण किया था। इस कारण मसूरिका, मसूरिका भेद शीतला और विस्फोटक रोग तीनों के लक्षणों में सादृश्यता, समान-रूपता और शीतलान्तर्गत उपचारों में शीतला स्तोत्र के पाठ्यान्तर्गत “वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराय, यामासाद्य निवर्तते विस्फोटक भयं महत्। शीतले-शीतले चेति यो ब्रूयाद्वाह पीडितः, विस्फोटक भयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति। यस्त्वा मुदक मध्ये तु ध्यात्वा संपूजयेन्नरः, विस्फोटक भयं घोरं कुले तस्य न जायते।”

मसूरिका, शीतला, विस्फोटक रोगों में समानता से अनुचित न होगा, जो अग्निदग्धा (विस्फोटक) को हम मसूरिकान्तर्गत चिकित्सा में समावेश कर रहे हैं।

लक्षण—अग्निदग्धा और माता-रोग के आक्रमण काल में माता रोग से ग्रसित परिवार के बच्चों में कहीं-कहीं (लगभग १ प्रतिशत) इसके रोगी देखने को मिलते हैं। जैसे किसी परिवार में किसी बच्चे को मसूरिका निकली और उस परिवार के अन्य-वे बच्चे जिनके शरीर में माता के गर्भ से संचित विष (जिसका उल्लेख सचित्र आयुर्वेद वर्ष ४, अङ्क १० में किया जा चुका है) अभी नहीं निकला है, सम्पर्क द्वारा रोगाक्रान्त हुए, और आरम्भ में मसूराकृति

स्फोटों के रूप में प्रादुर्भूत होकर शनैः-शनैः विस्फोटक के रूप में परिवर्तित हो गये।

आरम्भ में ४-५ दिन तीव्र ज्वर, शिर पीड़ा, दाह, मूर्च्छा से बच्चा पीड़ित हो कर चोंकता है, उछलता है और तृष्णा से व्याकुल होता है। पश्चात् चेहरे पर यतस्तः उभरे हुए चने अथवा मसूरके समान दाने दृष्टिगोचर होते हैं, इस समय ज्वर कुछ घट जाता है तथा अन्य कष्ट भी किंचित न्यून प्रतीत होते हैं। ४-५ दिन तक दाने इसी रूप से सारे शरीर में निकलते रहते हैं, पुनः दाने बड़े होते जाते हैं और वे फैलते जाते हैं तथा उनमें तरल भरने लगता है, तरल के दबाव से विस्फोटों का फैलाव भी बढ़ता जाता है, जो धीरे-धीरे आग से जलने के फफोलों के रूप के बन जाते हैं, इस अवस्था में रोगी को पुनः ज्वर तीव्र हो जाता है और बेचैनी बढ़ जाती है। यह बड़ी भयंकर अवस्था होती है। सावधानी के अभाव में उपद्रव रूप से फुफुस प्रदाह, सन्धि शोथ और वृक्क शोथ हो जाते हैं एवं मूत्र की मात्रा घट जाती है। रोगी के विस्तर अधिक मुलायम नहीं होने, गोद में उठा लेने अथवा करवट दिलाने में यदि असावधानी रखने से छाले छिल जाएँ, तो उनसे तरल बहने लगता है जो सम्पूर्ण शरीर में लिप्त होकर सड़ने लगता है और उससे दुर्गन्धि आने लगती है। रक्तस्थ विष का दाहक प्रभाव शिरो लोठन उत्पन्न कर देता है, मूर्च्छा बढ़ जाती है और सन्यस्त होकर जीवन लीला को समाप्त कर देते हैं।

अतएव; मसूरिका रोग की प्रमुख शोषधि “वसन्त सुन्दर रस” (प्रयोग वर्ष ५ अङ्क १ में देखिये) आरम्भ से दीजिये और स्फोटों में तरल भरने पर गूलर की अन्तर छाल को साफ पत्थर पर पानी के साथ चन्दन की तरह घिस-घिसकर एकत्र करते रहिये और विस्फोटों पर पतला-पतला लेप करते रहिये। एक लेप के सूखने पर दुबारा पुनः उसी पर लेप करते जाइये। दो-तीन दिन लेप (शेष पृष्ठ ६२० पर)

सौन्दर्य और उसकी साधना

श्री शशिकांता वर्मा

पाश्चात्य देशों की देखा-देखी अब भारत में भी सौंदर्य-प्रतियोगिता का श्रीगणेश हुआ है और हाल में ही दिल्ली-सुंदरी, भारत-सुंदरी आदि का चुनाव भी हुआ है। हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है, जिसमें स्त्रियों के लिए असूर्यपश्या होना एक भूषण माना जाता है और वे अपने घर की देहरी लांघने का भी खयाल नहीं करतीं, इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार की प्रतियोगिता में अधिक स्त्रियाँ कभी भाग ले सकेंगी, पर चाहे जितनी भी शामिल हुई हों, चुनाव हुआ है और निर्णायकों ने सौंदर्य-परीक्षा की कोई कसौटी भी रखी ही होगी। यह तो हम ठीक-ठीक नहीं बतला सकते कि वह कसौटी क्या थी, पर हमारा अनुमान है कि इसमें वर्ण और सुडौलपन को ही प्रधानता दी गई होगी जैसा कि आम तौर से लोग दिया करते हैं।

वर्ण का विचार

लोगों का ध्यान साधारणतः वर्ण पर अधिक जाया करता है और अधिकांश लोग गौरवर्ण को ही सौंदर्य का एक प्रमुख अंग मानते हैं। भारत में प्राचीन काल में गौरवर्ण को इतनी प्रधानता दी जाती रही होगी ऐसा विश्वास नहीं होता। द्रौपदी कृष्ण वर्ण की होने के ही कारण 'कृष्णा' कहलाती थी, पर उसका सौंदर्य लोकप्रसिद्ध था और स्वयंवर में उसे प्राप्त करने के लिए भारत के बड़े-बड़े वीर और नरेश लालायित थे। अर्जुन भी श्याम वर्ण के ही थे, पर उनके सौंदर्य पर उर्वशी-जैसी अप्सरा तन-मन से निछावर थीं। राम और कृष्ण भी 'कारे' पर साथ ही 'कोटि मनोज लजावनि हारे' थे। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि पहले गौरवर्ण की कोई प्रधानता नहीं थी, पर आज लोगों के दृष्टिकोण में कुछ अंतर आ गया है, कसौटी बदल गई है।

इसी परिवर्तित दृष्टिकोण का यह परिणाम है कि आज लड़की के संबंध के लिए कहीं बात चलाने पर लड़के की ओर से पहला प्रश्न लड़की के वर्ण के विषय में होता है, शिक्षा आदि को गौण स्थान दिया जाता है। अगर

दुर्भाग्य से लड़की का रंग गोरा न हो, तो यह माता-पिता के लिए एक अभिशाप हो जाता है। चाहे जिस व्यक्ति ने सौंदर्य की पहचान से वर्ण को प्रधानता देने का मत चलाया हो, उसने इसके द्वारा स्त्री-पुरुष दोनों और विशेषकर स्त्री-वर्ग का बहुत बड़ा अहित किया है। यह इसी अंत मत का परिणाम है कि आज लड़कियाँ अपने रंग का निखार करने के लिए तरह-तरह के साबुनों, पाउडरों, स्नो-क्रीमों आदि का बहुत अधिक प्रयोग करने लगी हैं। इससे लड़कियों का रंग निखरे या नहीं पर इन प्रसाधनों का व्यवसाय करने वालों का रंग तो अवश्य ही निखरता जा रहा है और वे इसकी बदौलत धन-कुबेर बनते जा रहे हैं।

दृष्टि का विषय

सौंदर्य के संबंध में एक मत यह भी प्रचलित है कि सौंदर्य शरीर का नहीं बल्कि देखनेवाले की दृष्टि का विषय है। हम मानते हैं कि जो एक व्यक्ति की दृष्टि में सुंदर जँचता है, हो सकता है कि दूसरे पर उसका उसी रूप में प्रभाव न पड़े—उसकी दृष्टि में सुंदर न जँचे। औरों की दृष्टि में लैला भले ही बदसूरत रही हो, पर उनकी दृष्टि मजनू की दृष्टि नहीं थी, उसकी दृष्टि में तो संसार की सुन्दरियाँ लैला के पासंग में भी नहीं थीं।

एक नवयुवक की दृष्टि में बिलकुल सादे ढंग से रहने-वाली, शृंगार और आभूषणों से रहित कोई तरुणी सुंदर जँच सकती है, पर उसके संबंध में उस युवक के मित्रों का मत बिलकुल विपरीत हो सकता है। आखिर इस अंतर का कारण क्या है? बात यह है कि कुछ तरुणियों में बाहरी रूप का सर्वथा अभाव होते हुए भी मौलिक सौंदर्य व्यक्त हो सकता है। इस प्रकार की लड़की में वास्तविक सौंदर्य आत्मा के अन्दर से झलकता रहता है और इसकी पहचान भी वही कर सकता है, जिसके सम्मुख इस तरह के सौंदर्य का आदर्श रहता है। यह ऐसा सौंदर्य है जिसका शरीर से बहुत अधिक संबंध नहीं है और चर्मगत रूप से कहीं अधिक प्रगाढ़ होता है।

रूप और सौंदर्य

एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि 'ईश्वर ने तो स्त्रियों को सौंदर्य प्रदान किया, पर रूप तो शैतान की ही कृति है।' यह तो हम मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि रूप शैतान की कृति है, क्योंकि बहुतों में रूप या आंगिक सौष्ठव आनुवंशिक होता है, पर यह कोई जरूरी नहीं कि रूप होते हुए भी किसी स्त्री में वास्तविक सौंदर्य हो ही। बहुत-सी स्त्रियाँ श्रृंगार के प्रसाधनों के प्रयोग में बड़ी कुशल होती हैं और सिद्धहस्त सर्जन शरीर के दोषों को दूरकर उसे सुडौल और सुघर बना दे सकते हैं। पर इनके कारण आनेवाला सौष्ठव बाहरी ही होगा और यह उस सौंदर्य से बिल्कुल भिन्न होगा जो हृदयगत या आचरणजन्य होता है।

सौंदर्य की व्याख्या करना बहुत कठिन है। यह मानी हुई बात है कि शरीरगत सौष्ठव या रूप की चाहे जो भी विशेषता हो, उसे और आकर्षक बनाने के लिए चाहे जितने भी उपाय किये जायें और प्रसाधन आदि प्रयोग में लाये जायें, पर अगर ऐसी कोई बात घटित हो जाय जो इस रूपजन्य आकर्षक या तथाकथित प्रेम में बाधक सिद्ध हो, तो रूप की सारी विशेषता काफूर हो जायगी—अगर आकर्षक होते हुए भी किसी पुरुष की स्त्री कर्कशा या असाधवी हो, तो क्या ऐसी स्त्री के रूप के प्रति उस पुरुष के मन में कोई आकर्षण होगा?

वास्तविक सौंदर्य अल्पकालिक नहीं होता, हमारे साथ बराबर बना रहता है और वह कोई ऐसी चीज है, जिसका संबंध पूरे मनुष्य अर्थात् शरीर, मन, आत्मा—सबसे होता है। अच्छी शकल, साफ रंग, सुडौलपन, अंगन्यास आदि भी वांछनीय हैं और जो प्राप्त किये जा सकते हैं उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न भी करना चाहिए। पर ध्यान उदाशयता, धीरता, गंभीरता, शांति आदि सद्गुणों की ही प्राप्ति और विकास पर मुख्य रूप से केन्द्रित होना चाहिए। ये ही वास्तविक सौंदर्य के आवश्यक उपादान हैं। ईश्वर ही सारे वास्तविक सौंदर्य का मुख्य आधार। मूल स्रोत है। उसके साथ संपर्क स्थापित हो जाने पर आध्यात्मिक सौंदर्य आप-ही-आप प्राप्त हो जाता है, जिसका प्रभाव जो भी संपर्क में आयेगा उसपर पड़े बिना नहीं रहेगा। यह आचरण में ऐसी विशेषता उत्पन्न कर देगा जो लोगों में उस व्यक्ति के प्रति विश्वास और श्रद्धा का भाव उत्पन्न कर देगा।

मन का संस्कार

मन का संस्कार करने की अभिलाषा रखने वालों के लिए एक महात्मा ने राय दी है कि 'जो भी सत्य हो, ईमानदार हो, उचित हो, विशुद्ध हो, सुंदर हो, प्रशंसनीय हो उसका चित्तन स्मरण करो।' इस कथन की यथार्थता और सत्यता में किसी को संदेह या आपत्ति नहीं हो सकती। मनुष्य का मन स्वभावतः ग्रहणशील होता है, इसलिए लोगों को सावधान रहना चाहिए कि वह ऐसी ही चीजें ग्रहण करें, जो वचन और कर्म में सौष्ठव और सौंदर्य लानेवाली हों। प्रायः अच्छी-से-अच्छी शकल पर बड़े-बड़े अक्षरों में अपवित्र एवं छल और दुष्टतापूर्ण भाव अंकित रहते हैं; बहुत से रूपवान् कहे जाने वाले लोगों के मुखड़े पर चित्ता की शिकन, चढ़ी हुई त्योरी और लोभ या तृष्णापूर्ण दृष्टि आसानी से देखी जा सकती है, पर विचारों और आचरण का प्रभाव सादी-से-सादी शकल को भी सुंदर बना देता है। मन का संस्कार करने की राय इसीलिए दी जाती है और वास्तविक सौंदर्य की प्राप्ति का यही उपाय है।

शरीर का संस्कार

अब रही सौंदर्य के विचार से शरीर के संस्कार की बात। यों तो ऐसे बहुत से उपाय हैं जिनका प्रयोग कर इसका संपादन किया जा सकता है, पर प्रयत्न मौलिक बातों के ही संबंध में होना चाहिए, चेहरे पर खींचे पदार्थों के प्रयोग द्वारा नहीं। पाउडर, स्नो आदि पोतकर रंग बदलने या अपने को सुंदर बनाने का प्रयत्न मूर्खता है। मैं एक दिन बस से कहीं जा रही थीं और मेरे पास ही दो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। एक ने दूसरी से कहा—'लिपस्टिक लगाना भूल गई क्या? ओठ सूने-सूने लग रहे हैं।' दूसरी को इससे कुछ परेशानी-सी मालूम हुई। जान पड़ता था जैसे लिपस्टिक के अभाव में उसे नग्नता का अनुभव हो रहा हो। सौंदर्य संबंधी यह भ्रांत धारणा केवल ऐसी स्त्रियों में ही नहीं बल्कि ९९ प्रतिशत लोगों में देखी जा सकती है।

प्रसाधनों की व्यर्थता

देखनेवाले के मन में प्रशंसा का भाव उत्पन्न करनेवाला शारीरिक सौंदर्य भी आनसिक सौंदर्य की तरह आंतरिक पूर्णता का परिणाम होता है। स्वस्थ शरीर ही सौंदर्य का आधार होता है। स्नो, पाउडर आदि प्रसाधन भले ही थोड़ी देर के लिए प्रयोग करनेवाले व्यक्ति के उद्देश्य

की पूर्ति कर लें, पर वस्तुतः वे सौंदर्य के सहायक नहीं हैं, वे बिल्कुल फजूल होते हैं। कहा जा सकता है कि प्राकृतिक सौंदर्य प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक समय और प्रयत्न आवश्यक होगा। नहीं, ऐसी बात नहीं है। पाउडर, स्नो, लिपस्टिक लगाकर और हाथ-पैर रंगकर कृत्रिम सौंदर्य लाने के लिए साधारणतः जितना समय लगाया जाता है, उतना भी समय इसमें नहीं लगेगा। प्रकृति का सहयोग प्राप्त कर सरल और स्वास्थ्यकर क्रियाओं में जिनके लिए किसी तरह के कौशल की आवश्यकता नहीं है, लगने वाला समय जो सौंदर्य प्रदान करेगा वह वास्तविक होगा। कुछ सुझाव लीजिये।

मुखमुद्रा के सौंदर्य के लिए हृदय की पवित्रता, दूसरों के प्रति प्रेम और दीन-दुखियों के लिए करुणा आदि गुणों का संपादन कीजिए। रोज दोपहर के समय अपने काम से कुछ समय निकालकर आराम से पीठ के बल लेट जाइये, आँखें बंद कर लीजिए और सारा तनाव दूर कर लीजिये। इससे आपके चेहरे पर शिकन भी होगी तो वह दूर हो जायगी।

सुडौलपन

रात को जल्द सो जाइये—१० के पहले ही। देर तक जागने और आमोद-प्रमोद में लगे रहने से शरीर की क्रियाएँ शिथिल पड़ जाती हैं, विवर्णता आ जाती है और नाड़ी-संस्थान विकृत हो जाता है। बदन में सुडौलपन लाने के लिए विशेषज्ञों की शरण में जाने और ज्यादा खर्च करने की जरूरत नहीं है। अगर प्रातःकाल थोड़ा व्यायाम कर लिया करें तो वह स्वास्थ्य का सुधार करता हुआ

आप ही इसे ठीक कर लेगा। इसके लिए उपयुक्त व्यायामों का यहाँ विवरण देना संभव नहीं है, पर कुछ साधारण-सी बात है जिनपर ध्यान देना आवश्यक है। गहरी साँस लीजिए, थकावट की हालत में कभी व्यायाम मत कीजिए या जोश में आकर इतना व्यायाम मत करते जाइए कि शरीर शिथिल हो जाय; हाँ, धड़ और अंगों की पेशियों का इतना तनाव अवश्य कीजिये कि वह सुखद जान पड़े। इससे शरीर की वसा इधर-उधर बँट जायगी, ढाँचा सुडौल हो जायगा और मन में उन्नति का भाव जाग्रत होगा।

आहार के संबंध में परिमितता का ध्यान रखिये। चाय, कहूँ, अचार, तली हुई चीजें तथा पचने में कठिन जान पड़नेवाली चीजों से परहेज कीजिये। चोकरदार आटे की रोटी खाइये और ताजा फलों और हरी तरकारियों का जहाँ तक संभव हो उपयोग कीजिये।

अगर आपको बैठे-बैठे काम करना पड़ता हो तो भोजनमें पौष्टिक पदार्थों की मात्रा कम रखिये। उपर्युक्त व्यायामों के साथ मिलकर यह आपके वर्ण में काँति ला देगा, आँखों से ज्योति छिटकने लगेगी और चेहरे की मुद्रा आकर्षक हो जायगी। ये सब चीजें आपको किसी भी मूल्य पर बाजार में नहीं मिलेंगी और न कोई चिकित्सक ही प्रदान कर सकेगा।

मानव-जाति के लिए और अधिक सौंदर्य अपेक्षित है—ऐसा सौंदर्य जो कोमलता लाकर उदाराशय बना देता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए सौंदर्य की चाह मत कीजिये, मानवता की सेवा करने और उसे ऊपर उठाने की इच्छा से कीजिये। (आरोग्य से)

---:o:---

[शेषांश]

माता रोग

[पृष्ठ ६१७ का

करने पर विस्फोटों का तरल गाढ़ा होने लगेगा। ५-६ दिन में अधिक गाढ़ा होने पर स्फोट सूखने लगेगा। इस प्रकार १८-२० दिन में ही स्फोट सूखकर पत से उतरने आरम्भ हो जायेंगे, जो १ मास के भीतर ही सम्पूर्ण उतर कर शरीर में बिना किसी व्रण आदि के बने साफ हो जायेंगे।

ध्यान रखिये कि तरलमय स्फोट फटने न पायें अन्यथा सारा शरीर व्रण और पीव युक्त होकर दुर्गन्ध देने लगेगा। रात-दिन परिश्रम करके इस अवस्था को विकृत होने से बचाइये, शय्या स्वक्ष-सफेद और मुलायम, पलंग कसा हुआ, शरीर में वस्त्र न रखिये, साफ मुलायम चदरे उढ़ाये रखिये, श्रुत शीतजल पिलायें, भोजन कुछ न दीजिये, शय्या वस्त्र नित्य प्रति बदलिये और उन्हें साबुन के खौलते पानी से धो डालिये, कमरा साफ करिये, रोगी ही नहीं अपितु, कमरे में भी मक्खी न आने दीजिये, शान्ति और संयम

रखिये, कमरे में अष्टगंध की धूनी प्रति दो-दो घंटे बाद देते रहिये। यदि फुफ्फुस प्रदाह हो जाये तो बालार्क रस भी वसंत सुन्दर रस के साथ-साथ दीजिये और इच्छा हो, तो पेनिसिलीन टेबलेट भी दे सकते हैं। अन्त में वैद्याचार्यों से नम्र निवेदन है कि वे सम्पूर्ण माता रोगों में दृढ़ता पूर्वक चिकित्सा आरम्भ करें और जनता में इस रोग की वास्तविकता का प्रचारकर चिकित्सा कराने के लिये उत्साहित करें। यदि पाठकों को माता-रोग के संक्षिप्त लेख से कुछ प्रोत्साहन मिला हो, तो हम अभी और लेख आगे चला सकते हैं, जिसके द्वारा इस रोग में माने जाने वाले आचार-विचारों का वैज्ञानिक विवेचन होगा तथा और अन्यान्य ऐसी माताओं का निदान, चिकित्सा होगी, जिनका शास्त्रों में वर्णन है और रोगी भी देखने को मिलते हैं। यदि पाठकों की अभिरुचि है, तो मान्यवर सम्पादक जी को सूचित करें।

टहलिये और दौड़ लगाइये

रवीन्द्र शास्त्री

टहलना

एक तरह का ऐसा शरीरी और सुविधा जनक व्यायाम है, जो आजकल के बुद्धिजीवी लोगों के लिये बहुत उपयोगी है। शरीर रक्षा के लिये व्यायाम का करना उतना ही आवश्यक है—जितना भोजन करना। किन्तु; हिन्दुस्तानियों ने व्यायाम को सिर्फ पहलवानी का साधन समझने की गलती करके अपने स्वास्थ्य को बर्बाद करने की जो मूर्खता की, वह आज देश के राष्ट्रीय जीवन को बुरी तरह खराब कर रही है।

व्यायाम का उद्देश्य है शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को गतिशील बना के भीतरी विकार को बाहर निकालना, जिसके फलस्वरूप रक्तशुद्धि का कार्य सुचारु रूप से चलता है और पाचन क्रिया में कोई बाधा नहीं होने पाती। जो मनुष्य व्यायाम आदि किसी तरह की ऐसी शारीरिक हरकत नहीं करते, जिससे पसीना आके अङ्ग-प्रत्यङ्ग को जोर न पड़ता हो, उनका शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता और सौन्दर्य तो रहता ही नहीं।

बैठक, बैठक, कुश्ती, कबड्डी आदि व्यायाम बहुत उपयोगी होते हुए भी सबके लिये सुविधाजनक नहीं हो पाते—कुछ पोजीशन, कुछ अवस्था का तकाजा और कुछ इन व्यायामों के प्रति हीन धारणा आदि कारण ऐसे हैं—जिनकी वजह से अपने आपको सम्य-संस्कृत और शहरी समझने वाले स्त्री-पुरुष इच्छा होते हुए भी इन व्यायामों को नहीं कर पाते।

टहलना—तेजी से टहलना और पूरी थकान आने तक टहलना व्यायाम का एक बहुत ही आसान और सम्य संस्करण है। शहरों में रहने वाले सभी वर्ग के स्त्री-पुरुषों के लिये इसका समान महत्त्व है—और अनुभव इसका साक्षी है कि इस हल्के दिखाई देनेवाले व्यायाम में शरीर को स्वस्थ रखने के अद्भुत गुण हैं। इसे और भी ज्यादा उपयोगी करना हो, तो टहलने को दौड़ने में बदल लेना चाहिये।

‘सचित्र आयुर्वेद’ के प्रधान सम्पादक साधु स्वभाव श्री रामनारायण जी का तो जीवन ही इस टहलने और दौड़ने पर कायम है। मोटी तौंदवाले स्त्री-पुरुषों और

रात-दिन अपच की शिकायत रखनेवाले बाबू लोगों के लिये यह सौ दवाओं की एक दवा है। प्रमेह जैसे रोगों में अकेले टहलने से जितना लाभ होता है, उतना दर्जनों दवाइयों से नहीं—बल्कि बिना टहले ये दवाएँ भी व्यर्थ सिद्ध हो जाती हैं।

महात्मा गांधी के जीवन में प्रार्थना के साथ ही टहलना भी एक अनिवार्य चीज थी—और बिना नागा किये वे नियमित रूप से टहलते थे। स्वयं मेरा और चिकित्सा में आये दर्जनों रोगियों का यह अनुभव है कि टहलने से न केवल खुल के भूख लगती है, बल्कि मानसिक विकारों में भी अनोखा लाभ होता है। जिन नौजवानों को कामवासना का ज्यादा नशा होता है, उन्हें चाहिये कि ऐसे विचार उत्पन्न होते ही टहलने को निकल जायें और पूरी तेजी से इतना घूम लें कि पसीना आ जाय, फिर वे देखेंगे कि वासना की आंधी गायब हो के मन में प्रसन्नता की लहर आ जाती है। जिन लोगों को नियमित रूप से टहलने की आदत पड़ जाती है, उनका कहना है कि जिस दिन किसी वजह से इसमें गड़बड़ी हो जाती है, उस दिन शरीर और मन दोनों ही में मुस्ती रहती है।

आफिसों में कलम घिसाई करने वाले बाबू लोगों और दिन रात पड़े रहने वाले मोटी तौंदवालों को हिम्मत करके टहलने की आदत डालनी चाहिये—और वे २-४ दिन में ही यह महसूस करेंगे कि उनमें कितनी ताजगी आती है? टहलने की उचित विधि

टहलने के समय शरीर पर यथा संभव कम कपड़े होने चाहिये। पैरों में या तो देशी जूती हो या कपड़े के फीते-दार जूते—जाड़ों में जुराब भी पहनी जा सकती है। धोती के बजाय पायजामा या हाफपेण्ट ज्यादा ठीक पड़ता है। टहलने जाते समय दुनियादारी-चिन्ताएँ घर पर ही छोड़ देनी चाहिये—खुले और प्रसन्न दिमाग से टहलने का पूरा ध्यान रखना चाहिये। मनपसंद साथी हो तो और भी अच्छा, वरना अकेले ही टहलना चाहिये।

(शेष पृष्ठ ६२८ पर)

स्वास्थ्य के साथ धर्माचरण का सम्पर्क

राजवैद्य भूमर दत्त मिश्र, H. M. D. S.

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन सब का मूल स्रोत नैरोग्यता “स्वास्थ्य” है। यदि यह मानव देह स्वस्थ रहता है तो इन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना की जा सकती है और इन चारों की साधना का जो मार्ग है वही धर्माचरण है। स्वास्थ्य के साथ धर्माचरण का नित्य सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध में तनिक भी न्यूनता आ जाय तो शारीरिक-मानसिक गड़बड़ी पैदा होकर मानव देह की विकृत अवस्था हो जाती है जिसे हमें अस्वस्थता कहना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक विशाल पुस्तक लिखकर भी हम अपने विचारों को पूर्ण व्यक्त नहीं कर सकते हैं। अतः यहाँ केवल मौलिक सिद्धान्त का उल्लेख करके ही संक्षेपतः स्वास्थ्य और धर्माचरण पर प्रकाश डालना है। भारतवर्ष धार्मिक भावना-प्रधान देश है एवं प्राचीन काल में भी विशेषरूपेण था। धर्म के साथ स्वास्थ्य संरक्षण के नियमों का योग कर देने से दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रणाली से दो सिद्धियाँ सुलभता पूर्वक प्राणियों को मिल जाती है, एक तो नैरोग्यता और दूसरा मानवीय धर्म, जिसे हम धर्माचरण कह सकते हैं। धर्माचरण के प्रत्येक कार्य में शारीरिक शुद्धि है जिससे हमारा स्वास्थ्य सुन्दर बना रहता है और धर्माचरण भी होता रहता है तथा जिससे इहलोक और परलोक दोनों की सिद्धि होती है। अब यहाँ पाठकों के लाभार्थ धर्म शब्द का अर्थ और उसके द्वारा किन-किन कार्यों का सम्पादन होता है जिससे स्वास्थ्य के साथ धर्माचरण होता है, दिया जाता है।

विना धार्मिक कृत्यों का श्रीगणेश भी नहीं होता है अतः, इसको प्रधानता दी है। इससे स्वास्थ्य में भी लाभ होता है “स्नानं-ओजः बलप्रदम्”

✓(२) संध्या-हवन—स्नान के बाद इनका आरम्भ होता है। संध्या का सीधा भाव, मनके द्वारा परब्रह्म का चिंतन है, जिसमें वेद-मन्त्रों का उच्चारण होता तथा जिससे भूत-सिद्धि होती है याने मानसिक संकलन-विकलन की विकृति के विकार की शांति होती है। साथ ही वातावरण की भी शुद्धि होती है। “Disinfection” हवन एन्टीसेप्टिक कर्म करानेवाला है अतः यह भी धर्माचरण के साथ स्वास्थ्यप्रद है।

(३) चन्दन लगाना भी वैज्ञानिक है—चन्दन का आलेप जिन-जिन स्थानों पर किया जाता है वह रुद्धिमात्र ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक है। ललाट, गले, वक्षस्थल, नाभि और भुजाओं में लगाना सब वैज्ञानिक रूप से है। जिस-जिस स्थान पर चन्दन लगाया जाता है वे सब उन-उन स्थानों की रक्षा करके शरीर को स्वस्थ रखते हैं। ललाट मस्तिष्क को अपने तापमान में सुव्यवस्थित बनाये रखते और कण्ठ गलनलिका को तर रखते—जिससे खुश्की न होवे। वक्षस्थल पर तीन जगह लगाया जाता है। (१) बाँएँ स्तन के पास—वहाँ वह हृदय का संरक्षण करता है। (२) दाहिने भाग पर—दाहिने फेफड़े को गर्मी से बचाता है। (३) निम्न भाग में आमाशय की तरफ—जिसका काम हृदय से निकल कर जानेवाली फुफ्फुसीय महाधमनी के तापमान को प्राकृत रूप में रखना है। नाभी पर चन्दन लगाना भी यही अर्थ रखता है कि उदरस्थ अंगों को गरमी से बचाता है। भुजाओं

✓(१) स्नान—धर्म से सर्वप्रथम सम्पर्क है, इसके

पर लगाने का भी तात्पर्य यही है कि वह भुजाओं को अपने कार्य में—सुव्यवस्थित रूपसे क्रिया करनेमें, उसे ठीक रखता है। चन्दन—शीतल, पित्त शासक, रक्त-विकार तथा क्रीटाणु नाशक है।

(४) सत्य बोलना—यह धर्माचरण की मूल वस्तु है। केवल इसके द्वारा ही हम कई दुष्कर पापों (दुःखों) से मुक्त हो सकते हैं—इसे धर्म में रखकर सतत् पालन कराने का यह तात्पर्य था कि मानव देह को इसके सम्यक् पालन से दुःखों (पापों) से मुक्ति मिलेगी। सत्य बोलने में मनुष्य को कम बोलना पड़ेगा, जिससे शारीरिक श्रम अधिक नहीं होगा और अकारण ही अनर्गल वक्तवाद करते रहने में जो कायिक-शक्ति का ह्रास होता है वह भी नहीं होगा और धर्म की दृष्टि से मिथ्या नहीं बोलेंगे तो अनर्थ भी नहीं होंगे। अतः सत्य से धर्म और देह दोनों की रक्षा होती है और हिंसा भी नहीं होती। क्योंकि, धर्म के दश लक्षण क्रमशः अन्योन्याश्रय हैं। अतः, केवल सत्य को ग्रहण करने मात्र से ही इतर अहिंसा, दया, इन्द्रिय-दमन, पवित्रता आदि का पालन होना शुरू हो जाता है। सबाई से प्रत्येक प्राणी दैनिक चर्या, ऋतुचर्या आदि का भी पालन करेगा, जिसके करने से उसे स्वस्थता और धार्मिकता दोनों क्षेत्रों में लाभ होगा। सत्य का पालन करना साक्षात् उस परब्रह्म को प्राप्त करना है।

(५) धर्म का अर्थ लौकिक दृष्टि से जिसमें शास्त्र सम्मतता भी विद्यमान है—यह है कि “वस्तु-स्वभाव धर्म” जिस वस्तु का जो स्वभाव होता है वही धर्म है। यहाँ स्वास्थ्य के साथ धर्माचरण का प्रसंग है अतः, धर्म का स्वभाव यहाँ हुवा इस मानव देह को अधिक समय तक स्थाई रखना (चिरकाल तक जीवित रखना)—यह तभी हो सकता है जब कि आहार और विहार में धर्माचरण हो अन्यथा नहीं। और ये दोनों ही ऐसे हैं जिनमें जहाँ असात्म्यता उत्पन्न हुई कि यह २४ तत्त्वों द्वारा बना हुआ मानव देह में सत्त्वर नष्ट होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(६) प्राचीन सामाजिक व्यवस्थापकों और चिकित्सकों ने सामाजिक, धार्मिक और शारीरिक इन तीनों व्यवस्थाओं को एक सूत्र में सम्यक् रूप से संगठित करके इस तरह से बाँधा था जिससे हम एक कार्य को साधेंगे तो शेष स्वतः ही सिद्ध हो जावेंगे। चाहे प्रथम कार्य सामाजिक, धार्मिक, या शारीरिक हो—इन तीनों का सम्बन्ध उन पूर्वाचार्यों ने नित्य बना दिया और इसी कारण से अब तक भारत का स्वास्थ्य तथा सामाजिक और धार्मिक स्थिति सुदृढ़ रही। जब से इन तीनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ तब से ही हमारे भारत के स्वास्थ्य, धर्म और समाज—इन तीनों की पतनावस्था आ गई। आज भी हमारी सरकार अमेरिका की नीति के अनुसार हमारे यहाँ भौतिकवाद को अपनाती हुई संयमी न रख कर भी अप्राकृतिक साधनों के प्रयोगों द्वारा दीर्घायुता के स्वप्न देख रही है। भारत सदा आध्यात्मिक बल पर ही विश्व में अपनी महत्ता को बतला सका है न कि भौतिकता से। यदि हम अब भी “पश्येम शरदः शतम् जीवेमशरदः शतम्” को चरितार्थ करके प्रत्यक्षीकरण करना चाहते हैं तो हमें इस भौतिकवाद से पराङ्मुख होकर अध्यात्मवाद को पूर्ण-रूप से अपनाना चाहिये—इसमें ही हमारा कल्याण है। जिस प्रकार आज वैद्य जगत् आयुर्वेदोपाधिधारी होते हुये भी आयुर्वेद का लेबुल लगा कर एलोपैथिक औषधियों का उपयोग अति मात्रा में करते हैं। एक दृष्टि से तो उन्हें कर्तव्यमार्गाविलम्बी कहना होगा, क्योंकि, चिकित्सक का जाति स्वभाव धर्म रोगी को “येनकेन प्रकारेण” रोगमुक्ति दिलाना है चाहे उनके साधन स्वदेशीय हों चाहे परदेशीय। किन्तु दूसरी दृष्टि से वे विपथ मार्गसेवी हैं क्योंकि, आयुर्वेदज्ञ हैं। अतः आयुर्वेद शास्त्र के आदेशवत् पठित एवं अनुभाषित क्रियाओं एवं साधनों के द्वारा चिकित्सा करना उनका धर्म है। अतः, गीता का आदेश मानकर सही मार्ग पर आवें—यह मार्ग सरल है।

स्वधर्म निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः।

शहद

श्री रामेश बेदी, आयुर्वेदालंकार

यह भी देखा गया है कि अत्यधिक शुष्क स्थान में नैबद्यमान मधु (Comb-honey) अपना भार खो देता है। ऐसी परिस्थितियों में सात साल तक रखा रहे तो शीतलन कमी साढ़े सात प्रतिशत होती है। अत्यधिक शुष्क अवस्थाओं में इतने लम्बे समय तक रखा हुआ छात्र-मधु फिर अधिक आद्र वायु में रखा गया तो उसने शीघ्र ही अपने वास्तविक भार को प्राप्त कर लिया—केवल दस दिन या इससे भी कम दिनों में; और बाद में यह शहद अपने वास्तविक भार से तीन प्रतिशत अधिक बढ़ गया। छात्र-मधु इस प्रकार पहले सुखाकर फिर उच्चतर तापमान पर नमी में रखा गया, तो वह वास्तविक भार से पन्द्रह प्रतिशत हो गया। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि यदि वायु में नमी सोखने दिया जाय, तो निस्सारित मधु और छात्र-मधु दोनों खमीरों की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त माध्यम बन जाते हैं। इसलिए; सदा यह कहा जाता है कि शहद को सदा शुष्क स्थान पर रखना चाहिए।

मधु की जल शोषकता

वायुमण्डल में आद्रता अधिक हो, तो शहद में उससे नमी खींच लेने का गुण होता है। इसके विपरीत अपेक्षाकृत कम आद्रतावाले वायुमण्डल में यह अपनी कुछ आद्रता छोड़ देता है और कुछ गाढ़ा हो जाता है। विभिन्न आपेक्षिक गुरुत्ववाले शहदों को विभिन्न आद्रता के वायुमण्डलों में रख कर शहदों के आपेक्षिक गुरुत्व में होनेवाले परिवर्तनों को देखा गया। भारी शहद शुष्क वायुमण्डल में थोड़ी नमी छोड़ते हैं परन्तु अधिक आद्र वायुमण्डल में से अपेक्षाकृत अधिक नमी खींचते हैं। पतले शहद शुष्क वायुमण्डल में नमी छोड़ते हैं परन्तु अधिक आद्र वायुमण्डल से नमी कम चूसते हैं। यह भी देखा गया है कि शुष्क वायुमण्डल में नमी छोड़ने की अपेक्षा शहद आद्र वायुमण्डल से कहीं अधिक शीघ्रता से खींचता है। यह तथ्य संकेत करता है कि निस्सारण के बाद शहद को खुली वायु में रखने में कितनी सावधानी की आवश्यकता होती है। शहदों में आमतौर

पर फ्रमेंटेशन पैदा हो जाने में एक बड़ा कारण यह होता है कि स्टोर करते हुए अत्यधिक आद्रता से उनका उचित बचाव नहीं किया जाता और दूसरा कारण यह होता है कि परिपक्व शहद छत्ते में से निकाल लिया जाता है।

वायुमण्डल से नमी खींचने का गुण निस्सारित मधु की अपेक्षा छात्र-मधु में अधिक देखा गया है। छत्ते में विद्यमान भले ही सोम से मोहर बन्द हो, परन्तु, वायुमण्डल से नमी खींच ही लेता है।

मधु के स्फटिक

छत्ते में से निकले हुए प्रत्येक शहद में कुछ स्फटिक होते हैं। ये स्फटिक इतने छोटे-छोटे होते हैं कि आँखों से देखते नहीं और केवल सूक्ष्म दर्शक (Microscope) में नजर आते हैं। क्योंकि; प्रत्येक शहद में स्फटिक पहले से ही उपस्थित होते हैं, इसलिए इन्हें प्राथमिक स्फटिक (Primary crystals) कहते हैं। इन प्राथमिक स्फटिकों की संख्या की शहद में कमी या अधिकता का शहद के स्फटिक बनने पर प्रभाव पड़ता है।

छत्ते के शील किये हुए शहद में भी प्राथमिक स्फटिक होते हैं, पुराने छत्तों की अपेक्षा नयों में ये कम होते हैं।

शहद में प्राथमिक स्फटिक बहुत हैं, तो जल्दी दाने बनता है और घी की तरह स्निग्ध-सा होता है। प्राथमिक स्फटिक हैं तो थोड़े परन्तु, स्फटिक बहुत बड़े बनते हैं।

गरम करने से शहद के प्राथमिक स्फटिक विलीन हो जाते हैं और फिर दाने बनने में बहुत समय लगता है। तथा दाने बड़े और खुरदरे बनते हैं।

शहद के स्फटिकों के पूर्ण विलयन के लिये कम से कम तापमान ३५० शतांश काफी होता है। परन्तु, कुछ शहदों में इससे अधिक तापमान की जरूरत पड़ती है और व्यवहार में प्रायः ४५ शतांश (११३° फा०) से कम तापमान नहीं रखते।

गरम किये हुए शहद के पृष्ठ पर से पानी शीघ्रता से वाष्पीभूत होकर उड़ जाय, तो शहद जल्दी दाने बन जाता है। वाष्पी भवन को बढ़ाने से दाने शीघ्र और सूक्ष्म बनते हैं।

शहद

गरम शहद में स्फटिक डालकर हिलाया जाय तो स्फटिक बिखर जाते हैं और दाने बारीक बनते हैं। शहद के स्फटिक शीघ्रता से बनें तो दाने मृदु और स्निग्ध होंगे। स्फटिक धीरे-धीरे बन रहे हैं, तो दाने बड़े और कठोर बनेंगे।

परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि प्रायः सब शहदों में लगातार लगभग ५७ अंश फ़ार्नहाइट तापमान रखा जाय, तो परिणाम यह होता है कि स्फटिक बहुत शीघ्र बनते हैं। ५७० फ़ा० तापमान वह है, जिसमें सरदियों में मक्खियाँ झुण्ड बनाकर बैठती होती हैं।

स्फटिक बनाने के लिए तापमान का ठीक-ठीक नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। दो डिग्री तापमान कम या अधिक हो जाय, तो स्फटिक बनने के लिए जो समय लगना आवश्यक था, उससे प्रायः दुगुना समय लग जाता है। तापमान बिलकुल ठीक-ठीक रखा गया है, तो एक कनस्तर शहद के दाने बनने में यदि चार दिन लगते थे, तो अब दो दिन से भी कम समय लगेगा।

दानेदार शहद

कुछ अपवादों को छोड़कर शेष सब द्रव और बहुत से छात्र-मधु काफ़ी समय पड़े रहें, तो शीत ऋतु के बाद धुन्धले और ठोस हो जाते हैं। भूरे रंग की देशी खाण्ड की तरह शहद के दाने बन जाते हैं। अधिक प्रतिशतकता वाले अंगूरी खाण्ड (डेक्सट्रोज) की स्फटिक अधिक जल्दी बन जाते हैं, जैसे अलफ़ाल्फ़ा का शहद। ट्यूपीलो (Tupelo) और मक्का के शहद जिनमें फलों की खाण्ड (लेबुलोज) की प्रतिशतकता होती है, दीर्घकाल तक तरल बने रह सकते हैं।

निस्सारित मधु की अपेक्षा छात्र-मधु कम शीघ्रता से दानेदार बनता है और वह भी बहुत समय के बाद। यद्यपि ठोस होने पर शीत ऋतु का बहुत प्रभाव पड़ता है तथापि कुछ स्थानों पर और विशेषतः कुछ शहदों में गरम ऋतु में भी दाने बन जाते हैं। कुछ शहदों में छत्ते से निकालने से एक मास बाद ही दाने बन जाते हैं, जब कि दूसरे शहद दो साल तक भी द्रव बने रहते हैं।

साधारण छात्र-मधु यदि अच्छी तरह पका हुआ है, तो जबतक मौसम गरम है, द्रव रहेगा। इसके बाद यदि उसपर शीत का प्रभाव पड़ता है, तो प्रत्येक कोठरी में इधर-उधर बिखरे हुए कुछ दाने बन सकते हैं। धीरे-धीरे यह संख्या में बढ़ते जाते हैं और अन्त में शहद तथा मोम

आपस में मि

इस अवस्था में यह होता है।

रनका सुधार

प्राकृतिक दानेदार शहद जब र।

फँलाया जाता है, तो बड़ा अच्छा लगता है। बहुत से लोग दानेदार या अर्द्ध ठोस दाने गाड़ी कबूतक में शहद को द्रव की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। कभी शहद के बड़े-बड़े और कठोर दाने बन जाते हैं, जिनसे कुछ ईंट जैसे सख्त होते हैं और तब रोटी पर मक्खन के साथ फँलाने के लिए इसे कुछ द्रव बनाना आवश्यक होता है। न्यूजीलैंड में शहद अधिकतर दानेदार बिकता है। वहाँ अधिक लोग द्रव शहद को उपयोग के लिए पसन्द नहीं करते। दानेदार शहद की अपेक्षा अच्छी तरह पके हुए शहद में फ्रमण्टेशन होने की सम्भावनाएँ कम होती हैं।

निस्संदेह कुछ ऐसी अवस्थाएँ भी हैं जहाँ यह बाँधनीय हो सकता है कि जितनी जल्दी शहद के दाने बनें उतना अच्छा है, क्योंकि द्रव अवस्था के शहद की अपेक्षा दाने रूप में शहद का अधिक सुगमता से यातायात हो सकता है।

दानेदार शहद के गुण

दानेदार शहद को संस्कृत लेखकों ने मधु-शर्करा, मधुभवा, मदनोद्भवा, माधवी, माध्वीसिता, मधुत्पन्ना, मधुजा, क्षौद्रजा, क्षौद्र शर्करा, माक्षीक शर्करा, आदि नाम दिये हैं^१। इन सब शब्दों का अर्थ है शहद की खाण्ड। भारत में प्रायः दो हजार सालों से इसका प्रयोग हो रहा है। सुश्रुत के वर्णन से पता चलता है कि अतिथियों को जब भोजनों में इसे परोसते थे तो यह अत्यन्त स्वाद से खाई जानेवाली चीज समझी जाती थी, जिससे अतिथि आनन्द

- १ क. शर्कराऽन्या, मधुभवा, माधवी, मधु शर्करा ।
माक्षीकशर्करा प्रोक्ता शर्करा मदनोद्भवा ॥
घ. नि., शत पुष्पादिक. २ ; १०६
- ख. माध्वीसिता मधुत्पन्ना मधुजा मधुशर्करा ।
माक्षीकशर्करा चैषा क्षौद्रजा क्षौद्रशर्करा ॥
घ. नि. सुवर्णादि, ६ ; २४४ ।
- ग. माधवी मधुशर्करा ।
माक्षीकशर्करा प्रोक्ता ।
रा. नि. पानीयादि, १४ ; १६२ ।

युर्वेद, अप्रैल, १९५३

को रूखा,
कफ तथा
हुए कफ को निकालती
तथा या दस्त आने को और खून
करती है। कंयदेव^२, नरहरि और
यन् भी में मधु शर्करा के गुणों को शहद को सन्तान
माना चाहिए। शहद^३ की अपेक्षा यह अधिक
क और वीर्यवर्द्धक है। इसके सेवन से क्षीण हो
रीर भी भरने लगते हैं और पुष्ट हो जाते हैं^४।
दाने बनाने की विधि

शहद में तीन शर्कराओं का सम्मिश्रण है। जिसमें
द्राक्षोज (डेक्सट्रोज) शीघ्रता से दाने बन जानेवाली शर्करा
है, इसलिए यह प्रायः थोड़े समय में ही स्फटिक का बनना
आरम्भ कर देती है। इक्षोज (गन्ने की खाण्ड) शहद
में थोड़े परिमाण में होती है—सामान्य शहदों में आठ प्रतिशत
से अधिक कभी नहीं होती। इतना निर्मल घोल में शीघ्रता

से स्फटिक कभी नहीं बनता। लेवुलोज स्फटिक न बनने
वाली शर्करा है। यह विलेय रहती है। शहद में जब
स्फटिक बनते हैं, तो यह द्राक्षोज ही है जो स्फटिकों का रूप
ले लेती है और दूसरी शर्कराएँ द्रव में विलेय रहती हैं।

दोनों में ठोस हुए शहद के एक डिब्बे को देखने से
मालूम होता है कि शहद में उपस्थित सब शर्कराएँ कठोर
हो गई हैं परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्राक्षोज
स्फटिक के चारों ओर खाण्ड के घोल की एक पतली अणु-
वीक्षिक स्तर होती है और लेवुलोज तथा इक्षु शर्करा अब
भी घोल में उपस्थित होती हैं। खनिज पदार्थ, रज्जक
द्रव्य और दूसरी चीजें जो शहद को भोजन रूप में रहस्यमय
गुण प्रदान करती हैं अब भी अपने मौलिक रूप में होती हैं
और यह केवल द्राक्षोज ही है, जिसने ठोस दानों का रूप ले
लिया है। इससे यह सुगमता से समझा जा सकता है कि
जिस शहद में अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में द्राक्षोज होगी,
वह बहुत शीघ्रता से दाना बन जायगा और जिसमें अपेक्षा-
कृत यह न्यून होगी वह देर तक द्रव रूप में बना रहेगा
और संभवतः उसमें दाने सर्वथा बने ही नहीं। शहदों
के विश्लेषण की तुलना हमें वास्तव में यही बात
बताती है।

शहद के सम्बन्ध में ये प्रारम्भिक तथ्य हमें शहद की संपूर्ण
कहानी नहीं कहते। शहद का दाने में बनना उससे अधिक
पेचीदा है, जितनी सरलता से अभी वर्णन किया गया है।
द्राक्षोज या इक्षुशर्करा का यदि पचहत्तर प्रतिशत घोल
बनाया जाय, तो स्फटिक शीघ्रता से बनने लग जायेंगे।
शहद में शर्करा की घनता औसतन इतनी ही होती है पर यह
इसनी शीघ्रता से दाना नहीं बनता और छत्ते में से निकालने
के बाद कई दिनों, सप्ताहों और महीनों तक भी द्रव बना
रहता है। यह देखा गया है कि दाने बनने की शीघ्रता
पर खाण्ड की प्रतिशतता का ही केवल प्रभाव नहीं होता,
परन्तु शर्कराओं में से जो शहद में पर्याप्त अनुपात में होती
हैं, इसलिए इनमें शहद को दाने बनने से रोकने की प्रवृत्ति है।
यह एक अद्भुत और पेचीदा भौतिक प्रक्रिया है। यदि
ऐसा न होता तो छत्ते में से निकालने से पहिले ही हमारे
सब शहद दाने बन जाते और निस्सारित मधु की पेदावार
असम्भव हो जाती। वस्तुतः शहद के निर्माण के लिए
प्रकृति एक अद्भुत पेचीदा रासायनिक प्रयोगशाला प्रदान
करती है।

१. मधुशर्करा पुनश्चछर्द्यतीसारहरा रूक्षा छेदनी
प्रह्लादनी कवाय मधुरा मधुरविपाका च।
सु. सू. अ. ४५, इक्षुवर्ग ; १८।
- २ क. रूक्षावम्यति सारन्ध्री छेदिनी मधुशर्करा।
च., सू., अ. २७ ; २३६।
- ख. शर्करा मधु संभूताछर्द्यतीसारनाशिनी ॥
ध. नि. शत पुष्पादिक, २ ; १०८।
- ग. मधुजा शर्करा रूक्षा कफपित्त हरा गुरुः।
छर्द्यतीसारतृड् दाह रक्तद्वतुवरा हिमा ॥
भा. प्र., पू. ख., इक्षुवर्ग ; ३२।
- घ. माधवी शर्करा रूक्षा कफ पित्त हरा गुरुः।
भ. पा. नि., इक्षुकादि, ६ ; १६।
- ङ. मधुजा शर्करा रूक्षा तृष्णाच्छर्द्यतिसारजित्।
राजवल्लभ, मधुवर्ग।
- ३ क. मधुनः शर्करा गुर्वी सुस्वादुर्मधुवर्चसा।
कै. दे. नि., ओ. व., २०१।
तत्तुल्या मधुशर्करा।
- ख. रा. नि., पानीयादि. १४ ; २८८।
४. यद्गुणं यमधु प्रोक्तं तद्गुणास्तस्य शर्कराः।
विशेषात् बलवृध्याश्च तपस्यः क्षीण देहिनाम्।
ध. नि., गुणार्थि. ६ ; २६५।

बालकों का वर्तमान स्वास्थ्य एवं उनका सुधार

सीताराम केजड़ीवाल, वैद्यरत्न, वैद्यशास्त्री

प्राचीन काल में बच्चे लालन पालन के बाद गुरुकुल भेज दिये जाते थे। लालन काल में गृह में केवल दूध का ही सहारा था, बाद में गुरु के यहाँ सात्विक भोजन मिलता था एवं ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर अपने स्वास्थ्य को सुदृढ़ रखते थे। अर्जुन, भीम, अभिमन्यु, राम आदि महावीरों के नाम सुनकर हम सब अभी भी आश्चर्य मानते हैं, लेकिन, यह सभी ब्रह्मचर्य के नियमों के पालन का एकमात्र कारण था। आज उसी ब्रह्मचर्य के अभाव से ही हम सभी मानव क्षीण-वीर्य, कृश, रोगाक्रान्त और आलसी बन रहे हैं। वर्तमान बालक वचन से ही मिर्च, मसाला, गर्म चीजें, गुरु, अभिव्यवस्था, तामसी एवं राजसी भोजन करते हैं। व्यायाम का तो नाम भी नहीं जानते, केवल आराम ही आराम के इच्छुक बने रहते हैं, सूर्योदय के बाद उठते हैं, प्रातः बिना शौचादि कर्म से निवृत्त हुये वगैर ही भोजन के लिये प्रवृत्त हो जाते हैं। चाय, काफी, सिगरेट, की जो भ्रमण रहती है, उसकी तो बात ही क्या। नतीजा यह होता है कि उनका स्वास्थ्य तो विगड़ता ही है साथ ही उनके अन्दर अल्प वयस्क में ही नाना प्रकार की बिमारियाँ अपना रूप धारण कर लेती हैं और फलस्वरूप वे बिमारियों के शिकार हो कर अपने सारे उद्देश्य पर पानी फेरकर बैठ जाते हैं। आजकल जहाँ भी बैठें बातचीत के सिलसिले में यही सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति को टी० बी० हो गया है पटना या कलकत्ता गया है, अमुक व्यक्ति प्रमेह से बहुत ज्यादा पीड़ित है, यड़ी परेशानी में है। भाई इन सभी का मूल कारण एकमात्र ब्रह्मचर्य के नियमों का तिरस्कार ही है। आज इतने पर भी हमारी सरकार नित्य नयी परीक्षणशालायें सेनिटो-रियम तथा नित्य नयी-नयी दवाओं के आविष्कार से मानव को स्वस्थ रखना चाहती है लेकिन, हमारी सभ्यता में नहीं आता है कि ये सब कहाँ तक सकल हो सकेगा, जबतक ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं होता। एक तरफ हम औषधियों के साथ भिटामिनस, कैल्सियम आदि सेवन कर आरोग्यता चाहते हैं, दूसरी ओर हम उन्हीं चीजों का क्षय

करते देखे जाते हैं। भला सोचिये तो सही, यह गाड़ी कब तक चलनेवाली है। और यही कारण है कि हम सब चा पचास वर्षों में ही पूर्वज शत वर्ष-बुढ़ों से भी ज्यादा ५५ एवं कृश हैं।

अब मैं बालकों को यही सलाह दूंगा कि वे मेरे बताये नियमों के अनुसार चलने की कोशिश करें और इस संसार में यशस्वी, बुद्धिमान, बलवान, एवं निरोग रहें। प्रति-दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही बिछावन से उठ कर दो चार श्री नरहरि भगवान कृष्ण का नाम लेना चाहिये। पश्चात् शौच कर्म से निवृत्त हो कर एक आध माइल खुली हवा में भ्रमण कर आना चाहिये। भ्रमण रफ्तार के साथ करना जरूरी है, लेकिन साथ ही इस बात का ख्याल रहना भी जरूरी है कि जितना जी चाहे उतना ही भ्रमण हितकर है। अनिच्छा से ज्यादा भ्रमण भी रोगोत्पादक हो जाता है। भ्रमण के बाद तुरन्त घर आकर तैल लगाकर स्नान कर लेना चाहिये। स्नान के पूर्व व्यायाम कर सकें तो और भी अच्छा है। भ्रमण भी एक प्रकार का शारीरिक व्यायाम ही है, लेकिन यदि व्यायाम किया जाय तो वास्तविक बहुत ही उत्तम रहेगा। सभी व्यायामों में शीर्षसन अधिकतर उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध हुआ है। तैल की मालिश भी स्वास्थ्य सुधार का एक बहुत बड़ा अंग है। तैल-मालिश के बहुत से नियम हैं और सभी अंगों की अलग-अलग मालिश करने का उल्लेख शास्त्रों में आया है। अतः, बालकों को तैल-मालिश के ऊपर भी ध्यान देना परमावश्यक है। आपने देखा होगा अखड़िया पहलवान लोग तैल भी लगाते जाते हैं और कुश्ती भी लड़ते जाते हैं अतः, नित्यप्रति स्वच्छ सरसों का तैल सर्वांग में मालिश करना जरूरी है। स्नान के भी अनेक नियम होते हैं लेकिन, खाश तौर पर मैं यही लिख देना श्रेयस्कर समझता हूँ कि जहाँ गंगा नदी हो वहाँ गंगानदी में सलकर स्नान करना चाहिये अथवा गंगानदी के अभाव में कुएं पर ताजा पानी निकाल कर स्नान करना अच्छा है। स्नान के बाद शरीर को कपड़े से पोंछना जरूरी है, इस क्रिया से सारे शरीर के रोम साफ एवं स्वच्छ हो जाते हैं।

जलपान में कच्चा या फुलाया हुआ चना खाना चाहिये। भोजन में भात और गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल, दूध, तथा मौसम के अनुसार फल खाना चाहिये। दिन में भात और रात को रोटी खानी चाहिये। भोजन के साथ खट्टा, मिर्चा, तैल, गुड़, ज्यादा घृत, मांस-मछली तीक्ष्ण एवं गुरुतर पदार्थ नहीं खाना चाहिये। सादा कपड़ा पहनना, सादा भोजन, नित्य अपने कम में ध्यान रखना, बड़ों की आज्ञा पालन, ईश्वर के प्रेम तथा गुरु की सेवा ही बालकों का पहला कर्तव्य है। इन सब के बाद भी यह प्रश्न उठता है कि फिर भी यदि आप रोगग्रस्त हो जायें तो उसके लिये भी कोई उपाय

अवश्य होना चाहिये। आप जहाँ भी देखें पुराने जमाने में आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली ही आरोग्यता दान के लिये प्रमुख रही है। रामायण में भी लिखा है कि जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी थी तब सुखेन वंश को बुलाया गया था। महाभारत आदि में भी इसके प्रमाण मिलते हैं—और भी शास्त्रों का कहना है कि “यस्य देशस्य यो यन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हि तम्।” यानी जिस देश एवं प्रकृति में जिस का जन्म है उसी देश की उत्पन्न जड़ी बूटियाँ ही उनकी औषधि हैं। अतः, रोग से छुटकारा पाने के लिये आयुर्वेदीय दवाओं का ही शरण लें।

शेषांश]

टहलिये और दौड़ लगाइये

[पृष्ठ ६२१ का

सीना तानकर—पूरी तेजी से चलना जरूरी है, दोनों हाथ भी पूरी तरह हिलते रहना चाहिये, मुँह बन्द करके नाक से श्वास लेना जरूरी है—और समान गति से पूरी घुमाई करके ही रुकना चाहिये। १०-१५ मिनट तेजी से घूम के ५-१० मिनट का आराम लेके फिर घूमना ठीक नहीं। टहलने का मकसद यही है कि सारे शरीर को पूरी हरकत हो जाय और रोमछिद्र से खुलके पसीने आ जायें। साधारणतः ४० मिनट की पूरी घुमाई में पसीना आने लगता है—और ३ मील की घुमाई हो जाती है। धीरे-धीरे इसका अभ्यास बढ़ाकर पूरे १ घंटे की टहलाई कर लेनी चाहिये—जिससे आवश्यक व्यायाम होके शरीर में हल्कापन आ जाय। टहलने के साथ ही धीमी गति से दौड़ भी लगा ली जाय तो सोने में सुगंध का काम हो जाता है। टहलने का समय और स्थान

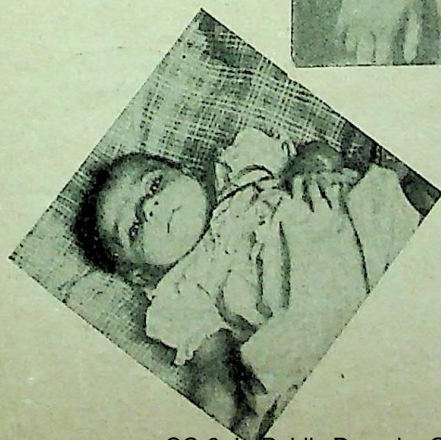
बिना किसी मीन मेल के सुबह-शाम का समय टहलने के लिहाज से ठीक होता है। सुबह सूर्योदय से कुछ पहिले

और शाम को सूर्यास्त के समय। चूँकि टहलना एक व्यायाम ही है अतः, खाली पेट ही यह उचित होता है। सुबह-शाम का वायुमंडल ज्यादा प्राणप्रद होता है—और इस समय भीड़-भाड़ भी कम होती है—अतः सुबह लगभग ५ बजे और शाम को ५॥ बजे घूमने के लिये निकल जाना चाहिये। टहलने का स्थान खुला—हरियाली लिये हुये और समतल होना चाहिये। कलकत्ते में ऐसे स्थान बहुत हैं, जहाँ मीलों तक घूमा जा सकता है, किन्तु, इस बात का ख्याल जरूर रहे कि मिलों की चिमनियों का धुआँ और मोटरों की धूल का तूफान न हो।

गांवों और कस्बों में आबादी से बाहर खेतों की तरफ टहलने के लिये ठीक जगह होती है। रेतीली और ऊबड़-खाबड़ जमीन में जल्दी थकान आ जाती है—अतः पक्की सड़क या कम रेतीली भूमि ही ठीक पड़ती है। नहरों के किनारे की जगह और मोटरों की सड़कें प्रायः ठीक पड़ती हैं।

—:०:—

सचित्र आयुर्वेद का ग्राहक बनकर लाभ उठाएँ।

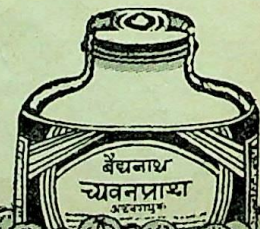


वृद्ध महर्षि का का या कल्प



श्री वैद्यनाथ-च्यवनप्राश अष्टवर्ग युक्त होने के कारण और भी अधिक उपयोगी और शक्ति लाभ करनेवाला है। ताजे आबलों के द्वारा शास्त्रीय ढंग से तैय्यार करने की हमारी गारन्टी है।

हमारे महर्षियों ने हमें केवल स्वानुभूत ज्ञान की अपार निधि ही नहीं दी है, बल्कि जन-कल्याणकारी ऐसी अनेक औषधियों के आविष्कार भी किये हैं, जो इस वैज्ञानिक युग में भी अपने गुणों के कारण हमारे लिये अद्वितीय हैं। च्यवनप्राश अश्विनी कुमारों के द्वारा आविष्कृत एक ऐसी औषधि है, जिससे उन्होंने च्यवन ऋषि का वार्धक्य दूर किया था। आज भी इस महौषधि से फेफड़े के विकार, पुराना शास-कास आदि रोग दूर होकर शरीर पुष्ट और बलवान होता है और गई जवानी वापस मिलती है।



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : भाँसी : नागपुर

भारतीय स्वास्थ्यहीनता के मूल कारण

विश्वनाथ द्विवेदी, बी० ए०, आ०शास्त्राचार्य

किसी देश का स्वास्थ्य उस देश के शासक (गवर्नमेंट) और शासित (प्रजा) दोनों के सहयोगज स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों के अवलम्बन करने से सुरक्षित रहता है। हमारे भारतवर्ष में जनतन्त्र के होते हुए भी इन दोनों का स्वास्थ्य रक्षक-संपर्क समुचित नहीं है।

इन दोनों में स्वास्थ्य-रक्षा का सामुहिक संरक्षण गवर्नमेंट के ऊपर सर्वतोभावेन निर्भर करता है। जनसंघ की सुरक्षा व स्वास्थ्य-रक्षा देश के गवर्नमेंट पर ही निर्भर करती है। दुर्भाग्यवश भारतीय शासन स्वास्थ्य-रक्षण को नहीं समझ पाता। इसका प्रमुख कारण भारतीय जलवायु के सदुपयोग करने के लिये भारतीय दृष्टिकोण का नितान्त अभाव प्रधान हेतु ही है। भारतीय गवर्नमेंट में जनस्वास्थ्य व चिकित्सा का भार जिन मन्त्रियों पर निर्भर है, वे स्वास्थ्य क्या है? इसे नहीं जानते। जो इनके सहयोगी चिकित्सा-विभाग के अधिकारी हैं, वे भारत में भारतीय चिकित्सा का उपयोग करना नहीं चाहते। वे भारत में भारतीय जलवायु को यूरोपीय जलवायु में बदल देने का स्वप्न देखते हैं और यही प्रयत्न करते हैं। अतः भारतवर्ष की अपार धन-राशि विदेश में जाती है और भारतीय उसका उपयोग नहीं के बराबर कर पाते हैं। विदेशी औषधि, विदेशी साधन, विदेशी सामाजिक नियम और विदेशी स्वास्थ्य साधन भारतीयों के स्वास्थ्य में प्राण नहीं डाल सकते प्रत्युत बदले में भारत का शोषण और भारतीयों की स्वास्थ्यहीनता मिलती है।

आप पूछ सकते हैं कि किस आधार पर यह कहा जा रहा है, क्या इसका प्रमाण है? उत्तर यों है:—

भारतवर्ष एक विशाल देश है। इसमें छः ऋतुएँ क्रमशः होती हैं। संसार के किसी देश में ऐसी ऋतुओं का आविर्भाव नहीं है। हिमालय की हिमराशि, मद्रास व लंका की प्रतप्त भूमि इसी देश में है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिन्ध और महानदी की पवित्र धारा इसी देश में बहती है। यहाँ की भूमि सब ऋतुओं में शस्य श्यामला रहती है। यहाँ की जलवायु को यूरोप की शीतल हिमस्पर्शी जलवायु

मानना और उस स्थान के नियमों का लागू करना संभव नहीं है। अतः हमारे नाविक हमारे स्वास्थ्य की तरफ को भारतीय स्वास्थ्य सागर की निर्मल जलधि में न चलाकर आर्कटिक समुद्र के हिमराशिपूर्ण जलधि में खेने का प्रयत्न करते हैं। डर है कि कहीं तरफि हिम चट्टानों से टकरा कर चकनाचूर न हो जाय। विकृत और जीर्ण-शीर्ण तो हो ही रही है, इसके बजाय कहीं भयंकर झंझावात के चपेटों की शिकार न हो जाय।

स्वास्थ्य के तीन प्रधान स्तम्भ हैं स्वप्न, आहार और ब्रह्मचर्य। ये शरीर-रक्षा के प्रधान स्तम्भ हैं, ऐसा महर्षि चरक का निर्देश है। आप विचार कर देखिये कि इनमें से किसी की पूर्ति गवर्नमेंट कर रही है!

आहार

भारतीय गवर्नमेंट भारतीयों को रुखा-सूखा भर पेट आहार नहीं दे सकती। भारतीय अपनी मक्कारी, चोरबाजारी और स्वार्थपूर्ति को तिलांजलि नहीं दे सकते। हिताहार की बात छोड़िये, साधारण आहार भी नहीं मिल पाता। आज की भारतीय गवर्नमेंट के शासन में शुद्ध घी, शुद्ध दुग्ध और शुद्ध तेल नहीं मिलता। विदेशी शासन की आलोचना करनेवाली हमारी भारतीय गवर्नमेंट जो गुलामी के विदेशी शासन काल में मिलता था, उसका पंचमांश भी नहीं दे पाती। तो आप ही बताइये कि इस देश की प्रजा का स्वास्थ्य कैसे बने! गवर्नमेंट इस योग्य नहीं, जो बेकारी व चोरबाजारी हटा दे। हममें इतना स्वार्थत्याग नहीं कि घर में अन्न संग्रह करके अपने पड़ोसी की मदद कर सकें, बल्कि रखा हुआ भी सड़ा देते हैं। तब उचित आहार की बात किस मुंह से कह सकते हैं? भारत में अकाल, अन्न की कमी, बाजार की तेजी, महँगी, हमारी गवर्नमेंट के शासन की अज्ञानता, अधिकारियों की अज्ञता और भारतीयों की निम्नस्तरीय स्वार्थ भावना की उग्रता है। जब पैसा देकर भी शुद्ध वस्तु नहीं मिलती, तब स्वास्थ्य की रक्षा कैसे और किस प्रकार हो।

भारत के अधिकांश स्थलों में राशन का प्रबन्ध करना

पड़ा है। इसमें लक्षावधि कार्यकर्ता हैं, किन्तु इन वेतन भोगी कार्यकर्ताओं के द्वारा शुद्ध गेहूँ, जौ और चना भी नहीं मिल पाता। विदेशी गेहूँ साफ-सुथरा और पुष्ट आता है। भारतीय गेहूँ एक चौथाई या तिहाई भाग कूड़ाकरकट और धूल गुब्बार से मिश्रित होता है। अतः अन्न की स्थिति दयनीय होने से आहार क्या बनेगा। महा संमर में पशुओं की भयानक हत्या कर भारतीय पशु-धन विदेशी फौजियों की उदरहटी में विलीन हो गया। अतः दूध, घी का अभाव हो गया। दूध के बदले में विदेशों से दूध के पाउडर मँगाकर दिये जाते हैं और लाखों रुपये विदेशों में भेजे जाते हैं। गवर्नमेण्ट अनेकों योजनाओं पर करोड़ों रुपये नष्ट कर बैठ जाती है। किन्तु ; एक दो करोड़ रुपये से दूधवाले पशुओं को रखने का साधन देकर प्रत्येक भारतीय से अनिवार्य दुग्ध पशु रखने का प्रबन्ध नहीं कराती, जिससे स्थायी दुग्ध-घृत का प्रबन्ध हो जाय व धन भी देश में ही बढ़े। ये डिब्बे क्या जीवन प्रदान करेंगे ; जिनमें धन रूपी जीवात्मा विदेशों को जा रही है।

उत्तर प्रदेशीय गवर्नमेण्ट ने अभी पूर्वी देशों के अकाल को दूर करने के लिए विटामिन की कई लाख गोलियाँ खरीद कर वहाँ बाँटने को भेज दी है, ऐसा समाचार है। किन्तु ; कोई पूछे कि भूखे व्यक्तियों की भूख विटामिन की ये गोलियाँ मिटा देंगी या भरपेट ज्वार-बाजरा अथवा इससे निकृष्ट अन्न जिनका कि प्रबन्ध ये नहीं कर पा रहे हैं ! हत भाग्य भारत ! तेरे सपूत तुम्हारी आत्मज्योति राष्ट्र-स्वास्थ्य को यों विदेशी पूंजीवादियों के चरणों में चढ़ा रहे हैं, तुम्हारे प्राणत्याग की तैयारी कर रहे हैं। राष्ट्र-भावना विहीन तेरे सपूत राष्ट्र की चक्की में अनेक अपने ही भाईयों को पीस कर उनके स्वास्थ्य को चूर्ण-विचूर्ण कर जीवन ज्योति को विच्छिन्न करने पर तुले हैं। स्वास्थ्य रक्षा का प्रश्न तो पृथक् है, आत्म रक्षा भी संभव नहीं है।

इस प्रकार आहार की समस्या है। आहार ही जीवन है, यही स्वास्थ्य साधन का मूल स्तम्भ है। उसकी प्राप्ति भरपेट नहीं होती। जो अन्न मिलता है, स्वास्थ्योचित नहीं है। उत्तम पोषक वस्तु दुग्ध, घृत, आदि का अभाव है। इनके बदले चलनेवाले वनस्पति घी भी सस्ते, शुद्ध और पर्याप्त नहीं मिलते। वनस्पति घृत रासायनिक क्रियाओं द्वारा तैयार होने से अपने स्वाभाविक गुणों को भी प्रकट नहीं कर पाता। इसका सेवन उदरशूल, दृष्टि

मांद्यता, निबलता, शुक्लीनता, निरपत्यता और क्षय की तरफ अग्रसर कर रहा है।

आहार द्रव्यों में दुग्ध

घृत, गेहूँ, जौ, चना, द्विदल, शर्करा, गुड़ और चावल आदि आज सुलभ नहीं हैं। सांस जातीय प्राणियों की कमी से सांसाहारियों को उत्कृष्ट सांस का पर्याप्त साधन नष्ट हो गया है। फिर और पदार्थों की वार्ता ही क्या है। वस्त्र

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति के कारण वर्षा, ग्रीष्म और शीत-प्रधान ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के शीत-उष्ण से रक्षा करनेवाले वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। ये वस्त्र भी स्वास्थ्य-रक्षण में उत्कट भाग लेते हैं। देश की गरीबी एवं भूखमरी में वस्त्र व परिधान के उचित साधन न मिलने से कोई प्रतिश्याय का, कोई शीतज्वर का तो कोई इन्फ्लुएन्जा का शिकार बनता है। न्यूमोनिया, प्लूरिसी, मलेरिया, यक्ष्मा अपना आवास साल भर भारत-वर्ष के किसी न किसी नगर में या प्रान्त में बनाये ही रहते हैं। अतः स्वास्थ्य की रक्षा का कोई भी उपदेश काम नहीं करता।

मानसिक संतुलन

अन्न-वस्त्र सुलभ नहीं हो पाता, अतः गृह की आर्थिक स्थिति की अस्थिरता में प्रत्येक गृहस्थ पीसा जा रहा है। उनके बच्चों को पेट भरने के लिये अन्न नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं, पढ़ाने-लिखाने को पैसा नहीं—अतएव गृह-स्वामी का स्वास्थ्य मानसिक विचारों के उतार-चढ़ाव में विकृत हो जाता है। वह अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठता है और पूर्ति के लिये सब साधनों का उपयोग करता है।

भारतीय राष्ट्र नीति की चक्की में दले गये विस्थापितों को घर की पूरी व्यवस्था नहीं, आहार व वस्त्र का सदुपयोग नहीं, तब जो परिणाम हो सकता है, होता है। देश में अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार तथा चोरी-डकैतियों और हत्याओं की वृद्धि होती जा रही है।

आचार-व्यवहार

ऐसे देश के निवासियों में फिर कोई आचार-विचार भी नहीं रुकते और इन भारतीयों के भीतर बर्ग विहीन दल, हरिजन, दुर्जन-सज्जनों का बनने लगा है और कामाग्नि की वृद्धि, व्यभिचार के साधनों का प्रचार, कृत्रिम

भारतीय स्वास्थ्यहीनता के मूल कारण

९३१

साधनों की वृद्धि, वर्थकण्ट्रोल के नियमों के प्रयत्न आदि प्रकारों ने देश के वातावरण में एक नया विष वमन कर उसके संक्रमण को फैला कर आचार-विचार में अनावश्यकता उत्पन्न कर दिया है। अतः राष्ट्रकाय का प्रत्येक भाग शरीर, आत्मा व मन—ये तीनों ही विकृत हो रहे हैं। तब स्वास्थ्य कैसे ठीक रहे, यह विचारणीय विषय रह गया है।

स्वप्न

नींद का ठीक प्रकार से आना स्वास्थ्य रक्षण में लाभप्रद है। भूखे-नंगे तन में नींद क्या आयेगी—यह एक साधारण विषय है। स्वच्छन्दता की वृद्धि के कारण नवयुवक-नवयुवतियाँ रात्रि को सिनेमा घरों और विहार-शालाओं में घूम कर नष्ट करती हैं। दिन में वे देर तक सोते हैं, समय पर भोजन कर कार्यकाल में ड्यूटी पर नहीं पहुँचते। यही विधि बार-बार दुहराई जाती है। परिणाम-स्वरूप दीर्घत्व, अग्निसाद और कई प्रकार के मानसिक-शारीरिक रोग बढ़ने लगे हैं। अतः स्वास्थ्यता संभव नहीं।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचारी रह कर प्राचीन काल में गुरुकुल और ऋषिकुल में ब्रह्मचर्य धारण किया जाता था। शुक्र के रक्षार्थ यह क्रम अपनाया जाता था और पच्चीस वर्ष तक शुक्र-संरक्षण किया जाता था, ताकि शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बने। शुक्र शरीर का अंतिम शुद्ध धातु है। इसके रहने पर शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बनता है, शरीर पर कान्ति और चमक बनी रहती है तथा इसके क्षय होने पर शरीर निस्तेज और निष्क्रिय हो जाता है।

दुर्भाग्यवश आज कल के स्कूलों में जब कि ब्रह्मचारी बने रहने की अवस्था रहती है, ऐसे कोई भी उपदेश नहीं दिये जाते, जिससे शुक्र-संरक्षण का महत्त्व प्रतिपादित होता हो। बल्कि उल्टे आज के ये शिक्षास्थल कुरीतियों और अप्राकृतिक व्यभिचारों के उपेक्षा का कार्य करते हैं। कृत्रिम निरोधक साधनों ने इनकी वृद्धि में बड़ा सहयोग दे रखा है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता। इन शिक्षाशालाओं में इस संबंध की अनिवार्य शिक्षा का होना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन असंभव हो गया है। अतः विचारणीय विषय यह है कि जब आहार, स्वप्न व ब्रह्मचर्य जो वैयक्तिक व सामाजिक स्वास्थ्य संर-

क्षण के स्तंभ हैं, किस प्रकार उनका विनाश हो रहा है। अतः स्वास्थ्य की रक्षा हो तो कैसे?

और विचारिए कि—स्वास्थ्य रक्षण के किन उपायों को हमारी गवर्नमेण्ट प्रयोग कर रही है और वह उपादेय है कि नहीं। विचार करके देखें तो आज स्वास्थ्य उपाय के कोई भी साधन (Preventive Measure) वह चाहे निरोधक हों या चिकित्सा संबंधी मुलभ सर्वलब्ध नहीं है। व्याधि निरोधक साधन

स्वास्थ्य विभाग के नाम से प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक गवर्नमेण्ट व्यवस्था करती है। जितने ही रोग-रोधक उपाय हैं, वे सब के सब प्रयुक्त यदि मान लें, तो रोग नहीं होना चाहिये। किन्तु ; देख रहे हैं कि इनके बावजूद हर वर्ष रोगों का संक्रमण बढ़ता जा रहा है और मृत्यु संख्या बढ़ती जा रही है। मलेरिया, कालरा, क्षय और शीतला ज्वर के आक्रमण बराबर बढ़ रहे हैं। यदि साधन ठीक है, तो इनके बढ़ने का कोई कारण नहीं। किन्तु ; नित्य रोग बढ़ते जा रहे हैं और रोक-थाम नहीं दिखाई पड़ता। अतः अवश्य इन में त्रुटि है और गलती इस में क्या है, कमी इसमें क्या है—जानना बहुत आवश्यक है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य-संरक्षण के उपाय

आहार—(१) आहार प्राप्ति के लिये गवर्नमेण्ट राशन विभाग के अधिकारियों को सहती के साथ निरीक्षण करे और यदि वह गलत रास्ते से चलें, तो भयंकर दंड दें।

(२) चोरबाजारी करनेवाले व्यापारियों को कठिन-तम दण्ड दिया जाय। साथ ही कर्तव्यपरायण तथा मौलिक भावना की सुधार के लिये स्थान-स्थान पर सजुपदेशों का प्रबन्ध हो।

(३) अन्नवर्द्धन के उपायों का अवलम्बन हो। गन्ने की फसल की वृद्धि को रोककर अन्न उपजाने पर जोर दिया जाय।

(४) दूध के प्रबन्ध के लिये 'पशुपालन' बिल बनाकर हर एक समर्थ गृहस्थ को दूधवाले जानवरों गाय, भैंस, बकरी में से किसी एक को पालने को बाध्य किया जाय और उन्हें प्रारम्भ में आर्थिक सुविधा दी जाय।

(५) गवर्नमेण्ट का इनफार्मेशन विभाग जिसके कर्मचारी केवल गवर्नमेण्ट की कार्यवाहियों के प्रचार करने में समय बिताते तथा देशके धन की बड़ी राशि बेतनों में पा रहे

हैं, उन्हें चरित्र शिक्षण, सदाचार, धर्माचार और सदुपदेशों के उपदेश-प्रचार का कार्य दिया जाय।

(६) गवर्नमेण्ट में दलबन्दी पार्टी-पॉलिटिक्स का अन्त हो कर शुद्ध राष्ट्र सेवा और जनहित कामना की वृद्धि का प्रबन्ध किया जाय।

(७) धन व अन्न की वृद्धि के लिए हर स्थानीय गवर्नमेण्ट में (Agriculture) कृषि विभाग व पंचायत राज के महकमें दोनों पृथक-पृथक रखकर उत्तर प्रदेश की तरह दुहरा व्यय कर राष्ट्र का धन नष्ट न किया जाय। इस धन से कृषि सम्बन्धी उन्नति की योजना बढ़ाई जाय।

(८) स्वास्थ्य व चिकित्सा विभाग—इसमें स्वास्थ्य रक्षा के आयुर्वेदिक शिक्षाओं का घर-घर प्रचार किया जाय। स्वास्थ्य संबन्धी ज्ञानोपदेश देकर स्वास्थ्य-रक्षण का उपाय हो। आज के स्वास्थ्योपदेशक D.M.O.H. व उनके स्टाफ द्वारा जो खाना पूरी हो रही है, वह बन्द हो कर उचित व सही रूप में सेवा भावना से कार्य हो। केवल टी० ए० बनाने के लिये दौरे न हों। मलेरिया, अतिसार इत्यादि के निमित्त बाँटने की श्रौषधियों को सस्ते भाव में कैमिष्ठों ड्रिगिष्ठों या प्रेक्टिशनरों के हाथों न बेच, पाकेट में पैसा जमा करने के बजाय ठीक-ठीक प्रकार से उचित वितरण हो।

(९) टीका लगाने में आकड़ों का सही लेखन हो। पैसा बनाने के निमित्त एक गाँव में दो टीके लगाकर २०० फर्जी नाम न लिखे जायें। संक्रमण काल में संक्रमण से पूर्व रोधक-श्रौषधि वितरण की जाय या सूची वेध से प्रयोग किया जाय।

(१०) आयुर्वेद की संक्रमण-रोधक उपायों का जिहें जनता स्वयं करती है। ठीक प्रकार से करने का उपदेश दिया जाय। जैसे शीतला में—(१) किसी का संपर्क न होने देना (२) हवन-पूजन के नाम पर धूप, गुग्गुलु व राल की धूनी देना। (३) लोंग व इलायची का छाक (वितरण) रोगी के घर के द्वार पर फैलाना व संक्रमण रोकने का हेतु बनाना। (४) एक आदमी को ही शुद्धता पूर्वक रोगी के पास रखना और शेष प्राणियों को रोक देना। चैत्र मास के आरम्भ में नीम की गोलियों का सेवन कराना व रोगक्षम शरीर बनाना। (५) वसन्त ऋतु में शाल के पुष्पित पेड़ की पूजा कर उसके पराग का गंध नासिका में पहुँचाना (शालके बीज व पुष्प-पराग) तीव्र

शीतला-संक्रमण रोधक है। (६) रोगी को नीम व चन्दन का क्वाथ देना इत्यादि। यह विधि हर एक गाँव में होती है। उन्हें स्पष्ट रूप में समझा देना आवश्यक है। विसूचिका व मलेरिया के अवरोधक उपायों का प्रबन्ध

विसूचिका—(१) काय-विशोधन कर दोष निर्हणार्थ वमन विरेचनादि पंच कर्मों का प्रबन्ध व संजीवनी बटी का सेवन (२) प्याज के रस का सेवन (३) लोंग के क्वाथ का पान (४) अपामार्ग के पंचांग क्वाथ का सेवन (५) वच के चूर्ण का नालियों व गन्दे स्थानों में छिड़कना (६) कर्पूर का धूप देना व कर्पूर के द्रव का प्रयोग करना (७) केवल काली मिर्च व गुड़ का नियमित रूप से प्रातः खाने का नियम बताना। (८) यज्ञ व हवन द्वारा वायु शुद्ध करना (९) निर्मली, फिटकरी, वच व गन्धक का चूर्ण पोटली में बाँधकर कुएँ में डालना इत्यादि।

मलेरिया—(१) कालमेघ या कल्पनाथ की पत्तियों व कालीमिर्च की गोलियों का सेवन (२) काय विशोधन (३) गंदे स्थानों को शुद्ध करना (४) सौंफ के तेल, मिट्टी के तेल और वच के चूर्ण को घरों व नालियों में छिड़कना तथा घरों में इसे जलाकर धूम पूरित करना (५) पंचतिक्त की गोलियों का मुफ्त बाँटना। (सप्त-वर्ग, कुचला, कालमेघ, कुटकी-चिरायता) उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इसे ज्वरांकुश के नाम से पुकारते हैं। यह जाड़े के बुखार को खूब रोकता है। (६) गवर्नमेण्ट द्वारा मलेरिया संहार का वितरण हर एक गाँव में कराना इत्यादि।

११—देशी श्रौषधियों के चिकित्सकों की वृद्धि करना तथा स्वास्थ्य रक्षा के उपायों का प्रयोग व उपदेश कराना।

१२—संध्या करने की विधि का प्रचार करना, जिसमें प्राणायाम द्वारा फेफड़ों में सहनशीलता उत्पन्न होती है और उसमें क्षमता आकर फेफड़ों के टी० बी० की अवरोधक-शक्ति मिलती है। प्रतिवर्ष हजारों नवयुवक व युवतियाँ टी० बी० द्वारा मौत के मुख में जा रही हैं। प्राचीन चिकित्सकों ने इसे दैनिक कृत्य बतलाकर क्षय से ब्राण पाने का सरल प्रकार बतला चुके हैं।

१३—व्रत उपवास—व्रतों में उपवास करने से शरीर (शेषांश ६३६ पृष्ठ पर)

आयुर्वेद दृष्टि से स्वप्न-विचार

अत्रि

स्वप्नों का रोग या स्वास्थ्य के साथ क्या सम्बन्ध है, या हो सकता है; यह बात आज से तीस साल पूर्व समझ में आने में इतनी सरल नहीं थी जितनी आज है। जिस प्रकार कि आज से एक सौ वर्ष पूर्व यह कल्पना करना असम्भव था कि १८ घण्टों में ३ हजार की दूरी पार करके देहली से १ बजे चल कर मनुष्य प्रातः ७ बजे लन्दन में चाय पी सकता है। यद्यपि नित्य प्रति रात्रि में सोते समय यजुर्वेद का मंत्र "यज्जागृतोद्वरमुदेति, तदुसुप्तस्य तथैवति दूरङ्गम ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु" पढ़ते थे—जिसका अर्थ यही है कि मनुष्य का मन सोते और जागते समय दूर से दूर जाने वाला है, वह ज्योतियों में एक ज्योति है, यह मेरा मन शिव संकल्प (कल्याण संकल्प) वाला हो। इसी प्रकार के अगले ५-७ मंत्र हैं, जिनमें मन का स्थान, कार्य और गति बताई है। मन की गति सबसे तेज मानी गई है। गीता में अर्जुन ने मन को वायु के समान नियंत्रण में लाना कठिन माना है। इसी से इसका वेग समझा जा सकता है। परन्तु; आज मनुष्य ने जहाँ इतनी दूरी को एक उड़ान में पार करना सीख लिया है, वहाँ मन को भी पकड़ने का या समझने का उसने आरम्भ कर दिया। इसमें उसे सफलता भी मिली है।

यह प्रसन्नता की बात है कि आज के इस विषय की सफलता—प्राचीन ऋषियों की जानकारी और उनके दर्शन के साथ बहुत कुछ मेल खाती है। तीस साल पूर्व यक्ष्मा-क्षय रोग में पड़े पूर्वरूप आज पाश्चात्य ज्ञान की अग्नि में तपकर पूरी तरह से निखर आये हैं। उदाहरण के लिये—उन्माद रोग के पूर्वरूपों में अत्रिपुत्र ने कहा है कि—स्वप्ने च दर्शन-ममीक्षण भ्रान्त चलितानवस्थितानां च रूपाणामप्रशस्तानां च तिलपीडक चक्राधि रोहणं वातकुण्डलिकाभिश्चोन्मथनं, निमज्जनं कलुषाणामभिसाभावत्तंबु"—रोगी स्वप्न में बार-बार भ्रान्त, चलायमान, अस्थिर एवं निन्दित रूपों को देखता है, वह अपने को कोल्हू पर बैठा देखता है, वायु के आधियों में फंसा अपने को समझता है, कलुषित पानी की भँवरों में डूबता अपने को देखता है। इन लक्षणों की

आप उन्माद रोगी के मन की अवस्था से तुलना करें, तो स्पष्ट पता लग जायेगा कि कितनी बारीकी और सत्यता से सारा चित्र उपस्थित किया गया है। उन्माद रोगी में ध्यान की एकाग्रता नहीं रहती, वह सदा अस्थिर रहता है; उसके विचार, आँख और कान अस्थिर होते हैं, वह शब्द न होने पर भी शब्द सुनता है (अशब्द श्रवणम्), असद्वर्णों को भी वह देता है (असतां रूप दर्शनम्) यही चंचलता-अस्थिरता उसे स्वप्न में भी दिखाई देती है।

एक और उदाहरण देखिये—क्षय रोग में सब कुछ क्षीण होता है; मांस कम हो जाता है, बल-शक्ति-ओज-तेज—ये सब कम हो रहे होते हैं, इसी से रोगी मृत्यु या श्मशान की ओर अग्रसर होता जाता है। इस रोग के स्वप्नों में काशीपति कहते हैं कि रोगी को काक, शुक, शल्लकी, नील-कण्ठ, गीध, बन्दर, छिपकली और गिरगिट उसे ले जाते दीखते हैं। उसे स्वप्न में जल रहित सूखी नदी दीखती है, सूखे वृक्ष दिखाई देते हैं, धुएँ या बनाविन से जले दीखते हैं। अब दोनों की तुलना देखिये—रक्त-मांस क्षीण होता है साथ ही यहाँ पर स्वप्न में पानी रहित नदी देखता है। शरीर सूख रहा होता है, साथ ही वृक्ष सूखे-जले उसे दीखते हैं। रोगी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा होता है—इसीसे निन्दित प्राणी उसे ले जा रहे हैं।

एक और उदाहरण देता हूँ—यह उदाहरण फ्राइड के स्वप्न विश्लेषण से बहुत मिलता है। मनुष्य की प्रकृति को जानने के लिये काशीपति दिवोदास ने उसके स्वप्नों को जानने का आदेश दिया है, जैसे कि वात प्रकृति के मनुष्य 'वियति गच्छति'—मनुष्य आकाश में उड़ता हुआ अपने को देखता है—जो वास्तव में हवाई किला है। इसका यही अर्थ है कि वह आकाशी महल खड़ा करता है। इसका एक कारण बहुत स्पष्ट है। वायु स्वयं निराकार, चंचल, अस्थिर और सदा गतिशील है, इसलिये इस प्रकार के विचार-स्वप्न सदा ऐसे ही होते हैं—इसके विपरीत कफ-प्रकृति का मनुष्य स्वप्न में सरोवर और नदियों को पानी से भरे तथा पानी के जलचर पक्षियों को देखता है, क्योंकि

कफ का अर्थ ही जल का बढ़ना है। इसीसे फ्राइड ने कहा है कि मनुष्य के स्वप्नों को देखकर उसकी प्रकृति का निश्चय करना चाहिये, उसकी मानसिक स्थिति को पहिचानना चाहिये।

स्वप्न क्या है और कैसे आते हैं—इस विषय में भी प्राचीन ऋषियों ने विचार किया है, इसमें काशीपति का उत्तर थोड़ा स्पष्ट है—उसे ही मैं पहिले लेता हूँ—

यथा—पूर्वं देहानुभूतास्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः।

रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥

भूतात्मा पूर्व शरीरमें जिन वस्तुओं को अनुभव करता है, उन्हीं को मन और इन्द्रियों के संयोग से देखता है। ज्ञान में आत्मा, मन, इन्द्रिय और विषय इन चार का सन्निकर्ष आवश्यक है। जागृत रूप में भी इसी प्रकार हमको ज्ञान होता है, स्वप्नावस्था में भी यही होता है, अन्तर केवल स्थूल शरीर या स्थूल इन्द्रिय और सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म इन्द्रिय का है। जागृत अवस्था में स्थूल शरीर काम करता है और स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर या इन्द्रिय कार्य करती है। सूक्ष्म शरीर की विवेचना उपनिषदों में बहुत अच्छी तरह की गई है—इसका एक उदाहरण भगवान् शंकराचार्य का अमरुक राजा के शरीर में शरीर-प्रवेश था, अथवा चरक में वर्णित 'जातिस्मर' अवस्था मनुष्य की है।

सूक्ष्म शरीर से या सूक्ष्म इन्द्रिय के साथ विषय और मन का संयोग होने से आत्मा में स्वप्न होता है। इसी से यजुर्वेद के प्रथम लिखित मंत्र में यह कहा गया है—मनुष्य का मन सोते हुए भी जागते हुए की भांति बहुत दूर की उड़ान लेता है। इसी मन के द्वारा जागृत अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान और सुप्तावस्था में स्वप्न-ज्ञान होता है।

इसी को चरक में अत्रिपुत्र ने थोड़ा अधिक स्पष्ट रूपसे कहा है—उसका कहना है कि मनोवह स्रोतों के वात-पित्त-कफ से भर जाने पर मनुष्य दारुणी स्वप्नों को देखता है। स्वप्न देखने के समय मनुष्य अति गहरी नींद में नहीं होता। इन्द्रियों को प्रेरणा करने वाले मन के द्वारा वह स्वप्नों को देखता है—मनोवहानां पूर्णवत्वाद् दोषै-रतिवलैस्त्रिभिः। स्रोतसां दारुणान् स्वप्नान् काले पश्यति दारुणान् ॥ नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि। इन्द्रियेशन मनसा स्वप्नान् पश्यत्यनेकधा ॥

मनोवह स्रोतस क्या हैं—इस विषय में भी ऋषि

अत्रिपुत्र ने हमारी मदद की है—उन्होंने अन्नवह, प्राण-वह, मूत्रवह, आदि तेरह प्रकार के स्रोतस कहे हैं। परन्तु; वातवह, पित्तवह और कफवह-स्रोतस नहीं कहे। क्योंकि; ये तीनों मनुष्य के शरीर में अपाद मस्तक रूप में सब स्थानों में, सब रोमकूपों में व्याप्त हैं—वातपित्तश्लेष्माणामुनः सर्वं शरीरं चराणां सर्वं स्रोतांसि अयन भूतानि—वात-पित्त-कफ के तो सब स्रोत स्थान हैं। इसी प्रकार मन आदि अति इन्द्रियों के सब स्रोत-चेतना की भांति गमन स्थान हैं। अर्थात् मन भी वात-पित्त कफ की भांति आपाद मस्तक तक गमनशील है, अर्थात् शरीर का कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां मन नहीं, चेतना नहीं, वात-पित्त-कफ नहीं। इसलिए; मनोवह स्रोतस—सारे शरीर में फैले हैं, जिनमें मन चलता है। इसी से मन के गुण बताते हुए अत्रिपुत्र ने कहा कि—'अणुत्वमथ एकत्व द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ' मन-अणु है—और एक है। इसका काम संकल्प और विकल्प है, जिस प्रकार जागृतावस्था में मन सफल और असफल विचार के उधेड़ बुन में रहता है, उसी प्रकार रात में अर्ध निद्रावस्था में अपनी उधेड़ बुन में लगा रहता है।

मन का कार्य

चित्त्यं विचार्यं मुह्यं च ध्येयं संकल्पमेव च। यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञेयं तत्सर्वं ह्यर्थं संज्ञकम्। इन्द्रियाभिग्रहः वर्मं मनसः स्वस्य निग्रहः। ऊहापोह विचारश्च ततः बुद्धि प्रवर्तते ॥

मन का कार्य चिन्तन, विचारना, तर्क-वितर्क करना, ध्यान, संकल्प, इन्द्रियों का नियंत्रण और अपना निग्रह, ऊहापोह और विचार करना है। इसलिए; संकल्प-विकल्प का सम्बन्ध मन के साथ होने से स्वप्नों का सम्बन्ध भी मन से है, मन-मनोवह स्रोतसों के द्वारा सब स्थानों पर पहुँचता है।

मन का स्थान

इसको स्पष्ट करने के लिए मैं एक स्थूल उदाहरण आपके सामने रख दूँ तो इससे अभिप्राय स्पष्ट हो जायेगा। श्री श्रेष्ठी विड़ला का स्थान नई देहली के एक मकान में है परन्तु; उनका कार्य सम्पूर्ण भारत में फैला है। वह एक छोटे से मकान में सीमित रहने पर भी भारत तथा अन्य देशों में फैले अपने सब कार्य को देखते हैं, उसकी जानकारी रखते हैं, उसको आदेश देते हैं।

यह सब कार्य तार और टेलीफोन, पत्र आदि के द्वारा जल्दी तथा असाधारण क्रिया से हो जाता है। इसी प्रकार मन हृदय में रहकर भी अपने शरीर रूपी कार्य क्षेत्र की पूर्ण खबर रखता है और जरूरत पड़ने पर योग्य आदेश भी देता है।

हृदय क्या है—बस उलझन यही है—हृदय की समस्या ही सबसे पेचीदी है। हृदय नाम से जो Heart कहा जाता है कि उसमें मन रहता है, यह तो असम्भव है। क्योंकि यदि हृदय को सर्जन कर इसमें नश्वर लगाएँ तो इसमें चिन्तन, विचार, तर्क आदि कोई क्रिया भी नहीं दीखती। यह तो केवल रक्त को फेंकने वाला अवयव मात्र है, जैसे कि यकृत, प्लीहा आदि दूसरे अवयव हैं। फिर कौन सा हृदय? यहाँ पर फिर ऋषि अत्रिपुत्र ने रास्ता दिखा दिया है। गुल्म चिकित्सा में शल्य कर्म करते समय अत्रिपुत्र ने कहा है कि “नत्वत्र हृदयं स्पृशेत् ॥”—यहाँ पर हृदय का अभिप्राय केन्द्र या Centre से है। अर्थात् अन्तः विद्रधि में इसके केन्द्र को मत छूएँ—किनारों से लावणी करें। बस, हृदय का अर्थ केन्द्र समझकर मस्तिष्क का केन्द्र ढूँढ़ लीजिये जो कि चौथा वैन्द्रीकल है। वैन्द्रीकल का दूसरा अर्थ गुहा है। इसी गुहा में मन का स्थान है, यहाँ पर रहता हुआ मन अपने सारे कार्य क्षेत्र में काम करता है। जिस प्रकार कि नई देहली में बैठे श्रेष्ठी विड़ला अपना सारा कार्य दूरस्थ देशों में चलाते हैं। यही मन सूक्ष्म इन्द्रियों के साथ निद्रावस्था में संयुक्त होकर स्वप्न उत्पन्न करता है।

स्वप्नों के भेद

स्वप्न दो प्रकार के हैं, सफल और अफल। इनके फिर सात प्रकार हैं—यथा—

‘दृष्टं श्रुतमनुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा ।’

“भाविकं दोषजं चैव स्वप्न सप्त विधं विदुः ॥”

देखा, सुना, अनुभव किया, याचना किया, कल्पना किया; भावावेश जनित और दोष जन्य भेद से स्वप्न सात प्रकार का है। इनमें प्रथम पांच प्रकार के स्वप्न अफल होते हैं। इसी प्रकार दिन में देखे स्वप्न या बहुत लम्बे जो स्वप्न होते हैं, वे भी व्यर्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार से केवल भावावेश वाले और दोष जन्य स्वप्न ही फलदायी होते हैं। इसमें भी रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा स्वप्न कम फलदायी होता है। अशुभ स्वप्न

देखकर फिर यदि शुभ स्वप्न मनुष्य देख लेता है, तो उसका शुभ फल होता है।

इसमें विचारणीय बात यह है कि देखा, सुना, अनुभव किया, याचना किया और कल्पना किया स्वप्न अफल इसलिये है कि उसके संस्कार पहिले से ही मन पर अंकित होते हैं; इसीसे वही छाया विचार रूप में स्वप्न में आती है। इसी बात को काशीपति दिवोदास ने कहा है—जैसा कि प्रारम्भ में ही मैंने उल्लेख किया है, भूतात्मा पूर्व अनुभूत अर्थ को स्वप्न में देखता है और पूर्व अनुभूत होने से ये स्वप्न निष्फल जाते हैं।

दोषज स्वप्न निष्फल इसलिये नहीं जाते कि वह मनुष्य की दोषजन्य प्रकृति के अनुसार होते हैं। इसीसे फ्रायड ने कहा है कि मनुष्य के स्वप्नों की गतिविधि को जानकर उसकी मानसिक विकृति का विश्लेषण करना चाहिये। काशीपति ने स्वप्नों से मनुष्य की प्रकृति को पहिचाना है।

भाविक या भावावेश वाले स्वप्न सफल इसलिये होते हैं कि मनुष्य जो चाहेगा—जिसके लिये वृद्ध संकल्पशील होगा उसी का रंग रात-दिन मस्तिष्क में रहता है, उसी के अनुसार काम करेगा—इसमें वे सफल भी हो सकते हैं और अफल भी।

इस प्रकार से स्वप्न-मीमांसा का विवेचन प्राचीनों ने भारतीय दर्शन शास्त्र की संमति रखकर आयुर्वेद में किया है। स्वप्न विचार से रोगी के अरिष्ट लक्षण मृत्यु आदि का निश्चय भी इनसे करने का यत्न किया है। क्योंकि; मृत्यु के समीप आने पर मनुष्य की मनोवृत्ति भी बदल जाती है; जिस वस्तु में उसे रस होता है, उसमें उपेक्षा हो जाती है, जिसमें कभी स्नेह नहीं होता—उसमें स्नेह हो जाता है, इसीसे ऋषि अत्रिपुत्र ने जिन शब्दों में यह चित्र खींचा है,—वही शब्द आपके सामने रखकर बिदा लूंगा।

‘अभ्युप्राणां विनाशाय देहेभ्यः प्रविवत्सताम् ।

दुस्तंस्तिक्ष्णतां प्राणान् कान्तं वासं जिहासताम् ॥

तत्रयन्त्रेषु-भिन्नेषु तमोऽन्त्यं प्रविविक्षताम् ।

विनाशायैह रूपाणि यान्यवस्थान्तराणि च ॥

भवन्ति तानि वक्ष्यामि यथोद्देशम् यथागमम् ॥

“शीलमस्यव्यावर्तते, भक्तिविपर्यस्ते, सर्वेन्द्रियाण्युपतप्यन्ते, वलं हीयते, व्याधयः आप्यायन्ते, यस्माद् हीनः प्राणान् जहाति, यदिन्द्रियाणिमभिप्राहकं च मन इत्यभि-

धीयते—मृत्यु के समय मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है, भक्ति बदल जाती है, सब इन्द्रियां पीड़ित होती हैं, बल कम हो जाता है, रोग बढ़ जाते हैं, जिसके बिना मनुष्य प्राणों को छोड़ देता है और जो इन्द्रियों का निग्राहक है, वह यह मन ही है। इसी मन के लिये कृष्ण ने कहा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ यही मन स्वप्न का कारण है, जिसका स्थान मस्तिष्क का हृदय है। कार्यक्षेत्र यह सम्पूर्ण शरीर है। दिन में कार्य करना, रात्रि में स्वप्न देखना^१ ।

—:०:—

१—लेखक की प्रयोगिक चिकित्सा (Clinical medicine) से मानस रोग चिकित्सा के आधार पर ।

(पृष्ठ ६३२ का शेषांश)

के सेलों में चैतन्यता प्राप्त होती है तथा शरीर में कष्ट सहने की क्षमता प्राप्त होती है। धार्मिक रूप से ऐसे नियमों का प्रयोग है, जिससे शरीर स्वस्थ रह सके ।

१४—हवन व यज्ञ—यज्ञ करने की प्रथा का प्रचालन करना । यज्ञ में बड़े - बड़े हवन होते हैं, जिससे वायु की सामुहिक शुद्धि हो जाती है और संक्रामक रोगों से बचाव होता है ।

१५—धूपन—प्रातः संध्याकाल में पूजन करके धूप देने से गृह के वायु की शुद्धि हो जाती है । अतः रोग से बचाव होता है इत्यादि ।

जब तक इन विधियों का प्रचार न होगा, तब तक राष्ट्र का स्वास्थ्य नहीं सुधर सकेगा ।

—:—

सचित्र आयुर्वेद

व्यवस्था सम्बन्धी नियम

- १—सचित्र आयुर्वेद, जुलाई, १९४८ से प्रकाशित हो रहा है ।
- २—इसका मूल्य एक प्रतिका ।=) छः आने और वार्षिक ४) मात्र हैं ।
- ३—वार्षिक मूल्य की वी० पी० से अंक मंगाने पर ग्राहकों को ॥) खर्च अधिक पड़ जाता है ।
- ४—ग्राहक वर्ष में सिर्फ दो बार जुलाई और जनवरी में बनाये जाते हैं ।
- ५—गत वर्ष की फाइल या पृथक् अंक अप्राप्य है ।
- ६—कार्यालय से प्रत्येक ग्राहकों के पास अंक तीन बार अच्छी तरह जाँचकर भेजा जाता है । अतः अंक न मिलने पर डाकखाने से पूछ-ताछ करनी चाहिये । यदि अंक न मिले तो उसकी सूचना रजिस्ट्री खर्च के साथ कार्यालय में उस महीने की अन्तिम तारीख तक अवश्य आ जानी चाहिए । तभी अंक दुबारा भेजा जायगा ।
- ७—कार्यालय से पत्रव्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या लिखने से कार्यालय को उत्तर देने में सुविधा होती है । अतः कृपया ग्राहक संख्या अवश्य लिखा कर ।
- ८—पते में केवल “श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०” लिखा रहने से पत्रोत्तर में विलम्ब होता है, क्योंकि डाक का विभागीय विभाजन हो जाने के बाद उत्तर दिया जाता है । परन्तु “सचित्र आयुर्वेद” से सम्बन्धित पत्र में “व्यवस्थापक—सचित्र आयुर्वेद” अवश्य लिखें ।

—व्यवस्थापक

सार्वजनिक स्वास्थ्य का अनुपम उपाय

श्री युत मदनगोपाल वैद्य, ए. एम. एस. एम. एल. ए.

प्रायः ऐसा समझा जाता है कि आयुर्वेद में केवल रोगों की चिकित्सा का ही समावेश है, उसमें स्वास्थ्य रक्षा का विषय नगण्य-सा है। परन्तु तथ्य इसके विपरीत है। चरक का प्रथम अध्याय स्वास्थ्य रक्षा से शुरू होता है और अध्याय का नाम ही 'दीर्घजीवित्वमध्याय' है। चरक ने आयुर्वेद शास्त्र के दो उद्देश्य स्पष्ट ही लिखे हैं।

१—स्वस्थस्य स्वास्थ्य संरक्षणम्

२—आतुरस्य व्याधि परिमोक्षः।

व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की स्वास्थ्यरक्षा का महत्त्व व्याधि परिमोक्ष से कहीं अधिक है। सरकार भी स्वास्थ्य रक्षा पर चिकित्सा की अपेक्षा कई गुना व्यय करती है। सरकारी बजट का $\frac{3}{4}$ भाग स्वास्थ्य रक्षा में तथा $\frac{1}{4}$ भाग कायिक व शल्य चिकित्सा में व्यय होता है।

हमारे देश में स्वास्थ्य की समस्या गरीब देश होने के कारण बड़ी जटिल बन गई है। राष्ट्र तो रोगग्रस्त है ही पर निर्धनता के कारण रोग निराकरण में भी असमर्थ हो रहा है। इस कंट्रोल के जवाने में अथवा अन्न संकट के समय भर पेट भोजन न मिलने से स्वास्थ्य की समस्या और भी विषम हो जाती है। खाद्यसामग्री के दूषित विकृत तथा कृत्रिम रूप में उपलब्ध होने के कारण राष्ट्र का स्वास्थ्य और भी गिर रहा है।

बड़े-बड़े शहरों तथा कल कारखानों के कारण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अन्धविश्वास तथा निरक्षरता के कारण रोगों की और भी वृद्धि हो रही है। संक्रामक तथा अन्य रोग व्यापक रूप से साल के साल बराबर बढ़ रहे हैं। संकड़ों वर्षों में गुलामी के कारण आयुर्वेद की स्वास्थ्यपरंपरा का नाश हो चुका है और पाश्चात्य विज्ञान के अनुरूप उसका विकास हो रहा है। प्राचीन ब्रह्मचर्य, व्यायाम, दिनचर्या, रात्रिचर्या, आहार-विहार, स्वास्थ्य-नियम तथा सद्गुणों का लोप हो चुका है। केवल पाश्चात्य देशों की नकल की जा रही है। जैसे शीत देशवासी अंग्रेज जिस प्रकार के कोट

पैण्ट धारण करते थे, उष्ण देशवासी भी उसी को ग्रहण किये हैं। ब्रह्मचर्य की बात मूर्खता समझी जाती है। मौसम कोई भी हो चाय, आइसक्रीम, लेमनेड आदि का सर्वत्र राज्य है। सिगरेट पीना-सभ्यता का लक्षण बन गया है।

ऐसी विषम परिस्थिति तथा वातावरण में देश की स्वास्थ्य समस्या को हल करना है। हल करने के अनेकों उपाय हैं जिनका विशद वर्णन प्राच्य-पाश्चात्य शास्त्रों में भरा पड़ा है। इन में से बहुत उपाय व्ययसाध्य हैं। पर हमारा राष्ट्र तो गरीब है अतः, आज हम राष्ट्र के स्वास्थ्य रक्षा के एक ऐसे अनुपम उपाय का वर्णन करने जा रहे हैं जो कि भारतीय परम्परा के अनुकूल है, जिसमें एक पैसा भी व्यय नहीं होता और जिसका अवलम्बन करने से निश्चित रूप से स्थायी लाभ होता है।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य-रक्षा का उद्देश्य ऐसा है जिससे कि वातादि दोष साम्यावस्था में रहे, पाचकाग्नि सम रहे, शरीरगत सब धातु तथा मल की क्रियाएँ प्राकृतिक रूप से चलती रहे जिसके परिणामस्वरूप आत्मा मन तथा इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं।

पाश्चात्य मत से व्यक्ति में अविकृत वायु, जल, आहार तथा निवास की व्यवस्था से स्वास्थ्य संरक्षण का प्रयत्न करते हैं। साथ ही साथ वे एक कृत्रिम उपाय का भी अवलम्बन व्यापक रूप से करते हैं। उनके मत से प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में एक रोग प्रतिरोधकक्षमता (Immunity) होती है। इस क्षमता को आहार-विहार द्वारा अभ्युन्न खला जा सकता है।

कृत्रिम रूप से ऐसी क्षमता का सृजन जन्तुओं में करके; पुनः इसे जन्तुओं से पृथक करके मानव शरीर में प्रविष्ट करते हैं। इस आसुरी प्रथा से ही तमाम संक्रामक रोगों की रोक-थाम की जाती है। चेंचक, प्लेग, हैजा आदि सब रोगों में ऐसे ही रोगप्रतिबन्धक टीके लगाये जाते हैं। सामूहिक रूप से इन टीकों के लगाने की प्रथा

तो बहुते ही दूषित है। पाश्चात्य विज्ञान में स्वास्थ्य रक्षा का यह मुख्य अस्त्र हो गया है तथा यह चिकित्सक व व्यापारी दोनों का ही आय साधन बन गया है, अतः दोनों ही इस की गुण-गणिमा को बखानते हुए नहीं अघाते। इसमें राष्ट्र का अपार धन भी व्यय होता है और टीके का शुद्ध द्रव्य भी उपलब्ध नहीं होता।

तो, अब हमें यह सोचना है कि क्या रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने का और कोई उपाय नहीं हो सकता जो कि अल्प व्ययसाध्य हो, जिसका उपयोग सरल हो तथा जिसका प्रभाव भी निश्चित हो।

यदि हम इस दृष्टि से सोचने लगे तो अनेकों उपाय दृष्टि में आते हैं। पर यदि हम सारी दुनिया की सब चिकित्सा पद्धतियों को टटोलें तथा विश्व के सब राष्ट्रों की परम्परा को देखें तो यह स्पष्टमालूम होगा कि भारत ही एक ऐसा देश है जिसके झोले में एक अनुपम उपाय पड़ा है जिससे राष्ट्र की रोग प्रतिरोधक क्षमता को सफलता के साथ बढ़ाया जा सकता है और जिसमें कि एक पैसा भी व्यय नहीं होता।

पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार यह स्पष्ट विदित है कि वे कृत्रिम रूप से रक्त में ही रोगप्रतिरोधक क्षमता का सृजन करते हैं। रक्त ही रोगप्रतिरोधक क्षमता का आधार व मूलस्थान है। मानव शरीर के सम्पूर्ण रस-रक्तादि धातुओं में यदि देखा जावे तो रक्त ही सब से प्रधान धातु है जिस पर मानव जीवन निहित है। मानव शरीरगत यदि सम्पूर्ण क्रियाओं को देखें तो उससे भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि शरीर की सम्पूर्ण क्रियाओं में श्वसन क्रिया तथा रक्त संवहन ये दो क्रियायें सब से महत्त्वपूर्ण हैं जिन पर कि मानव जीवन निहित है। शुद्ध रक्त पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य ओज, बल तथा इन्द्रियप्रसाद निर्भर करते हैं।

इसलिये यदि ऐसा कोई विधान निकाला जा सके जिससे कि मानवशरीर गत श्वसन क्रिया तथा रक्त संवहन क्रिया का नियन्त्रण करके उसमें ऐसा गुणोत्कर्ष उत्पन्न किया जावे जिससे कि रक्त की क्षमता में गुणवृद्धि हो तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि निर्मल व गुणोत्कर्ष युक्त रक्त के आधार पर हम रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सकते हैं जिससे कि हम शरीर को किसी भी रोग से आक्रांत होने से बचा सकते हैं।

जो कुछ भी हम आहार-विहार करते हैं उसके परिपाक

व शोषण के परिणामस्वरूप 'रस धातु' की उत्पत्ति होती है। यह रसधातु ही केशिकाओं के माध्यम से अशुद्ध रक्त में प्रविष्ट हो जाती है और इस अशुद्ध रक्त का प्रसादन फुफ्फुस कोषों में श्वसन क्रिया द्वारा होता है।

साधारणतया रक्त की शुद्धि शरीर में ४-५ स्थलों पर होती है।

१. फुफ्फुस कोषों में
२. प्रतिहारिणी संवहन में
३. वृक्क
४. केशिकाओं द्वारा
५. त्वचा द्वारा—खेदादि के रूप में

रक्त की प्रधान शुद्धि फुफ्फुस कोषों में श्वसन क्रिया द्वारा होती है। फुफ्फुस कोष में ही अशुद्ध रक्त का श्वसन क्रिया द्वारा प्राप्त शुद्ध वायु का संपर्क होता है। इस प्रक्रिया में अशुद्ध रक्त वायु के आक्सीजन को ग्रहण करता है और रक्त में ऊष्मा तथा लालिमा व्याप्त हो जाती है। इसके प्रतिकूल रक्त की अशुद्धियाँ कार्बन डाइआक्साइड के रूप में निश्वासित वायु के साथ तथा श्लेष्मादि अन्य मल पृथक् हो जाते हैं और रक्त का प्रसादन होकर उसमें गुणोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है। रक्त कृष्ण-नील के स्थान पर लाल वर्ण का प्रभा तथा ऊष्मायुक्त हो जाता है।

स्वाभाविक रूप से यह प्रक्रिया १ मिनट में १८ बार होती है। और जितनी बार भी हम अन्दर श्वास लेते हैं प्रत्येक श्वास में रक्त का प्रसादन होता रहता है।

इसी प्रक्रिया को व्यायाम, श्रम या लम्बे दीर्घ श्वसन के द्वारा बढ़ाया जा सकता है जिससे रक्त की अशुद्धि विशद रूप से पृथक् होकर शोणित प्रभावर्णोपेत हो जाता है और उसकी कार्य-क्षमता बढ़ जाती है। उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा उत्तरोत्तर अन्य धातु-निर्माण कार्य सुगम हो जाता है। इसी प्रकार आगे चलकर वृक्क में पुनः रक्त की शुद्धि होती है और रक्त के दूषण मूत्र के रूप में रक्त से पृथक् हो जाते हैं। प्रतिहारिणी शिरा तथा केशिकागत क्रियाओं से भी रक्त की अशुद्धि का पृथक्करण तथा पोषक गुणों का ग्रहण व शोषण होता है।

हम प्रति मिनट १८ बार श्वास लेते हैं तो यह सिद्ध है कि रक्तसंवहन में श्वासजन्य १८ बार आघात लगता है जिसका प्रभाव रक्त के संपूर्ण संवहन पर पड़ता है और रक्तकी शुद्धि फुफ्फुस के अतिरिक्त वृक्क, प्रतिहारिणी

शिरा, केशिका तथा त्वचा में भी उसी तेजी या चाल से होती है।

श्वसन क्रिया में जिस अनुरूप से अन्तर होता है रक्त शुद्धि में उसी अनुरूप से परिवर्तन भी होता है। अतः यदि श्वसन क्रिया को नियंत्रित किया जावे तो रक्त संवहन की क्रिया अपने आप नियंत्रित हो जाती है और रक्त में गुणाधान या गुणोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है जिससे कि मानव शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और मनुष्य सरलता से रोगाक्रांत नहीं हो सकता। विशुद्ध रक्त से ही मनुष्य में बल, वर्ण, सुख (स्वास्थ्य) तथा आयु की पुष्टि होती है। इसका आयुर्वेद में बड़ा रोचक वर्णन है।

देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरैवधार्यते।

तस्माद् यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥

विधिना श्रोणितं जातं शुद्धं भवति देहिनाम्।

देशकालौकसात्म्यानां विधिर्धर्मः सम्प्रकाशितम्।

तस्माद्विशुद्धं च रुधिरं बलवर्णं सुखायुषा।

युनक्ति प्राणिनं प्राणः शोणितं ह्यनुवर्तते ॥

आयु और आरोग्य वर्धन के लिए विशुद्ध रक्त का निर्माण परम आवश्यक है। विशुद्ध रक्त में ही यह क्षमता अथवा रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) होती है जिससे रोगों से या रोगोत्पादक दोषों या जन्तुओं से मानव शरीर की रक्षा होती है। जब कोई रोगकारी जीवाणु मानव शरीर में प्रविष्ट होता है तो उसका रक्त से युद्ध होता है। जिस स्थल पर कोई भी रोगोत्पादक जीवाणु या मल संचित होता है उसको नष्ट करने के लिए रक्तकणों की अपार सेना उस स्थल पर एकत्रित हो जाती है और वहां एक प्रकार से शोथ-सा प्रतीत होने लगता है। उस स्थान का रक्त संचार बढ़ जाता है। परिणामतः स्थानीय ताप भी बढ़ जाता है। रक्त संचय होने से शोथ प्रतीत होता है और यदि दोष अधिक हो तो वेदना भी होने लगती है।

रक्त की यह सेना आगन्तुक दोषों को नष्ट करके या क्वचित् बिना नष्ट किये हुए भी शरीर के बाहर निकाल देते हैं और मल-मूत्र, श्लेष्म आदि के साथ उनका निष्कासन हो जाता है।

क्वचित् रक्त अपनी ऊष्मा तारल्य आदि गुणों से दोषों का पाचन करके उनका नाश भी कर देते हैं। पाश्चात्य

मत से भी रक्त के श्वेत कणों में जीवाणु भक्षण की क्षमता होती है और जब कोई जीवाणु शरीर में प्रविष्ट करता है तो ये जीवाणु उनका भक्षण कर लेते हैं। रक्त के श्वेत कणों की इस क्षमता को 'जीवाणु भक्षण क्षमता' (Phagocytosis) कहते हैं। मलेरिया, पूय के जीवाणु, चेचक, निमोनिया, खुजली आदि सभी रोगों के जीवाणुओं का भक्षण करने में रक्त के श्वेतकण समर्थ होते हैं। जब कि जीवाणु की संख्या बहुत अधिक हो अथवा जीवाणु बहुत ही उप्र हो और रक्त के कण निर्वल हो तभी रोग की सृष्टि होती है अन्यथा रक्तकण सभी रोगों का मुकाबला स्वयं कर लिया करते हैं।

रक्त की इस क्षमता का स्थिरीकरण व संचालन अथवा नियमन रक्त पर श्वास प्रक्रिया द्वारा होता है। यदि श्वास प्रक्रिया का नियमन किया जावे तो रक्त में भी गुणोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है। श्वास-प्रश्वास क्रिया के नियमन का अद्भुत उपाय 'प्राणायाम' है। प्राणायाम के द्वारा रक्त में अपार रोगप्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। प्राचीन काल में इस प्रक्रिया द्वारा मनुष्य सुख, स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त किया करते थे और रोग उत्पन्न होने का अवसर ही नहीं उपस्थित होता था।

प्राणायाम एक बहुत ही सरल प्रक्रिया है। बहुत-से लोग इसको बड़ा गूढ़ समझते हैं और इससे घबड़ाते हैं। पर तथ्य इसके विपरीत है।

प्रथम अन्तःश्वसन के द्वारा फेफड़ों में सरलता से यथासाध्य अधिक से अधिक वायु भरनी चाहिए। अब इस अन्तःप्रविष्ट वायु को किंचित् देर जितनी देर तक सरलता से रोका जा सके रोकना चाहिए। वायु को इस दशा में इतना न रोकें कि जिससे क्लेश या उद्वेग हो। इसके बाद सब वायु को शनैः-शनैः निकाल दें और पुनः इसी भांति क्रिया करें। हम साधारणतया प्रति मिनट १४ से १८ बार श्वास लेते हैं और उतनी ही बार श्वास बाहर भी निकालते हैं। ऊपर की भांति नियंत्रण करने में समय अधिक लग जाने से यह प्राणायाम क्रिया १ मिनट में जितनी सरलता से सध सके क्रमशः प्रति मिनट ८ बार, ४ बार, और २ बार करें।

इस प्रकार से प्राणायाम क्रिया में हम फेफड़े में अधिक से अधिक वायु भरने व निकालने का प्रयत्न करते हैं।

जिसका परिणाम यह होता है कि रक्त में अधिक से अधिक प्राणवायु का प्रवेश होता है जिससे कि रक्त का वर्ण प्रभा-युक्त हो जाता है और उस में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। साथ ही रक्त के मल दोष जैसे कार्बन डाइआक्साइड आदि अधिक से अधिक मात्रा में श्वास द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

रक्त शुद्ध होने से उत्तरोत्तर अन्य धातुएँ भी निर्मल तथा स्वस्थ बनती हैं तथा रक्त के रोग—फोड़ा, फुंसी, खुजली, मलेरिया आदि नहीं होते।

जब रक्त का नियंत्रण प्राणायाम द्वारा किया जाता है तो वक्ष या फेफड़े के रोग भी उत्पन्न नहीं होते। प्राणायाम क्रिया द्वारा श्वास, तपेदिक, प्लूरिसी, निमोनियां आदि रोगों का निग्रह किया जा सकता है जिससे कि ये रोग उत्पन्न नहीं हो सकें। जब सामूहिक रूप से प्राणायाम का प्रयोग किया जावे तो तपेदिक, प्लूरिसी, निमोनियां, श्वास तथा हृदय के रोग का भी निग्रह सामूहिक रूप से हो जाता है।

आजकल तपेदिक-क्षय-निग्रह के अनेकों यत्न किये जा रहे हैं। नवीन उपचारों में वी. सी. जी. का नाम बड़ा प्रसिद्ध है परन्तु, प्राणायाम से वी. सी. जी. की अपेक्षा अधिक और स्थायी लाभ होता है। वी. सी. जी. से केवल तपेदिक का निग्रह होता है, परन्तु प्राणायाम से तपेदिक के अतिरिक्त अनेकों रोगों का निग्रह होता है। इसी कारण इसको वी. सी. जी. का चाचा कहा जाता है।

प्राणायाम से न केवल इन रोगों को ही लाभ पहुँचता है वरन् मन एवं बुद्धि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम से मन की चंचलता दूर होती है। मन सात्विक गुणों से युक्त होता है तथा बुद्धि भी प्रखर होती है।

हर प्रकारके व्यायाम में बुभुक्षा बढ़ती है किन्तु प्राणायाम से बुभुक्षा भी नहीं बढ़ती और मन, एवं बुद्धि के विकास आदि रोगों का शमन होता है। इसीसे इसे वी. सी. जी. का चाचा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होती।

यदि प्राणायाम का सामूहिक प्रचार किया जावे तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि समाज से तपेदिक जैसे रोगों को समूल नष्ट किया जा सकता है। साथ ही इससे मनुष्य के मन, बुद्धि व चरित्र का भी विकास होता है और रोग उत्पन्न होने की तो संभावना ही नहीं रहती। प्राचीन काल में जब इस देश में प्राणायाम का प्रचार था

तो लोग दीर्घायु हुआ करते थे तथा रोगों का कहीं नामों-निशान भी नहीं था।

प्राणायाम द्वारा मन एवं बुद्धि का निग्रह होने से मनुष्य प्रज्ञापराध से भी बचता रहता है जिससे कि रोग उत्पन्न नहीं होते। ज्ञान, एवं कर्मेन्द्रियों के हीन, अति या मिथ्या योगों से ही रोगों की उत्पत्ति होती है। प्रज्ञापराध से रोगों की उत्पत्ति होती है परन्तु प्राणायाम से इन प्रज्ञापराध व इन्द्रियों के संयम होने के कारण इनके मिथ्या उपयोग से भी मनुष्य बचता रहता है। यही कारण है कि प्राणायाम से न केवल रोग दूर होता है वरन् स्वास्थ्य व दीर्घायु भी प्राप्त होता है। प्राणायाम के प्रभाव से ही ऋषि लोग अति दीर्घायु प्राप्त करते थे।

प्राणायाम भारतीय सभ्यता, दिनचर्या व सद्गुत्त का एक अंग है। जबतक समाज में इसका प्रचार रहा रोग व दुःख के दर्शन न हुये। पर इस परम्परा के नाश हो जाने के कारण देश रोग व दुराचार का प्रतिष्ठान बन गया है।

सबसे बड़ी बात इस प्रक्रिया में यह है कि इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं होता। गरीब-अमीर सभी इसका उपयोग करके स्वास्थ्य, सुख, आरोग्य व दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं। आज स्वास्थ्य की सभी योजनाएँ द्रव्याभाव के कारण फेल हो जाती हैं पर प्राणायाम योजना इतनी सुंदर व प्रभावकर है कि इसके लाभ में किसी को संदेह नहीं हो सकता और इसके उपयोग में एक पैसा भी व्यय नहीं होता जिससे इसका उपयोग सबमें समान भाव से किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रयोग गरीब अमीर सबके लिए हितकारी है। राष्ट्र व सरकार को चाहिए कि इस योजना से लाभ उठाकर देश को सुखी बनावे और दूसरी अन्य योजनाओं में जो रुपया व्यय हो रहा है उस धन को बचावे।

इसलिए मैं सरकार का व पढ़ी-लिखी जनता का ध्यान इस तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ जिससे कि इस प्रक्रिया का खूब प्रचार हो। स्कूलों व कालेजों में इस प्रथा को अनिवार्य कर देने से देश का महान् उपकार होगा।

मधुमेह-चिकित्सा

आयुर्वेदाचार्य डॉ० शंकरलाल भेड़ा, एम० बी-बी-एस०

चिकित्सासूत्र

सामान्यतः प्रमेह की चिकित्सा क्रिया की पद्धति से दो विभागों में विभक्त की गई है, क्योंकि प्रमेह के रोगी दो तरह के होते हैं। (१) रोगी स्थूल और बलवान् होते हैं। (२) कई रोगी कृश और दुर्बल होते हैं। इनमें जो रोगी कृश (अल्पबल-मांस) हों उसकी प्रथम से ही वृंहण (बल-मांस बढ़ाने वाली) चिकित्सा करनी चाहिये, परन्तु जिस रोगी में दोष-बल सम्पन्न तथा स्निग्धता अधिक हो, उसकी प्रारम्भ से ही संशोधन चिकित्सा करनी चाहिये। जैसा चरक आदेश करते हैं—

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः, कृशस्तथैकः परिदुर्बलश्च।

संवृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोष वलाधिकस्य।

मुश्रुत ने भी स्थूल रूप में हेतु भेद से प्रमेह के दो विभाग करके १. सहज और २. अपथ्य निमित्तज भेदों से वर्णन किया है। वे सहज का कृश में समावेश करते हुए इस तरह स्पष्ट करते हैं कि—जो माता-पिता के वीर्य दोष से होता है वह कृश, रूक्ष, अल्पभोजी आदि होता है। दूसरा स्थूल, अधिक भोजी, स्निग्ध, शय्यासन स्वप्नशील युक्त होता है। अर्थात् सहज प्रमेही का शरीर कृश होता है तथा अपथ्य से उत्पन्न होने वाले का शरीर स्थूल होता है—जैसा मुश्रुत लिखते हैं—द्वौ प्रमेहौ भवतः सहजोऽपथ्य निमित्तश्च। तत्र सहजो मातृ-पितृ वीर्य दोषकृतः, अहिता-चारजोऽपथ्य निमित्तः। तयोः पूर्वणोपद्रुतः कृशो रूक्षो-ज्याशी पिपासुर्भृशं परिसरणशीलश्च भवति। उत्तरेण स्थूलो बद्धाशी स्निग्धः शय्यासन स्वप्नशीलः प्रायेणेति। चिकित्सा सूत्र चरक के सदृश ही है—जैसा कि—तत्र कृशमन्नपान प्रतिसंस्कृताभिः क्रियाभिश्चिकित्सेत्। स्थूल-भयतर्पण युक्ताभिः। यहाँ पर अपतर्पण शब्द से संशोधन और लङ्घन आदि का ग्रहण किया गया है। “अपत-र्पयतीति अपतर्पणं लंघनं, अपतर्पणानि व्यायाम शोधनानि-तिक्त कटुकानिच” इति डह्लणः।

मधुमेह की चिकित्सा में इन चिकित्सा सूत्रों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। आयुर्वेदाचार्यों ने इस रोग का निदान दो तरह से वर्णन किया है। जिस प्रमेह के रोगी के मूत्र मधुर हो, उनमें पहला इक्षुमेह (किसी-किसी के मत में शीतमेह भी) जो कफज प्रमेह है। वातज प्रमेहों में पहला मधुमेह (यह चरकोक्त संज्ञा है)। क्षौद्रमेह (यह मुश्रुतोक्त नाम है) इक्षुमेह कफजन्य होने से सन्तर्पण जनित है। इसकी चिकित्सा संशोधन पूर्वक होनी चाहिये। मधुमेह अथवा में क्षौद्रमेह वातज होने तथा अपतर्पण जन्य कारण से प्रारम्भ से ही वृंहण चिकित्सा उपादेय है। प्रमेहों की चिकित्सा में विशेषतः मधुमेही के लिये निदान पर अधिक विचार रखना चाहिये, क्योंकि निदान का परित्याग भी चिकित्सा का एक मुख्य अङ्ग है। “सामान्यतः क्रिया योगो निदानं परिवर्जनम्” यह सिद्धान्त है। क्योंकि; निदान के अच्छे ज्ञान से ही निदान विरोधी-औषध, आहार-विहार देश दूष्य कालादि का निर्णय होने पर ही चिकित्सा में सफलता मिलती है। इसलिये; इक्षुमेह में विशेषतः कफ दोष है, यह स्निग्ध है एवं इस प्रमेह में दूष्य भी क्लेदादि स्निग्ध धातु ही हैं, इनमें ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये जो मेह निस्सारक हो। वातानुबन्ध में सन्तर्पण का ध्यान रख करके चिकित्सा करें।

निदान के विषय में चरक ने इतना स्पष्ट किया है कि जिन हेतुओं से जो प्रमेह उत्पन्न होते हैं, उन-उन प्रमेहों में उन-उन हेतुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। जिस तरह रोग विशेष के हेतु का सेवन करना उस रोग से बचाने में सहायक होता है, उसी तरह उस रोग के उत्पन्न हो जाने पर उस रोग की निवृत्ति भी करता है। भाव यह है कि स्वस्थ पुरुषों में बीमारियाँ पैदा न होने के लिये हेतुओं (निदान) के परित्याग का सामान्य विधान है। वही उत्पन्न रोगों की चिकित्सा भी है अर्थात् हेतु का त्याग बड़े हुए दोषों को अधिक बढ़ने नहीं देता है।

य हेतुभिर्धे प्रभवन्ति मेहा स्तेषु प्रमेहेषु न ते निषेव्याः ।
हेतौरसेवा विहिता यथैव जातस्य रोगस्य भवेच्चिकित्सा ॥
(चरक)

चरक विमान में—

व्याधीनां निदान विपरीतं भवति कार्यम् ।

यथा—अपतर्पण निमित्तानां व्याधीनां नान्तरेण पूरण-
मस्ति शान्तिः तथा पूरण निमित्तानां नान्तरेणापतर्पण-
मिति । इतना स्पष्ट प्रतिपादन किया है ।

चिकित्सा

सुश्रुत ने इक्षुमेह में अरणो कषाय तथा क्षौद्रमेह
(मधुमेह) में कदर (खदिर सदृश वृक्ष) तथा सुपारी को
त्वचा के कषाय का उपयोग बतलाया है ।

इक्षुमेहिनं वैजयन्ती कषायम् । क्षौद्र मेहिनं कदर
क्रमुक कषायं पाचयेत् । इति (सु. चि. अ. १२)

मधुमेह में सम्प्रयुज्यमान औषध

वसन्त कुसुमाकर—इस योग का व्यवहार विशेष होता
है । गुडमार, लामज्जक, शिलाजत्वादि वटी (सिद्धयोग
संग्रह) सुश्रुत में—नवायसलोह एवं शिलाजतु प्रयोग बतलाये
हैं । चरकोक्त—लोध्रासव तथा क्वाथ लाभप्रद प्रतीत
होते हैं । मैंने कई बार—कपित्थ पुष्प चूर्ण, आमलक
स्वरस और त्रिवङ्ग भस्म का प्रयोग किया है । चिर काल तक
सेवन करने से लाभप्रद है । इस रोग में कटु-तिक्त द्रव्य
(सुदर्शन चूर्ण आदि) से शर्करा का भाग अत्यधिक कम होता
है । सप्तरंगी का प्रयोग महाराष्ट्र में करते हैं । मधुमेह
में अत्यन्त आवश्यकता के बिना अपतर्पण चिकित्सा नहीं
करनी चाहिये, क्योंकि अपतर्पण से यह रोग पैदा होता है ।

देहाग्नि बल वर्णोजः शुक्र मांस विवर्धनः ।

ज्वरः कासानुबन्धश्च पार्श्वशूलमरोचकः ॥१॥

श्रोत्र दौर्बल्यमुन्मादः प्रलापो हृदयं व्यथा ।

विष्मूत्र संग्रहः शूलं जंघोरं त्रिक संश्रयम् ॥२॥

पर्वीस्थि सन्धिभेदश्च ये चान्ये वातजा गदाः ।

ऊर्ध्ववातादयः सर्वे जायन्ते तेष्वपतर्पणात् ॥३॥

चरक ने—

शस्तमुल्लेखनं तत्र विरेको रक्त मोक्षणम् ।

व्यायामश्चोपवासश्च धूमाश्च स्वेदनानि च ॥१॥

सक्षौद्रश्चामयाप्राशः प्रायो रुक्षान्न सेवन्म् ।

चूर्णं प्रदेहा ये चोक्ताः कण्डु कोठ विनाशनाः ॥२॥

त्रिफलारग्वर्धं पाठां सप्तपर्णं सवत्सकम् ।

मुस्तं निम्बं स मदनं जलेतो द्रवयितं पिबेत् ॥३॥

तेन मेहादयो यान्ति नाशमय्यस्पतो ध्रुवम् ।

मात्राकाल प्रयुक्तेन सन्तर्पण समुत्थिताः ॥४॥

अन्यच्च—

कुष्ठं गोभेदको हिंगु क्रोञ्चास्थिद्रव्यं वचा ।

वृषकैले श्वदंष्ट्रा च खराह्व चाश्वमेदकः ॥१॥

तक्रैण दधिमण्डेन वदराम्ल रसेन वा ।

मूत्र कृच्छ्रं प्रमेहं च पीतमेतद् व्यपोहति ॥२॥

अन्यच्च—

तक्रामया प्रयोगैश्च त्रिफलायास्तथैव च ।

अरिष्टानां प्रयोगैश्च यान्ति मेहादयः शमम् ।

वसन्त कुसुमाकर का योग “रसामृत” का मुझे अधिक

उत्तम प्रतीत हुआ है ।

मधुमेह में—इक्ष्वाकु कल्प (चरकोक्त)

मधुमेह में—कल्याण मोदक (चरक कल्प)

मधुमेह में—दन्तीद्रवन्तीकल्प (चरकोक्त)

इन विधियों का प्रयोग कर चिकित्सक अवश्य
यशोभागी बन सकता है ।

अन्न

यवः प्रधानस्तु भवेत् प्रमेही । (चरक)

मधुमेही के लिये यव प्रधान खाद्य है, तथा इसके सेवन
से मधुमेह में बहुत फायदा होता है, इसमें कुछ भी सन्देह
नहीं करना चाहिये । यव के गुणों में “प्रवृद्ध-मूत्रो” लिखा
है । अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाला तथा “मेदो-
मरुतुद्धरण” भी बतलाया है, अर्थात् मेद से आवृत वायु
और तृष्णा कम करने वाला है । इसलिये भी मधुमेह
में उपयुक्त है । आयुर्वेद में यव के सत्तू, अपूप, मन्थ,
वाट्य, कुल्माष, धान, क्षार आदि अनेक चिकित्सा में
लाभदायक पदार्थ बनाये जाते हैं ।

जैसा चरक में लिखा है—

हन्याद् व्याधीन् यवापूपो यावको वाट्य एव च ।

उदावर्तं प्रतिश्याय कास मेहं गलग्रहान् ।

निष्कर्ष

मधुमेह व्यान, अपान-प्रकुपित जन्य रोग है । अतः
व्यान, अपान-चिकित्सा-विधि पर अवश्य ध्यान रखना
चाहिये । (पाश्चात्य देशों में चिकित्सोपयोगी जौ के कई
प्रकार के (पल्लवार्थी-डायटेस्ट-माल्ट आदि) पदार्थ बनाये
जाते हैं ।

अन्नों में यथा प्राप्त कुधान्य विशेष अधिक लाभप्रद होते हैं। क्योंकि; ये रुक्ष, कटु विपाकी, कफनाशक और मूत्र की राशि कम करने वाले विशेषतः कषाय रस वाले होते हैं। सुश्रुत में कुधान्यों का वर्णन इस प्रकार मिलता है—
 "कोरदूषक - श्यामाक-नीवार-शान्तनुवरकोदालक - प्रियङ्गु, मधूलिका-नान्दीमुखी कुरुविन्द - गवधुक-वस्क - तोदपर्णी मुकुन्दक वेणुयव प्रभृतयः कुधान्य विशेषाः।" वाजरा, ज्वार, यव, मकई—इस रोग का प्रधान खाद्य है। (गहूँ थोड़े खाने चाहिये।

चरक ने ऐसी पथ्यविधि निर्देश की है

मन्याः कषायाः यवचूर्ण लेहाः प्रमेहशान्त्यै लघवश्च भक्ष्याः ।
 ये विष्किरा ये प्रद्रुता विहंगास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनौजैः ॥
 यवौदनं रुक्षमथार्पि वाट्य मध्यात्सक्तूनपि वाट्यपूपान् ।
 मुद्गादि यूषैरथतिक्त शकैः पुराण शाल्योदन माददीत ॥
 दन्तीगुदीतैल युतं प्रमेही तथाऽतसी सर्षप तैल युक्तम् ।
 स षष्ठिकं स्यात्तृण धान्यमन्नं यव प्रधानस्तु भवेत् प्रमेही ॥
 निशिस्थितानां त्रिफलाकषाये स्युस्तर्पणाः क्षौद्रयुतायवाभाम् ।
 तान् सीधुयुक्तान् प्रपिबेत्प्रमेही प्रायोगिका मेह वधार्थमेव ॥
 ये श्लेष्ममेहे विहिता कषायास्तैर्भावितानांच पृथक् यवानाम् ।
 सक्तूनपूपान् संगुडान्सधान्यान् भक्ष्यास्तथाऽन्यान् विविधाश्च
 खादेन् ॥ १५

खराश्व गोहंस पृषदभूतानां तथा यवानां विविधाश्च भक्ष्याः ।
 देयास्तथा वेणुयवायवानां कल्पेन गोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ १६
 भूष्टान् यवान् भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च सक्तून् भवन्ति
 मेहाः । इत्यादि

गोधूम, षष्ठिक तथा शालीचावल एक वर्ष का पुराना खाना चाहिये ।

दालों में—मूँग (हरित), मसूर, चणक, अरहर आदि पथ्य हैं ।

शाकों में—कूष्माण्ड, परवल, मूली, तण्डुलीयक, मेथी, वास्तूक, चिल्ली, पालक, सुश्रुतोक्त मण्डूक पर्ण्यादिगण प्रोक्त यथा प्राप्त शाक पथ्य हैं ।

यद्यपि शाकों में सामान्य दृष्टि से प्रोटीन, मेद आदि शरीरपोषक गुण अत्यन्त ही कम होने पर भी आधुनिक विद्वान् इनमें कुछ विशेषताएँ मानते हैं, जैसे शाकों में १. सेल्यूलोज Cellulose भी होता है, इससे मल साफ आता है तथा मलावरोध नहीं होता । २. शाकों में खनिजक्षार होते हैं, शरीर रक्षा के लिये रक्त में क्षारीय भाग होता

अत्यन्त आवश्यक है । यह क्षार अल्कलाइन Alkalain के रूप में होता है । इसलिये शाकों का सेवन लाभदायक है । ३. शाकों में जीवद्रव्य (विटामिन्स Vitamins) भी होते हैं जो स्कर्वी (Scurvy) नहीं होने देते । ४. शाकों के सम्बन्ध से भोजन में रुचि, स्वादुता एवं सुगन्धि पैदा होती है । शाकों में कार्बोहाइड्रेट कम होता है । इसलिये; मधुमेहियों के लिये भी सामान्यतः लाभदायक ही है । शाक हमेशा ताजा खाना चाहिये । इस विषय में आचार्य ऐसा उपदेश देते हैं—

कर्कशं परिजीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम् ।

वर्जयेत् सर्वं शाकं तद् यदकाल विरोधि च ॥

फल—दाड़िम-मातुलुंग-जम्बीर-कपित्थ-नारंग-आमलक विल्व-क्षीरिवृक्ष आदि (न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष और बेतस तथा अश्मन्तक) फल चरक के मतानुसार मूत्र संग्राहक होते हैं । अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाले होते हैं ।

जम्बाम्रप्लक्ष वटकपीतनोदुम्बराश्वत्थ भल्लातकाश्मन्तक सोमवल्का इति दशेमानि मूत्र संग्रहणीयानि भवन्ति ।

(च. सू. ३४)

क्षीर वृक्ष के फल अधिक संख्या में कषाय-रस प्रधान हैं । इनके फलों में रसायनिक दृष्टि से चानिक, ट्यानिक एसिड, ग्यालिका, ग्यालिक एसिड इत्यादि कषाय रस के अम्ल होते हैं । कषाय रस प्रधान होने के कारण इनके साधारण गुण धर्म कषाय रस के साथ होते हैं । इसीलिये संग्राहक हैं ।

जामुन का प्रयोग

जामुन का प्रयोग चरकादेशानुसार मूत्र संग्राहक है (अर्थात् मूत्र की राशि कम करने वाला है ।) इस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से आयुर्वेद मतानुसार जामुन का प्रयोग मधुमेह में एवं बहुमूत्र में हो रहा है । इन रोगों में जामुन के बीजों का प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि; जामुन के बीजों में जम्बुलाईन नामक एक ग्लुकोसाईड (Glucoside) पदार्थ होता है । जिसके प्रभाव द्वारा मधुमेह में शर्करा एवं मूत्र की राशि कम हो जाती है । सिद्धियों के प्रमेहाधिकार में "न्यग्रोधोदुम्बरा श्वत्थ श्योनाका-रवधासनम् । आम्रं कपित्थं जम्बुञ्च प्रियालं कुकुमं धवम् ॥ इस श्लोक की व्याख्या में श्री कण्ठदत्त ने लिखा है—“आम्रकपित्थ जम्बूनां फलास्थि । इति ।” पाश्चात्य

वेद्यक में भी मधुमेह की चिकित्सा में जामुन का प्रयोग किया जाता है।

मधुमेह में सूखे मेवे

बादाम, अखरोट, काजू (अभिषुक), चिलगोजा (निचुल), पिस्ता (निकोचक), आदि पथ्य हैं। इनमें शर्करा जातीय पदार्थ बहुत कम होते हैं, तथा पित्त, कफ, वात नाशक, स्निग्ध, उष्ण शरीर पुष्टिकर और बलकारक होने और पौष्टिकांशवाले हैं। इसलिये; मधुमेह रोगियों के लिये लाभदायक है। इनमें रासायनिक संगठन की दृष्टि से १५-२० प्रतिशत प्रोटीन, ५०-६० प्रतिशत चरबी, ६-१२ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ३-५ प्रतिशत सेल्युलोज, १ प्रतिशत खनिज क्षार, ४-५ प्रतिशत पानी होता है। अर्थात् प्रोटीन और चर्बी इनमें अधिक होने से इनकी पौष्टिक शक्ति बढ़ जाती है। मांस नहीं खाने वाले मधुमेहियों को सन्तर्पण चिकित्सार्थ इनका उपयोग करना चाहिये।

वातामाभिषुकाक्षोट मुकूलक निकोचकाः।

पित्तश्लेष्म हराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरुणिच।

वृंहणान्यतिलध्वानि वल्यानि मधुराणि च।

मधुप्रयोग

यद्यपि मधु शर्करायुक्त खाद्य पदार्थ है। शर्करा कई तरह की होती है। मधु में जो शर्करा मिलती है, वह अत्यन्त पचन सुलभ, उत्तेजक, पोषक, बलकारक, हृद्य एवं अविदाही है। इसलिये; मधुमेही रोगियों की श्रान्तावस्था, हृदय दौर्बल्य, हृदयावसाव आदि अवस्थाओं में मधु अत्यन्त ही लाभदायक है। चरक, सुश्रुत में मधु का मधुर रस मधुमेहियों के लिये विधेय है। “असाध्येष्वपि योगान् यापनार्थं व्याख्यास्यामः” इस प्रतीक में तथा मधु “पित्तश्लेष्म मेदोमेह हिक्का श्वासादि हरं ल्हादि-त्रिदोष शमनञ्च” इन वचनों से मधुमेह में उपयोगी बतलाया है।

मेरे ध्यान से मधुमेह की मेदो दोषज रोगों में सुश्रुत ने गणना की है। जैसा कि—

ग्रन्थिवृद्धि गलगण्डावृद्ध मेदोजौष्ठ प्रकोप मधुमेहादि स्थौल्याति स्वेद भ्रूतयो मेदो दोषजाः।

मधुमेह हर प्रधान गुण होने से मधुमेह में मेहहर के कारण यह अतीव लाभप्रद है।

चरक ने यहाँ तक स्पष्ट किया है—प्रमेही मधु सम्प्र-युक्तान् शौद्रयुता यवानाम्। आदि।

करंज, ढाक और नीम के फलों का मधुमेह में सुश्रुत ने विधान बतलाया है।

“करंजं किंशुकारिष्ट फलं जन्तु प्रमेहं नुत्।” इति। इसी तरह आरुस्कर तथा तौवरक फल भी उपादेय है।

आरुष्करं तौवरकं कषाय कटुपाकि च।

उष्णकृमिज्वरानाह मेदोदावर्तनाशनम्।

विल्वपत्रं स्वरस—मधुमेह में अत्यन्त ग्राह्य है।

विल्वपत्रन्तु वातनुत्।

तैल

तैल के गुणों में सुश्रुत ने “वद्धमूत्र—अनिल वलास क्षयकर, तिक्त - कषायानुरस-वृंहण-प्रीणन, सर वृष्य आदि गुण बतलाये हैं, इसलिये यह पथ्य है।

तिल

यह मधुमेह में सर्वथा पथ्य है, यह अल्पमूत्र (मूत्र की राशि कम करने वाला, वातनाशक, तिक्त, कषाय एवं संग्राही है। इसके लिये स्व० भट्टजी लिखते हैं—

यथा बहुल मूत्रत्वे तिलाः वैद्यैः किलादृताः।

तथा न किंचिदपरं भेषजं प्रतिभाति मे। इति।

सुश्रुत में—

निम्ब, अलसी, कुसुम, मूली, देवदाली, कुटज, कोषातकी, आक, कम्पिल्लक, रक्त एरण्ड, काला जीरा, करञ्ज, पीलु इङ्गुदी, सहजना, सूर्यावर्त, विडंग, मालकांगनी इनके बीजों के तैल का प्रमेह में कटु रस तथा विपाक में भी कटु, मृदु विरेचक तथा वात-कफ नाशक होने से पथ्य वर्ग में निर्देश किया है। भल्लातक तैल तथा तुवरक तैल का भी विधान लिखा है।

मधुमेह में विरेचन तथा वमन

मधुमेही को विरेचन और वमन देना चाहिये।

तथाद्यश्च मलेऽपनीते, मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम्।

मूत्र

प्रमेह में माहिष मूत्र का सुश्रुत में विधान है।

दुर्नामोदर शूलेषु कुष्ठमेहा विशुद्धिषु।

आनाह शोक गुल्मेषु पाण्डुरोगेषु माहिषम्।

मधुमेह में जल

मधुमेह में जल बहुत कम पीना चाहिये—इसके लिये हमें इतने बचन मिले हैं—

ब्रणेच मधुमेहेच पानीयं मन्दमाचरेत् । (भोज०
प्रत्यंश उपोष्ठात्)

मधुमेह में मन्दजल सेवन विधि एलोपैथिक पद्धति
वाले नहीं मानते हैं । विश्वजन इसपर विचार करें ।
मधुमेह में स्नुही प्रयोग

पाण्डुरोगोदरे गुल्में कुष्ठे दूषी विषादिते ।

श्वयथौ मधुमेहे च दोषो विभ्रान्त चेतसि ॥

रोगैरेवं विधेयंस्तं ज्ञात्वा स प्राणमातुरम् ।

प्रयोजयेन्महा वृक्षं सम्यक् सहावचारितम् । २

सद्यो हरति दोषाणां महान्तमपि संचयम् ।

मधुमेह में

आस्थापन का निषेध है । चरक कहते हैं—आस्था-
पन से रोग वृद्धि हो जाती है । आस्थापने पुनर्वृद्धिः ।
मधुमेह अनुवासन वस्ति नहीं करनी चाहिये ।

जैसा चरक आदेश करते हैं ।—

“य एवानास्थाप्यास्त एवाऽनुवास्याः स्युः विशेषतः
स्त्वभक्त भक्त नवज्वर पाण्डु रोग कामला प्रमेहाशः
प्रभृतयः” वहाँ यह हेतु निर्देश किया है “तत्र नवज्वर पाण्डु
रोग कामला प्रमेहिणां दोषानुत्क्रियोदरं जनयेत्” इति
मधुमेह में निरूह वस्ति

जैसा चरक लिखते हैं —

यष्टया कृष्णा फलिनी शताह्वारसां जनं श्वेत वचा
विडंगं । कलिङ्गः पाठाम्बुद सैन्धवैश्च कल्कैः स सर्पिर्मधु तैल
मिश्रः ॥ अयं निरूहः क्रिमि कुष्ठ मेद वघ्नोदराजीर्णं
कफातुरेभ्यः । रूक्षौषधैरत्यपतर्पितेभ्य एतेषु रोगेष्वपि
सत्सुदत्तः ॥ निहत्य वातं जलनं प्रदीप्य विजित्य रोगा-
श्चबलं करोति । विडङ्गादि तैल (च० सि० अ० ४)

यह तैल पान और अभ्यङ्ग-अनुवासन द्वारा इस रोग
में अत्यन्त लाभ प्रद है ।

प्रवृद्ध मेह की चिकित्सा -

बड़े हुए प्रमेहवाले रोगी व्यायाम, कुस्ती आदि खेल,
घोड़े, हाथी, रथ आदि की सवारी, पैदल मुसाफिरी करना
घूमना, फिरना अस्त्र (शस्त्र विहित धनुष), उपास्त्र (शास्त्र
नियम वर्जित धनुष) का उपयोग करें ।

प्रवृद्ध मेहास्तु व्यायाम नियुद्ध क्रीडा गज तुरग रथ
पवाति चर्या परिक्रमणान्यस्योपास्त्रवा सेवेरन् । (सुश्रुत)
उपद्रव

सामान्यतः सभी प्रमेह (मधुमेह) दुश्चिकित्स्य होते
हैं, क्योंकि आयुर्वेद में महर्षियों ने सभी प्रमेहों की दुश्चिकित्स्यो

में गणना की है, फिर यदि प्रमेह रोगी विशेषतः मधुमेही,
प्राण-बल क्षय, मांस क्षय, श्वास-तृष्णा और शरीर के सब-धातुओं
की क्षीणता, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार, हिक्का इन
उपद्रवों से युक्त तथा प्रतिदिन मूत्र का अधिक परिमाण में
त्याग करे और शराविकादि पीडिकाओं से पीड़ित हो, तो
असाध्य होता है ।

प्राण मांस क्षय श्वास तृष्णा शोषवमि ज्वरः ।

मूर्च्छातिसार हिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुताः ।

वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ।

हृद्ग्रहो लौल्य मनिद्रास्तम्भः कम्पः शूलं बद्ध पुरीषत्वं
चेति वातजानाम् “हृदय का जकड़ा-सा रहना, सर्व रसाभि
कांक्षा” निद्रानाश, शरीर अकड़ जाना, कांपना, भूल और
मलावरोध यह मधुमेह वातज के उपद्रव हैं ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमिति प्रसृतमेववा ।

पिडका पीड़ितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ।

वाग्भट्ट में मधुमेह के उपद्रवों में यह विशेषता
बतलाई है ।

वातिकानामुदावर्त कण्ठहृद्ग्रह लोलताः ।

शूल मुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ।

प्रमेह के अरिष्ट लक्षण

सुश्रुत में प्रमेही को जल पीना अशुभ लिखा है ।

जैसे—मेहातिसारिणां तोयपानम् । इति

चरक में ऐसा मिलता है—

स्तातानुलिप्त गात्रेपि यस्मिन् गृध्नन्ति मक्षिकाः ।

स प्रमेहेणैव संपर्शं प्राप्यतैर्नैव हन्यते ।

स्नेहं बहुविधंस्वप्ने चाण्डालैः सह यः पिवेत् ।

बध्यते स प्रमेहेण स्पृश्यन्तेऽन्याय मानवः ॥

निष्कर्ष

मधुमेह की सभी चिकित्सा-पद्धतियों पर गंभीरता
से निष्पक्ष विचार करने पर यह चिकित्सा क्रम स्थिर करना
चाहिये । इस रोग में शर्करा की अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्था
में इन्स्यूलीन (Insuline) के प्रयोगों से शर्करा को कम
करके सर्वांग में लाभ पहुँचाने की दृष्टि से आयुर्वेदीय
चिकित्सा ही उत्तम है । यह सस्ती से सस्ती, निरुपद्रवी,
और सर्वसाधारण सुलभ है ।

इस रोग में आलू (कन्द आदि सभी) शर्करा, चावल,
बिल्कुल छोड़ देने चाहिये । इस रोग की चिकित्सा में
ओजक्षय की चिकित्सा पर पूर्ण ध्यान देते हुए पाचन दूष्य,
देश, काल और प्रकृति के अनुसार चिकित्सा कर्म करने से
अवश्य सफलता मिल सकती है ।

वैद्यरत्न पण्डित शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति का अध्यक्षीय भाषण

विगत ता० २३ फरवरी १९५३ को हैदराबाद वैद्य सम्मेलन का दूसरा वार्षिक अधिवेशन वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति के सभापतित्व में मनाया गया। श्रीयुक्त शर्माजी की आयुर्वेद के प्रति की गयी सेवा तथा आयुर्वेद विरोधियों के प्रश्नों का निर्भीकतापूर्वक दिये जानेवाले उत्तरों से समस्त आयुर्वेद-प्रेमी परिचित हैं। प्रस्तुत अध्यक्षीय भाषण के प्रारम्भ में आपने तथाकथित कुछ डाक्टरों द्वारा समय-समय पर किये गये आक्षेपों का सयुक्तिक और ठोस उत्तर दिया है। भाषण के मध्य तथा अन्त में आयुर्वेदोन्नति की योजना-सम्बन्धी कई नवीन बातें कही हैं, सचित्र आयुर्वेद के वाचकों से अनुरोध है कि इस भाषण को अवश्य पढ़ें और इससे लाभ उठाएँ। —स० सम्पादक

मित्रवृन्द,

यह सम्मेलन करने के लिए जो समय और स्थान आपने छांटा है कुछ ही समय पहले आपके राज्य में केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् की पहली बैठक हो जाने के कारण इसका महत्त्व विशेष बढ़ गया है।

स्वास्थ्य परिषद् की मीटिंग से पहले जो तत्संबंधी विशाल आन्दोलन समाचार पत्रों में हुआ और देश के रुपये का भारी व्यय उसे बुलाने में किया गया उसे देखते हुए जनता को यह आशा हो गई थी कि देश की सबसे बड़ी स्वास्थ्य समिति की पहली बैठक कोई बहुत चमत्कारपूर्ण कृति नहीं तो कुछ ठोस कार्य करके अवश्य उठेगी।

उस परिषद् और इस सम्मेलन में (वह हैदराबाद में जनवरी के अन्तिम सप्ताह में हुई और यह ताण्डूर में फरवरी के अन्तिम सप्ताह में हो रहा है) काल और दिक् का अन्तर इतना कम है कि आपको ही परिषद् की वास्तविक कृतियों पर विचार करने और उनके वास्तविक मूल्य को जाँचने का प्रथम अवसर मिल रहा है। आपको यह श्रेय है कि यह अवसर आपको परिषद् की बैठक का चित्र पुराना होकर धुंधला पड़ जाने से पहले ही मिल गया है।

परिषद् की निष्फल बैठक

आप में से वह सभ्य जिन्होंने समाचार पत्रों में केन्द्रीय परिषद् की कार्यवाही पढ़ी है, परिषद् के संबंध में 'कृति' शब्द के प्रयोग को अनुचित मानेंगे। इसमें संदेह नहीं कि परिषद् ने जो तुच्छ-सा कार्यविवरण प्रेस को भेजा वह उस दुंदुभीनाद और समाचार गर्जना के सर्वथा विपरीत है जो परिषद् की बैठक से पहले सुनी गई। वह प्रधान सरकारी

प्रस्ताव भी जो भारतवर्ष के ग्रामों के वैद्यों से छीनकर, वैद्यों को पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में बांधकर अल्पकालीय पाठ्यक्रम से तैयार की हुई छोटे डाक्टरों की सेना से ओत-प्रोत करने के लिए लाया गया था पास न हो सका यद्यपि इसे हैदराबाद में सफलता से पास कराने के लिए दिल्ली में पर्याप्त योजना बनाई गई थी।

यह तो स्पष्ट है कि यदि विभिन्न राज्यों का भी वही मत होता जो कि केन्द्र का था तो वह प्रस्ताव धुएं में न उड़ जाता।

निसंवेद केन्द्र की इस प्रस्ताव को स्वीकार कराने की तीव्र इच्छा थी। यह भी निश्चित है कि कई राज्य इस प्रस्ताव के उतने ही तीव्र विरोधी थे। मीटिंग में क्या दृश्य रहा होगा? दो दलों के विरोधी दृष्टिकोण में क्या-क्या अभिप्राय निहित होंगे?

केन्द्रीय सरकार की नीति पुरानी स्थिर ब्रिटिश नीति की उत्तराधिकारी है अतएव वह आयुर्वेद के विषय पर कोई भी निर्णय करते समय आयुर्वेदिक चिकित्सकों को सर्वथा बाहर रखने तथा एलोपैथी से इतर अन्य विषयों पर विचार करते हुए भी एलोपैथी में ही विश्वास रखने की चाल पर पूर्ववत् चल रही है। सरकार के इस व्यवहार के कारण यवनिकाके पीछे हुई घटनाओंका सर्वथा शुद्ध ज्ञान होना बहुत कठिन है, तो भी ज्ञात तत्त्वों के मार्मिक परीक्षण द्वारा हमें उपर्युक्त प्रश्नों का अच्छा निर्भ्रान्त उत्तर मिल सकता है।

(क) अर्थपूर्ण नाम परिवर्तन

(स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन से केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्) प्रथम विचारणीय भाव स्वास्थ्य मंत्री परिषद् का तिरो-

भाव होकर केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् का आविर्भाव होना है। स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन में क्या दोष था कि इसको इसप्रकार एकदम समाप्त कर दिया गया और राष्ट्रपति से प्रार्थना की गई कि वे एक अन्य अभिन्न संस्था; भिन्न नाम रखकर खड़ी कर दें? शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक में कुमारी जुलियट ने पूछा है, "नाममात्र से क्या रखा है? जिसे हम गुलाब कहते हैं उसका दूसरा नाम होने पर भी उसकी सुगंध उतनी ही मिठी रहेगी।" परन्तु पश्चिमाहत राजकुमारी उतनी भोली नहीं जितनी की प्रेमाहत कुमारी जुलियट थी। उन्हें ज्ञात है कि केवल नाम भेद से ही परिस्थिति में कितना अन्तर डाला जा सकता है। जबतक इस समिति का नाम "हेल्थ मिनिस्ट्रीज कान्फ्रेंस अर्थात् स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन" था, तब तक यह संभव नहीं था कि डाक्टरों को सम्मेलन की बैठकों में मिनिस्ट्रों के बराबर स्थान मिल सके। यदि किसी बैठक में डाक्टर को बोलने की आज्ञा मिलती भी थी तो वह केवल उसे स्वास्थ्य मिनिस्टर के सलाहकार के रूप में मिलती थी। परन्तु अपने राज्य के स्वास्थ्यमंत्री के सलाहकार के रूप में अपनी योग्यता के अनुसार उपस्थित विषय की व्याख्या करने के अधिकार का प्रयोग इसी प्रकार एक वैद्य भी कर सकता था। केन्द्र के लिए यह परिस्थिति असंतोषजनक थी, क्योंकि उसकी नीति की नींव एकपक्षीय उपदेश की बिना परीक्षा के स्वीकृति ही सदा रही है। जिज्ञासु और न्यायप्रिय मंत्रियों को उपस्थित प्रस्तावों पर उभयपक्षीय आलोचना द्वारा पूर्ण प्रकाश डलवाने से रोकने का एक ही उपाय था, वह यह कि स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन का नाम इसप्रकार बदल दिया जाय कि इसमें कुछ विश्वस्त एलोपैथ लिए जा सकें। इससे पुरानी संस्था का विशिष्ट व्यक्तित्व भी ज्यों का त्यों बना रहा, कुछ छोटे हुए डाक्टरों को मिनिस्ट्रों के समान अधिकार भी मिल गया और आयुर्वेद सर्वथा बहिष्कृत भी हो गया। यह षड्यन्त्र पक्षपात और अन्याय से इतना ओतप्रोत है, कि किसी भी सभ्य शासक-वर्ग को इस कृति से लज्जित होना चाहिए।

(ख) द्वितीय अर्थपूर्ण परिवर्तन

(‘न्यूनतम’ से ‘सहायक’)

दूसरा अर्थपूर्ण भाव उन्हीं व्यक्तियों द्वारा एक छोटे ‘सहायक’ एलोपैथिक पाठ्यक्रम की मांग थी जो भारत में चिकित्सा व्यवसाय के लिए न्यूनतम पंचवर्षीय काल की

अवधि को थोड़ा भी घटाने का सदा कड़ा विरोध करते रहे। जबसे भोरसमिति रिपोर्ट जो कि क्रियायोग्यता के अभाव की पराकाष्ठा है; का प्रकाशन हुआ तबसे संपूर्ण घटनाओं की शृंखला जिसमें कि सरकार द्वारा चोपड़ा समिति की सिफारिशों को खटाई में डाल देना, अपवित्र शीघ्रता में पंडित समिति का निर्माण करना उस समिति की सिफारिशों का अस्पष्ट रहना तथा प्लैनिंग कमिशन की स्वास्थ्य परिषद् पर स्वास्थ्य मंत्रणालय के डाक्टरों का पंचवर्षीय आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में भी संपूर्ण पंचवर्षीय एम. बी. बी. एस के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अन्तर्भाव करने के लिए डटकर अड़े रहना, इत्यादि सभी भाव सम्बद्ध हैं, एक ही निर्णय की ओर संकेत करती थी कि और चाहे कुछ भी हो यह कभी नहीं हो सकेगा कि केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग के सलाहकार चिकित्सक के पाठ्यक्रम की न्यूनतम पंचवर्षीय अवधि में एक क्षण की कमी भी कभी स्वीकार कर लें। स्वयं उन्हीं द्वारा एक छोटे एलोपैथिक पाठ्यक्रम की मांग आना वास्तव में एक आशातीत परिवर्तन था। परन्तु इस परिवर्तन को शब्द जाल में ढँकने का पूर्ण प्रयत्न किया गया था। पहला दिखावा तो यह निश्चय करना ही था कि भारतवर्ष में चिकित्सा पाठ्यक्रम सभी राज्यों में एक समान हो। दूसरा भुलावा स्पष्ट रूप से छोटे पाठ्यक्रम की मांग को उपस्थित न करना था। केवल गांव में कार्य करनेवाले डाक्टरों के लिए एक ‘सहायक’ वर्ग तैयार करने की मांग की गई।

अति साधारण

परन्तु यह चालाकी अति साधारण थी। पहली चाल (स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन को केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् में बदलना और उसका फल) तो ऐसी थी जो लोगों की आंखों में धूल डाल गई परन्तु दूसरी चाल जिसका अभिप्राय गांवों के डाक्टर वर्ग (जो अभी किसी गांव में हैं ही नहीं!) के सहायकवर्ग का वेश देकर गांवों में छोटे डाक्टरों को भर देना और साथ ही यह जताना कि केन्द्र अपनी पंचवर्षीय अवधि पर दृढ़ है इतनी स्पष्ट थी कि वह तभी चल सकती थी जब अन्य सदस्यों में बुद्धि लेशमात्र भी न हो। परन्तु केन्द्रीय सरकार का प्रयत्न स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता था कि आयुर्वेद को पंचवर्ष की अवधि में बांधकर और डाक्टरों के लिए एक थोड़े समय का पाठ्यक्रम भी तैयार करके उन्हें गांवों में जल्दी-जल्दी भर दिया जाय जिससे आयुर्वेद की विशिष्ट मांग का खेत ही बन्द हो जाय। इस प्रश्न पर

विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई कि छोटे पाठ्यक्रम से तैयार हुए जूनीयर ऐलोपैथ की देखरेख में बेचारे गांव के रहनेवालों के स्वास्थ्य की क्या गति होगी। केन्द्रीय सरकार की तो यह स्थिर नीति है ही कि एक पक्षीय उपदेश को बिना विचारे या परीक्षा किए निरन्तर स्वीकार करती रहे। इस नीति के अनुसार इस मांग की योग्यता या अयोग्यता जाँचने का प्रयत्न केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के विचारणीय विषयों में नहीं लिया जा सकता था। स्वास्थ्य मंत्री सम्मेलन का नाम हट जाने से यह नीति पूर्ण-रूप से सुरक्षित भी हो गई है।

परन्तु केन्द्र से एक भारी भूल हो गई है। परिषद् के विधान में एक आवश्यक धारा का अभाव रह गया है। कि इस परिषद् में डाक्टरों को छोड़कर अन्य किसी सदस्य को डाक्टरों की बात सुनने और सुनकर स्वीकृति देने के अतिरिक्त किसी प्रश्न पर स्वतन्त्र रूप से या आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने का अधिकार नहीं होगा। जबतक इस आशय की एक स्पष्ट धारा नहीं होगी तबतक वह बुद्धिमान सभ्य जो देश के शुभचिन्तक हैं, और जो सरकारी डाक्टरों के व्यक्तिगत स्वार्थों अथवा गंभीर सांस्कृतिक न्यूनता जन्य पश्चिम के कपिसदृश बुद्धिहीन अनुकरणों से स्वतन्त्र हैं, ऐसे क्रांतिकारी, प्रभूत द्रव्य और शक्ति का नाश करनेवाले और देश के वास्तविक तथा निकट भावी हित में बाधा डालनेवाले निर्णयों को कभी स्वीकार नहीं कर सकेंगे। जैसे कि ऐलोपैथी को जूनीयर पाठ्यक्रम की सुविधा देना, यद्यपि यह प्रणाली, जैसा कि मैं आगे स्पष्ट करूँगा, ऐसी है कि इसका छोटे काल का पाठ्यक्रम कभी लाभदायक अथवा हानिरहित नहीं हो सकता, और आयुर्वेद को छोटे पाठ्यक्रम की सुविधा न देना जिसमें कि अल्प काल में ही उच्चकोटि की उपादेयता प्रदान करने का विशिष्ट गुण विद्यमान है।

प्रकट धूर्तता

जब एक चाल चल न सके तो वह बुद्धि के अपमान का स्वरूप धारण कर लेती है और जिस व्यक्ति से चली जाए उसे विरोधी बना लेती है। स्वास्थ्य मंत्रियों के बुद्धिमान वर्ग को यह पसन्द नहीं आई। यह स्पष्ट था कि यह राष्ट्र के लाभ के लिए राष्ट्रीय प्रस्ताव नहीं था। यह एकपक्ष विशेष के लाभ के लिए एकपक्षीय प्रस्ताव था। इसका अभिप्राय किसी संप्रदाय पर भार डालकर देश की सेवा

करना नहीं था अपितु देश पर भार डालकर एक संप्रदाय की सेवा करना था। इसका प्रयत्न एक ही बार में उस महान् प्राकृतिक राष्ट्रीय संपत्ति, स्वतन्त्र आयुर्वेदिक सहायता, को निष्क्रिय करना था जो अनादि काल से भारत के ग्राम-निवासियों का सहारा रही है। जिस ग्रामवेद्य की ग्रामीण भारत के हृदय पर छापा है उसकी सेवाओं के उपयोग और सामंजस्य की इस प्रस्ताव में कहीं बात ही नहीं थी। एक संदिग्ध उपयुक्तता की योजना पर भारी राष्ट्रीय व्यय के नवीन मार्ग ही इस प्रस्ताव द्वारा खुल रहे थे।

गन्दे भाषण की असफलता

इस प्रस्ताव को सबसे भारी चोट और गांव के वैद्य को सबसे भारी सहायता ऐसे पक्ष से पहुँची जिससे कुछ भी आशा ही नहीं हो सकती थी। यह घटना विस्मयजनक है कि जिस भाव द्वारा आयुर्वेद की अधिकतम क्षति करने का प्रयत्न किया गया था वही इस आयुर्वेद विरोधी प्रस्ताव के नाश में प्रधान कारण बना। मेरा अभिप्राय डाक्टर सेन की उस वक्तृता से है जो उन्होंने विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों की एक बैठक (जो प्लैनिंग कमीशन द्वारा बुलाई गई थी) में गत सितम्बर में देहली में की थी। वहाँ यह वक्तृता असफल हो गई थी। डाक्टर सेन ने अपनी लिखित वक्तृता का आरम्भ एक प्रसिद्ध अविशेषज्ञ के एक निरर्थक उद्धरण के साथ किया था जिसका विज्ञान अथवा चिकित्साशास्त्र से कुछ सम्बन्ध नहीं था। फिर तत्पश्चात् कुछ प्रश्न थे। मेरे यह पूछने पर कि यह प्रश्न केवल पढ़ने के लिए लिखे गये हैं या उत्तर प्राप्त करने के लिए, वह चिल्ला उठे कि यह केवल साहित्यिक प्रश्न है उत्तर के लिए नहीं है। इस पर सदस्य हँस पड़े और अध्यक्ष महोदय ने मुझे इशारा किया कि वक्ताओं को अपना वक्तव्य पढ़ने दें। तत्पश्चात् वक्ता ने अपनी आंखें कागजों में गाड़ दीं। वक्तव्य समाप्त किया, और मीटिंग से चले गये। यह देखने के लिए एक क्षण भी नहीं ठहरे कि उनके वक्तव्य का क्या प्रभाव हुआ।

यह स्पष्ट है कि ऐसे भाषण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जिस शास्त्र से भाषण सम्बन्ध रखता हो उसके विशेषज्ञों की अनुपस्थिति में ही भाषण हो। भाषण के विषय के ज्ञाताओं की उपस्थिति ने देहली की कृति को हास्यास्पद बना दिया था। परन्तु केन्द्रीय स्वास्थ्य-परिषद् ने डाक्टर सेन को वह अवसर प्रदान किया जो देहली में प्राप्त न हो सका था। एक सुरक्षित वातावरण

में जिसमें परिषद् विधान द्वारा उस संप्रदाय को बहिष्कृत कर दिया गया था जिसपर कि आक्रमण अभीष्ट था, डाक्टर सेन को देहलीवाला भाषण फिर से सुनाने को कहा गया। परन्तु डाक्टर सेन से एक भारी भूल हो गई। विरोधी विद्वानों के अभाव में वह निराधार आक्षेपों का इतना अतिशय कर गये कि परिषद् के सभ्य सदस्यों में घृणा जागृत हो उठी।

डा० सेन ने अपना भाषण अपने सहयोगियों (डाक्टर पंडित और डाक्टर चोपड़ा) पर 'आक्षेप' के साथ आरम्भ किया। इस सस्ते धोके में कौन आ सकता था। अविभाजित भारत में जब अंग्रेज और मुस्लिम लीग मिलकर काम करते थे जिन्ना का महात्मा गांधी पर आक्षेप करने से पहले एकाध आक्षेप अंग्रेजों पर कर जाना कभी हमारी आंखों में धूल न डाल सका। सबको ज्ञात है कि पाकिस्तान जिन्ना की नहीं अंग्रेज के मस्तिष्क की ऊपज है। और जब कूटनीतिज्ञ अंग्रेज ने पाकिस्तान सोच लिया, बना दिया, और संसार के सामने यह चिल्लाते हुए कि जिन्ना ही पाकिस्तान का निर्माता है उसकी गोद में भी डाल दिया तब वह उसे सम्यक् संभाल भी न सका। ठीक जिसप्रकार जिन्ना का कांग्रेस को गालियाँ निकालने से पहले एक-आध गाली अंग्रेजों को निकाल देना उस घनिष्ट सम्बन्ध और समझौते को नहीं ढँक सकता था जो जिन्ना और ब्रिटिश राज्य सत्ता में विद्यमान था उसी प्रकार डाक्टर सेन का स्वास्थ्य विभाग के कुछ डाक्टरों पर यह बनावटी आरोप कि क्योंकि वह आयुर्वेदिक समितियों पर कार्य कर चुके हैं इसलिए वह वैज्ञानिक नहीं नीतिज्ञ हैं किसी से वह घनिष्ट सम्बन्ध नहीं छुप सकता जो उनमें और उनके प्रवर्तकों में विद्यमान है। यदि उनका परस्पर मिलकर इस नाटक द्वारा मिनिस्ट्रों को प्रभावित करने का समझौता न होता तो वह डाक्टर (जो डाक्टर सेन को इस परिषद् पर लाये हैं) उन्हें देहली में ही यह कह सकते थे कि इस वक्तूता को हैदराबाद में न दोहरायें। स्पष्ट है कि देहली में उन्हें यह भाषण पसन्द आया और उन्होंने डाक्टर सेन को इसे हैदराबाद में फिर से सुनाने का आदेश दिया। अस्तु। इस मंत्र के प्रभाव पर इस दल की अपनी श्रद्धा कितनी भी हो, हैदराबाद में यह चला नहीं और बुद्धिमान सदस्य इससे सर्वथा अप्रभावित रहे।

अनुमान यह है कि यह भाषण देहली भाषण की हू-ब-हू

नकल थी। उदाहरणार्थ कहा गया, "जो व्यक्ति आग और पानी को तत्त्व समझते हैं उन्हें वैज्ञानिक कैसे कहा जा सकता है?" सरकार के व्यय पर बुलाई गई उच्चस्तर की वैज्ञानिक बैठकों का नीच कोटि के एकपक्षीय आन्दोलन के लिए खुला होना कहाँ तक उचित है इसका निर्णय तो स्वास्थ्य मंत्रिणी स्वयं करें। खुले शास्त्रार्थों में, व्यक्तिगत आन्दोलनों में, ऐलोपैथिक कांफ्रेंसों में अथवा उन सरकारी मीटिंगों में भी जहाँ दो दल अपना पक्ष प्रतिपादन करते समय वाद-विवाद में तुल्य अधिकार से भाग ले रहे हों। ऐसे आक्षेप करना उचित भी समझा जा सकता है। परन्तु ऐसे प्रश्नों को वहाँ पूछने से क्या लाभ जहाँ कोई इनके दोषों को स्पष्ट करनेवाला ही विद्यमान न हो? आयुर्वेद के भौतिक सृष्टिवाद में तत्त्व ही एक है—मूल प्रकृति। आयुर्वेदिक 'भूत' शब्द का अर्थ उस रूप में 'तत्त्व' होता ही नहीं जिसमें डाक्टर सेन ने पूछा।

परन्तु उस व्यक्ति को क्या कहें जो तेज का अर्थ आग करे और अग्नि का अर्थ सादा पानी? ऐसा वैज्ञानिक यह सुनने पर कि ब्रह्मांड न्यूटन के 'फोर्स आफ प्रेविटी' के कारण तुला हुआ है अवश्य पूछ बैठेगा कि एक वैज्ञानिक की गंभीरता की शक्ति संसार को कैसे इकट्ठा रख सकती है? न्यूटन की गंभीरता या उच्छृंखलता असीम और अनन्त दिक् में घूमती हुई जड़ और उदासीन द्रव्य की महान राशियों को कैसे प्रभावित कर सकती है? ऐसे डाक्टर से यह पूछा जाने पर कि डाक्टरी में फंक्शनल और आर्गनिक व्याधियों में क्या भेद है यही उत्तर मिलेगा कि फंक्शनल व्याधि विवाह और नाच-पार्टी आदि फंक्शनों को निरन्तर करते रहने का मेनिया होगा और आर्गनिक व्याधि उसे कहते होंगे जिसमें पेरेंड्रेन के इंजेक्शन लगाये जाते हैं।

मैं केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि ऐसी कृतियाँ उन सरकारी मीटिंगों की शान नहीं बढ़ाती जो उच्चस्तर पर की जाती हैं। व्यक्तिगत रूप में तो मैं डाक्टर सेन का आभारी हूँ। गांव के बच्चों की लाभ की दृष्टि से मुझे प्रसन्नता है कि डाक्टर सेन को हैदराबाद लाया गया और सुरक्षित और विधान द्वारा मोहर बन्द की हुई कोठरी में उसे दिल्ली की वक्तूता फिर से दोहराने को कहा गया। इस वक्तूता के गन्देपन ने ही गांव

के वैद्य की प्रधान सहायता की। सभ्य सदस्यों को इससे घृणा उत्पन्न हो गई। इस एक वक्तृता ने सरकारी प्रस्ताव को नष्ट करने में वह काम किया जो उसके अन्य विरोधी तत्त्व मिलकर नहीं कर सकते थे।

अस्तु। मैं उच्च राष्ट्रीय समितियों के गंभीरता से संचालन करने के औचित्य और महत्त्व पर विशेष आग्रह करना चाहता हूँ। उनकी मूल सारणी उत्सुकता और निर्माणप्रियता पर निर्भर होनी चाहिए न कि चालाकी और वाक्छल पर। सरकार के लिए यह सहायता और प्रकाश जनक होगा कि वह इस परिषद् की बैठक की कार्यवाही की तुलना इसी उच्चस्तर पर होनेवाली कुछ विदेशी परिषदों की कार्यवाही के रिकार्डों से कर ले। वहाँ किये गये कार्य की उच्चकोटि और प्रभूतमात्रा में दिये गये भाषणों की उत्कृष्टता और सभ्यता तथा सामान्य सत्य और उत्सुकता उसकी बिल्कुल उलटी होगी जो कि हैदराबाद में हुई।

हैदराबाद के असफल तमाशे के लिए मैं पूर्ण अपराधी सरकार को ही नहीं ठहराना चाहता। परन्तु सेन श्रेणी के डाक्टरों की छाँट अवश्य अनौचित्यपूर्ण है। पाश्चात्य वैज्ञानिक सलाहकार और इस श्रेणी के सलाहकार में इतना वैधर्म्य है कि वह दृष्टि से ओझल हो ही नहीं सकता। विदेशी डाक्टर जो अपने देशों में उच्च परिषदों पर इनके समान पदों पर हैं वह सच्चे अर्थ में वैज्ञानिक हैं। अपने आविष्कारों, गवेषणाओं और लेखों द्वारा उन्होंने विज्ञान के अस्तित्व को सहायता दी है। यहाँ तो विज्ञान इनके अस्तित्व में सहायता दे रहा है। एक दान करनेवाला है एक दान लेनेवाला। दान करनेवाला उदार चेता होता है और अपनी व्यक्तिगत कृतियों का लाभ अधिक जनसंख्या को पहुँचाने की इच्छा रखता है। दान लेनेवाला तंग दिल होता है और उन लाभों को दूसरे से रोक कर अपने व्यक्तिगत हित के लिए ही प्रयुक्त करना चाहता है। एक ऐसा ही 'वैज्ञानिक' एक मीटिंग में "मुझपर चिल्ला उठा, "नहीं हम पेनिसिलीन को कभी आयुर्वेदिक द्रव्य गुणशास्त्र का अंग नहीं बनने देंगे यह हमारी है।" स्पष्ट है यह पेनिसिलीन डाक्टर को अपने बाबाजी की जायदाद में मिली है। फ्लेमिंग ने इसकी खोज रोग पीड़ित जनता के लाभ के लिए नहीं किंतु लोभग्रस्त डाक्टरों के व्यक्तिगत लाभ के लिए की है।

यह दुःख जनक है कि रोग निवारण की कला पर

ठेकेदारी और कालाबाजारी प्यौंद उसी प्रकार लगाई जा रही है जैसी कि अंग्रेजों के समय में जो देश में इस प्रकार की प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन दिया करते थे, लगनी शुरू हुई थी। मेरे एक पन्द्रह वर्ष पुराने भाषण से लिया निम्न लिखित उद्धरण डाक्टर सेन की कृति पर आज भी उतनी ही घटता है जितना कि १९३८ में उस वैज्ञानिक कृति पर लागू होता था, जिसके लिए कि वह विशेष रूप से लिखा गया था:-

"भारतीय एलोपैथिक एक परम दयनीय व्यक्ति है बड़ी छेड़ और गर्व है उसके "वैज्ञानिक दृष्टिकोण" के दावे में, बड़ा अभिमान है उसके पारस्परिक सद्व्यवहार की चर्चा में परन्तु विज्ञान और सद्व्यवहार का लेप उसकी चमड़ी से नीचे नहीं उतरा। जरा नाखून मारिये तो नीचे से झगडालू दुकानदार निकल आएगा। उसकी वैज्ञानिकता पुस्तकों तक ही है प्रेक्टीश में नहीं जो कि पेटेंट औषधियों फ्री सैम्पलों, ग्लाटरों और पैम्पलैटों के आधार पर चलती है। उसके सद्व्यवहार का मूल सजा का डर है। जहाँ उसे कानून सद्व्यवहार के लिये नहीं जकड़ता, जैसे कि सरकार के सौतेले बच्चे आयुर्वेद और होमियोपैथिक के बारे में। वहाँ पर वह गाली गिलौच और असद्व्यवहार की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करने से नहीं चूकता। अंग्रेजी शासन ने आरंभ में जब कि युरोप से अच्छे डाक्टर पर्याप्त संख्या में यहाँ न आ सके तब इस काम चलाऊ को जन्म दिया। यह स्थायी लीप पोच है। एक आर्थिक नीति इसकी जन्म दाता है न कि कोई वैज्ञानिक प्रवृत्ति। जहाँ तक वैज्ञानिकता से सम्बन्ध है यह श्रनाथ है क्योंकि विज्ञान के साम्राज्य में इस के लिये स्थान नहीं। यह तो वैज्ञानिकों का सच्चा उत्तराधिकारी भी नहीं। न तो इस पर वैद्यों की तरह से वह कठोरता और अत्याचार ही हुए जिससे मनुष्य में स्वतन्त्रता और आत्म-समर्थन उत्पन्न होते हैं न युरोपियन और अमेरिकन डाक्टरों की तरह वह आदर और अधिकार ही मिला जिससे मनुष्य में आत्मसम्मान और गौरव बढ़ता है, फलस्वरूप यह न उधर न इधर बीच में ही अर्द्धपरतन्त्र एसिस्टेंटों की कष्टना जनक परिस्थिति में ही लटकता रहता। मेरी राय में तो इण्डियन मैडिकल प्रोफेशन को यदि एसिस्टेंट मैडिकल प्रोफेशन कहें तो नाम अधिक सार्थक होगा। ऐसे समाज का सदस्य होकर वह युरोपिन डाक्टरों की अपेक्षा

यूरोपियन डाक्टरों की अपेक्षा हम लोगों से अधिक सादृश्य रखता है। क्योंकि वह घृणा की अपेक्षा दया का अधिक पात्र है। इसी स्थिति के कारण वह जीवन और विज्ञान को उदार भाव से नहीं निहारता। इसीलिए देशी चिकित्सक के प्रति उसका ढंग वही है जो टुकड़ों के लिए लड़ते हुए भिखारी का भिखारी के प्रति होता है, न कि वह जो ज्ञान की खोज में एक वैज्ञानिक का दूसरे वैज्ञानिक के प्रति। विज्ञान की पिपासा से यह अपरिचित है। अपनी जन्मभूमि की पुरानी चिकित्सा प्रणाली से यह सर्वथा उदासीन है। यह उदासीनता एक लज्जाजनक कहानी है जिसका जोड़ किसी नवीन या प्राचीन सभ्य जाति के इतिहास में न मिलेगा। उन्नत और सभ्य देशों की कथाओं के पृष्ठ पलट-पलट कर देखिए, बुद्धि और ज्ञान पिपासा सदा ही भूतकाल की रहस्यमयी यवनिका को हटाने में संलग्न मिलेगी। केवल अशिक्षित जातियाँ ही अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं से बाहर नहीं निकलती। इस प्रकार मध्य कालीन अरब वाले भी चरक और सुश्रुत के ग्रंथों का अध्ययन करते थे और इस समय यूरोपियन डाक्टरों ने गैलन और हिप्पोक्रेटीज के जीवन और कार्य के सम्बन्ध में निश्चयात्मक सामग्री एकत्रित करने के लिए इतना प्रयत्न किया है कि भारतीय ऐलोपैथ तक हिप्पोक्रेटीज को (चिकित्साशास्त्र के पिता) के नाम से पुकारता है। परन्तु इस 'पिता' के पितामह चरक और सुश्रुत जैसे महान् आचार्यों के बारे में यह कुछ नहीं जानता न जानने की इच्छा रखता है। क्योंकि इसका प्रधान कार्य तो पाश्चात्य सिहनादों की रट लगाना है। अपने मन से तो यह सिहनाद भी निर्माण नहीं करता। विवेक की दृष्टि में तो इसका अस्तित्व ही नहीं। यह न सोचता है, न आविष्कार करता है। दूसरे इसके लिए सोचते हैं वह भी इसके देश से बाहर। यह तो स्वयं एक आविष्कार है जिसे चाबी देकर चला दिया गया है और यह चल रहा है। पाश्चात्य चिकित्सा का विशाल भवन इसके सामने खड़ा है परन्तु इसमें न यह ईंट है न ईंट रखनेवाला। यह एक कृति है कर्ता नहीं। यही कारण है कि देशी चिकित्साओं के विरुद्ध जो रह रह कर इसे क्रोध का दौरा उठता है उसमें न-महत्त्व है न उत्तरदायित्व। यही कारण है कि रिसर्च आदि में पड़ने या विज्ञान को कोई मौलिक अथवा नवीन भेंट करने के बजाय रोगी की जेब को ही इसने जीवन का लक्ष्य बना

लिया है। यह एक मध्यम श्रेणी का दुकानदार है जो वैज्ञानिक के वेश में फिर रहा है। इसीलिए यह वैज्ञानिक खोज से इतना विमुख है कि अन्य चिकित्सापद्धतियों के प्रति इसके व्यवहार में विनय और सम्यता का अभाव है। परन्तु इससे अधिक आप आशा ही क्या रख सकते हैं, एक ऐसे व्यक्ति से जो इसी लज्जा में घुलता चला जाये कि उसके अभिमान का जो एकमात्र कारण है उसके निर्माण में उसका जरा भी हाथ नहीं?

क्या वह अब भी जागृत होकर अपनी परिस्थिति को पहचानेगा? यदि वह ऐसा करे तो मुझे यह संतोष होगा कि मैंने पाश्चात्य विज्ञान की कुछ सेवा कर दी। मैंने किसी कटुता अथवा वैर विरोध के कारण यह समालोचना नहीं की। यदि मैं चाहता हूँ कि भारतीय ऐलोपैथ किकरवृत्ति और बिडम्बना, लालच और व्यापार, अज्ञान, मिथ्याभिमान और उद्विग्नता को त्याग दें तो इसलिए कि वह मेरा देशवासी है, क्योंकि मैं उसकी शक्तियों के भावी विकास में विश्वास रखता हूँ, क्योंकि मैं उसे अच्छा शिष्य और अच्छा शिक्षक देखना चाहता हूँ बजाए एक मुँहफट और निकम्मे कुटुंबी के जो न अभिमान का ही मूल हो न चैन का ही।

क्षन्तव्य परिस्थिति

मैं डाक्टर सेन की वक्तृता के बारे में और कुछ नहीं कहूँगा। जो कुछ मैंने कहा है वह भी झिझकते हुए कहा है जैसे कि कोई अपराध किया हो। वह उत्कृष्ट सभ्य, जिन्होंने डाक्टर सेन का आक्रमण पसन्द नहीं किया, इस प्रत्याक्रमण को भी पसन्द नहीं करेंगे। मुझे एक ही संतोष है कि वह सज्जन समुदाय मेरे या किसी के कोई भी भूल करने पर अपना देश प्रेम और देश सेवा का स्वतन्त्र पथ छोड़नेवाला नहीं। परन्तु दूसरे कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो इस प्रकार के आन्दोलन से प्रभावित हो जाते हैं और उनके लिए ऐसे आन्दोलनों का प्रतिकार आवश्यक है। देश और विज्ञान की सेवा में बँध समाज को किन-कठिनाइयों के नीचे कार्य करना पड़ता है यह जनता को ज्ञात नहीं। वह व्यक्ति जिसने यह कहा था कि वह पैनिसिलिन को आयुर्वेदीय द्रव्यगुण शास्त्र का अंग कभी नहीं बनने देगा, १५ वर्षों से आयुर्वेदिक विभागों का अधिष्ठाता बना हुआ है। कब तक आयुर्वेद के भाग्य के विधाता यह लोग बने रहेंगे जो कि अपने विज्ञान की सीढ़ी पर सबसे नीची पटरी पर बैठे हैं जिनमें इतना भी सौजन्य नहीं कि

जिस शास्त्र में उनका मन नहीं उसके क्रियाक्षेत्र से अलग हो जाएं क्योंकि वहाँ उनका विरोध विज्ञान की उन्नति का अवरोध कर राष्ट्रीय प्रयत्न का कृतिविध्वंस कर रहा है।

मैं अपने लिए यही कह सकता हूँ कि मैंने गवर्नमेंट कौन्सिल मीटिंगों में कभी डाक्टर सेन वाले हथकण्डों का प्रयोग नहीं किया। इसका प्रमाण मेरे वह दो वक्तव्य हैं जो मैंने "स्वास्थ्य और राष्ट्रीय चिकित्सा" पर प्लैनिंग कमीशन की स्वास्थ्य परिषद में उपस्थित किए। तो भी मुझे भय प्रतीत होता है, जब मैं उपर्युक्त कथन के उन मंत्रियों के दृष्टिगोचर हो जाने की सम्भावना को देखता हूँ, जिन्होंने डाक्टर सेन के वक्तव्य को अनुचित समझा। मैं उनसे यही प्रार्थना करूँगा कि जहाँ तक उनका सम्बन्ध है जो पीछे लिखा जा चुका है उसकी ओर ध्यान न देकर जो आगे लिख रहा हूँ उसी पर अपना ध्यान दें। पिछला लेख तो केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए लिखा गया है जिनके जड़ मस्तिष्क में बिना संशोधन चिकित्सा के यह तत्त्व घुसाना सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त यह एक आयुर्वेदिक सम्मेलन की अध्यक्षीय वक्तृता है, स्वास्थ्य परिषद के विचार के लिए कोई लेख या वक्तव्य नहीं। यहाँ मेरा यह कर्तव्य है कि मैं अपने निर्वाचक वर्ग, अर्थात् आयुर्वेद संप्रदाय, के उन आन्तरिक भावों का उस भाषा में स्पष्टीकरण करूँ जो उनपर निरंतर किए गए अन्यायों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को पूर्णतया प्रगट कर सके। यहाँ मुझे एक वृद्ध अंग्रेज कर्नल का स्मरण आता है जिसने अपने विरुद्ध एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण असत्य आरोप लगाए जाने पर दुष्ट विरोधी को यह शब्द लिखे, "मेरी टाइपिस्ट एक लेडी (सम्भ्या) है अतः वह नहीं लिख सकती जो मुझे तुम्हारे लिए लिखवाना चाहिये। मैं एक जण्टलमैन (सम्भ्य) होने के कारण वह भाव मन में ही नहीं ला सकता जो तुम्हें लागू होते हैं—पर तुम इन दोनों में से एक भी न होने के कारण समझ सकोगे कि मेरा क्या अभिप्राय है।" अस्तु। मेरे सम्प्रदाय ने यह उचित नहीं समझा कि वैद्यों की अनुपस्थिति में आयुर्वेद पर किए गए उसके घृणित आक्षेपों के बारे में जो उसका विचार है उसका अनुमान डाक्टर सेन पर छोड़ दिया जाये। उसकी यह विशिष्ट इच्छा है कि उसके भाव डाक्टर सेन और उनके संरक्षकों को सुस्पष्ट भाषा में व्यक्त कर दिए जाएं। उनके मुख्य प्रतिनिधि के नाते मैंने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है।

जिन इने गिने डाक्टरों की यहाँ आलोचना की गई है उन्हें छोड़कर भारतवर्ष के अन्य डाक्टरों के प्रति जो आदर मेरे हृदय में है वह मेरी पहली वक्तृताओं के निम्न-लिखित उद्धरणों में व्यक्त है :—

"यह मेरे साथ अन्याय होगा यदि इस वर्णन में भारत के उन उच्च कोटि के डाक्टरों को भी गिन लिया गया जो शील और आचार के आदर्श हैं। उनकी संख्या भारत-वर्ष में थोड़ी नहीं है।"

—(अध्यक्षीय भाषण, ३८ वां महासम्मेलन इन्दौर।)

"भारतवर्ष में बहुत से ऐसे डाक्टर हैं जो संसार के किसी भी समाज या संप्रदाय के लिए गौरव और सम्मान के कारण हो सकते हैं।"—(अध्यक्षीय वक्तृता महासम्मेलन गाजियाबाद।)

(क्रमशः)

वैद्यनाथ लौहासव

वैद्यनाथ सारिवाद्यरिष्ट

खतापता के लिए सुप्रसिद्ध
मही पवि है। जो न ज्वर,
उबरास्तदोर्ध्व एवं ज्वर और
तिल्ली के बढ़ जाने पर विशेष
लाभदायक है।

बुन को साफ कर शुद्ध और
निर्दोष बनाता, गर्मी, मुजाना
और पोते के ज्वर को समूल
नाश करता तथा कुनाइन के
अत्यधिक उपयोग से उत्पन्न
उपद्रव को मिटाता है। मेधातानि
की वृद्धि के लिए यह एक उत्तम
'वैद्यनाथ' भी है।



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन हिं

क. र. क. म. प. य. म. म. की. की. नागपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बिहार की वनस्पतियाँ

प्रो० ठा० बलवन्त सिंह, एम० एस्-सी०

(गत फरवरी अंक से आगे)

पुष्प पीताम्ब-श्वेत और फल वृत्ताकार एवं मांसल होता है। मूल तथा काण्ड रक्ताभ होते हैं और रंग निकालने के लिये एवं ओषधि रूप में इनका संग्रह होता है। यह लता वस्तुतः हिमालय की पहाड़ियों पर होती है, परन्तु इस प्रान्त में भी केवल ऊँची जगहों (नेतरहाट, पारसनाथ) में पाई जाती है।

२५६—खोंटवा, रंगन

Ixora parviflora, Vahl.

इसके प्रायः छोटे-छोटे वृक्ष होते हैं। चिकनी और चर्म सदृश पत्तियाँ आयताकार, अण्डाकार, लगभग अवृन्त ३-६ × १.५-२.५ इञ्च बड़ी और कुण्ठिताग्र होती है। पुष्प सफेद, सुगंधित, गुच्छों में और फल गोल, नताग्र और काले तथा चमकदार होते हैं। मध्य और दक्षिणी भागों में प्रायः शालवनों के भीतर और प्रायः नालों के किनारे इसके वृक्ष मिलते हैं। इसे मरममेत (संथा०), दत्तरंजन (खर), कोन्था (माल० प०), रंगन (बं०), कोटा गंधल (हिं०) तेलकुरवा या तेलकुरिया (उ०), Torch Tree (अ०) कहते हैं। कुकुरखाँसी में फूल को दूध में पीस कर दिया जाता है। शाखाओं से मशाल के ढण्डे बनते हैं। इसकी एक-दो जातियाँ बागों में पाई जाती हैं और एक अन्य जंगली जाति होती है जो सर्वदा पानी के किनारे होती है।

२६०—जूर

Canthium didymum, Roxb.

इसका नीचे ही फैला हुआ वृक्ष या बड़ा गुल्म होता है जिसकी छोटी-छोटी शाखाएँ अग्र पर चिपटी रहती हैं।

पत्तियाँ दो कतारों में होती हैं—वे गाढ़े हरे रंग की, लम्बाग्र, लट्वाकार या लट्वाकार-प्रासवत्, ४-६ इञ्च × २.५-३ इञ्च बड़ी और पर्णनाल ५ इञ्च तक बड़े होते हैं। पुष्प पंचांग-भागी, हरिताम या श्वेत और फल काला तथा गोलाकार होता है। प्रान्त के सभी जंगली भागों में प्रायः नदी-नालों के किनारे यह पाया जाता है। छाल में कषाय द्रव्य सम्भवतः प्रचुर मात्रा में होता है अतः उसका उपयोग मछली मारने में होता है। छाल के चूर्ण का लेप अस्थिभंग या मोच पर होता है। इसे जूर (को०), गर्मगरेष्ठा (संथा०) रनगूरी (राँची) कहते हैं।

२६१—काफी

Coffea bengalensis, Roxb.

इसके सुन्दर तथा ३-४ फीट ऊँचे गुल्म होते हैं। पत्तियाँ लट्वाकार, लम्बाग्र, ३-४ इञ्च × २-३ इञ्च बड़ी और पुष्प श्वेत तथा फल काला अण्डाकार तथा लगभग ३ इञ्च लम्बा होता है। बीज नालीदार होते हैं। प्रान्त के अधिक नम भागों में यह होता है। चम्पारन, पुर्णिया तथा सिंहभूमि आदि में वृक्षों की छाया में यह अधिक पाया जाता है। वास्तविक काफी *C. arabica* L. हजारीबाग तथा राँची प्लेटो पर बागों में प्रायः लगाया हुआ मिलता है। काफी की तीसरी जाति *C. liberica*, Bull. भी कभी-कभी लगाई हुई मिलती है।

२६२—कदम्ब

Anthocephalus Cadamba, Miq.

कदम्ब के लोक प्रसिद्ध बड़े-बड़े जंगली वृक्ष उत्तरी सीमा

तथा सिंगभूमि की घाटियों में मिलते हैं। अन्यत्र यह लगाया हुआ होता है।

२६३—मुण्डी-कुल

Compositae

कुल-लक्षणः—पत्ती अनुपत्र, पुष्प अवृन्त और मुण्डकव्यूह में समूहबद्ध, प्रत्येक मुण्डक के नीचे एक या अनेक चक्रों की अधःपत्रावलि उपस्थित; कभी-कभी कई मुण्डक पुनः मुण्डकाकार क्रम में समूहबद्ध, प्रत्येक मुण्डक के सभी पुष्प समानलिंग और समानाकार अथवा विषमलिंग और विषमाकार, दूसरी अवस्था में बाहरी पुष्प एक या अनेक चक्रों में और जिह्वाकार और केन्द्रीय पुष्प नालाकार; बाह्यकोश अनुपस्थित या उपरिजाय और प्रायः रोम सदृश रचनाओं में परिवर्तित; आभ्यन्तरकोश नालाकार या जिह्वाकार और (५), पुंकेसर (५) और श्लिष्टाशय; अगडाशय एक गह्वर और उसमें बीजीभव अकेला और आधारीय; कुक्षिवृन्त द्विवाहु; फल युताधःफल (cypselatr).

२६४—सेवराज, सोमराजी

Vernonia anthelmintica, Willd.

इसके रुक्ष, एकवर्षीय और २-७ फीट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ दन्तुर, लम्बाग्र, अगडाकार या अभि-लट्वाकार, कभी-कभी प्रासवत्, फलकमूल क्रमशः संकुचित होकर सूक्ष्मवृन्त से जुड़ा हुआ, ऊपर की पत्तियाँ क्रमशः छोटी और प्रासवत् परन्तु नीचे की प्रायः ८×३ इञ्च बड़ी होती हैं। पुष्प सभी नालाकार और जामुनी रंग के होते हैं। फल १५ इञ्च लम्बा, रुण्डित, काला और धारायुक्त होता है। बीज लम्बा, कृष्णाभ और कड़वा होता है। बीज काली जीरी (करजीरी) के नाम से बाजार में मिलते हैं। इसके क्षुप गाँवों के आसपास प्रायः लगाये हुए मिलते हैं।

इसे कुछ आधुनिक ग्रन्थकारों ने अरण्य जीरक नाम दिया है जिसको ध. नि. में वनजीरक के नाम से कटु, शीत,

त्रणनाशक और कृमिघ्न बतलाया गया है। कुछ ग्रन्थकार इसे प्राचीनों की सोमराजी मानते हैं जो उनके मत से बाकुवी से पृथक भिन्न द्रव्य है। इस प्रान्त में इसका संथाली नाम सेवराज है। यदि सेवराज संथालियों का परम्परा प्रचलित नाम है तो निस्सन्देह इसे सोमराजी मानना चाहिए। इसे ओषधि संग्रहकार ने तिक्त, दीपन, वातहर, कटु, पौष्टिक कृमिघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, त्वरदोषहर और कंठघ्न बतलाया है।

२६५—सहदेवी

Vernonia cinerea, Less

इसके क्षुप स्वावलम्बी अथवा प्रसरणशील, सशाख ८ इञ्च से ३ फीट तक ऊँचे होते हैं। इनके काण्ड पतले, रेखायुक्त, रोमश और शाखाएँ प्रायः श्वेताभ-रोमश होती हैं। पत्तियाँ कई तरह की अर्थात् रेखाकार, अगडाकार, लट्वाकार या अभि-लट्वाकार, अखण्ड या दन्तुर, अवृन्त अथवा क्रमशः संकुचित होकर सूक्ष्म वृन्त से लगी हुई रहती हैं। मुण्डक २५ इञ्च लम्बा और आयताकार और पुष्प हल्के जामुनी रंग के होते हैं। अधःपत्रावलि घंटिकाकार, २ इञ्च लम्बी और उसके पत्रप्रायः रेखाकार, लम्बाग्र और उनका अग्र कंटक सदृश तीक्ष्ण होता है। सहदेई के पौधे परित्यक्त भूमि में सर्वत्र होते हैं। इसे झुरझुरी (संथाल) या वरनगोम कहते हैं। जिस बलाभेद को निवृत्तकारों ने सहदेवी बतलाया है वह यह नहीं है। परन्तु इसके ही लिये कहा गया है कि मूल को शिखा में बांधने से ज्वर रुक जाता है। इसका लेप शोथ—विलयन कारक होता है। इसका काथ स्वेदजनक होता है। इसके बीज भी कृमिघ्न और घोड़ों के लिये पौष्टिक माने जाते हैं। पुष्प अभिष्यन्द में उपयोगी बतलाये जाते हैं। इसका स्वरस भी ज्वर में दिया जाता है और शरीर में मला जाता है। अर्श में भी स्वरस दिया जाता है।

२६६—डोरावाहा

Vernonia Roxburghii, Less,

इसके स्वावलम्बी, दृढ़ एवं ३-४ फीट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्तियाँ न्यूनाधिक अवृन्त, खुरखुरी, लम्बाग्र, अभि-प्रासवत् या अभि-लट्वाकार, दन्तुर, ३-७ इञ्च × १-२ ७/८ इञ्च बड़ी होती हैं। मुण्डक जामुनी रंग का और काण्ड के अग्र पर अकेला या गुच्छों में होता है। परित्यक्त भूमि अथवा झाड़ीदार जंगलों में (प्रान्त के मध्य भाग में) अथवा नेतर हाट में इसके क्षुप मिलते हैं। सम्बलपुर में पत्ती को पीसकर हैजा में दिया जाता है।

२६७—मयूरजूटी, मयूरशिखा

Elephantopus scaber, L.

इसके स्वावलम्बी एवं दृढ़ क्षुप ८-१८ इञ्च बड़े होते हैं। पत्तियाँ मूलीय पत्रगुच्छों में, अभि-लट्वाकार या अभि-प्रासवत् और ४-६ इञ्च लम्बी होती हैं। काण्ड पतला, द्विविभक्त तथा रोमश होता है जिसपर पत्तियाँ १-३ इञ्च लम्बी, अवृन्त एवं काण्डसंसक्त (Amplexicaul.) और दूर-दूर होती हैं। मुण्डक सूक्ष्म और समूहवद्ध होकर प्रायः ३, पत्रवत् बड़े और हृदय कोण-पुष्पकों के बीच में रहते हैं। प्रत्येक मुण्डक में पुष्प संख्या प्रायः २-५ तक होती है। प्रान्त के सभी भागों में इसके क्षुप प्रायः खुली जगहों या कुछ-कुछ छायादार जगहों में पाये जाते हैं।

मुण्डकगुच्छ कोणपुष्पकों के साथ मयूर की शिखा के सदृश दिखाई देते हैं और इसीलिए लगभग सभी आदिवासी जातियों में इसके जो नाम हैं वे सभी मयूर शिखा के समानार्थक होते हैं। इस प्रवल प्रमाण के अधार पर इसे मयूरशिखा मानना उचित मालूम होता है। इसे मारा चूटा (हो०), मयूर जूटी (रांची-संथा०), मयूर चुटिया (लाटखर) तथा टिकटिकिया (बटिया-में) कहते हैं। इसके कई उपयोग भी आदिवासियों में होते हैं। इसे तेल में पकाकर ज्वर में लगाया जाता है। रक्ततिसार में मूल का

सेवन किया जाता है। मूल का उपयोग बच्चों के अतिसार में भी होता है। आधा सीसी में तथा प्रसूतिका में भी यह उपयोगी द्रव्य माना गया है। इसकी जड़ें गुच्छेदार होती हैं अतः मिर्जापुर के जंगलों में कुछ लोग इसे सहस मूली भी कहते हैं। ओषधि संग्रहकार ने इसे गोजिह्वा बताकर इसे रूनेहन, शीतल और मूत्रजनन बतलाया है।

२६८—उचुण्ठी

Ageratum conyzoides, L.

इसका एकवर्षीय क्षुप १-२ फीट ऊँचा, रोमश और स्वावलम्बी होती है। पत्तियाँ अभिमुख अथवा ऊपर एकान्तर, गोलदन्तुर, लट्वाकार, सवृन्त, १-३ इञ्च लम्बी और रोमश होती हैं। मुण्डक के सभी पुष्प समान लिंग और नालाकार, श्वेत या जामुनी रंग के और अधःपत्रावलि २-३ चक्रों में और घंटिकाकार रहती है। मुण्डक समस्थ कांडज क्रम में होते हैं। फल काले और बाह्यपुट पाँच शूकी वलकपत्रों का होता है। यह क्षुप खेतों अथवा बागों में और अधिकतर नम भागों में पाया जाता है।

इसे उचुपटि (ब०), पो (बो) कसुङ्गा, (३) इलामी (नेपाल) और ओसाड़ी (मराठी) कहते हैं। औषधि संग्रहकार ने इसे स्वेदजनन बतलाया है और इसलिए ज्वर में इसके स्वरस की मालिश की जाती है। घाव पर इसके पत्ती को पीसकर बांधने से रक्तस्राव बंद होकर घाव अच्छा होता है। गुद भ्रन्श में भी पत्ती पीसकर लगाई जाती है।

२६९—भेदियाचिम

Grangea maderaspatana, Poir.

इसके प्रसरणशील, रोमश तथा गंधयुक्त क्षुप होते हैं जिनमें पत्तियाँ पक्षवत् खण्डित और पीले, विषमलिङ्ग तथा गोल मुण्डक होते हैं। शाखाएँ ३-४ इञ्च अथवा १० इञ्च तक लम्बी होती हैं। धान की क्यारियों में तथा नम जमीन में इसके क्षुप सर्वत्र पाये जाते हैं। इसे उत्तम दीपन,

संकोचविकास प्रतिबन्धक और आर्तवजनन बतलाया गया है। कुछ आधुनिक ग्रन्थकार इसे देशी अकरकरा कहकर अकरकरा का प्रतिनिधि द्रव्य मानते हैं। संथाली भाषा में इसे भेदियाचिम कहते हैं।

२७०—कुकरौंधा

Blumea.

कुकरौंधा प्रजाति की कई जातियाँ इस प्रान्त में मिलती हैं। इस प्रजाति में पत्तियाँ एकान्तर और मुण्डक पीताभ और कभी-कभी जामुनी अथवा सफेद रंग के होते हैं। अधःपत्रावलि के पत्र कई चक्रों में और बहुत पतले तथा लम्बे होते हैं। मुण्डक के बाहरी पुष्प स्त्री-पुष्प और उनका आभ्यन्तरकोष ऊपर २-३ खण्डों का होता है। केन्द्रिय पुष्प उभयलिंग और उनका आभ्यन्तर कोश नालाकार या निवापसम और ऊपर पाँच खण्डों वाला होता है। कुकरौंधा की जातियों में न्यूनाधिक मात्रा में दीपन, वायुनाशी, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कासहर, कफघ्न, संकोचविकास प्रतिबन्धक, संग्राहक, कृमिघ्न और वेदनास्थापन के गुण होते हैं। अत्यार्तव, रक्तातिसार तथा रक्तार्श में इसका अधिक उपयोग होता है।

२७१—रास्ना, वायुसरई

Pluchea lanceolata.

जिसे उत्तर प्रदेश में रासन, रोशना अथवा वायुसरई कहते हैं वह हेन्स के अनुसार इस प्रान्त में नहीं पाया जाता। परन्तु सर्वोदय कृषिक्षेत्र, नूमेर (मुंगेर) के हाते में इसके पौधे हमें मिले। बिहार प्रान्त में रास्ना के नाम से वैद्य Vanda Roxburghii नाम की वनस्पति को जो वृक्षों के ऊपर होती है ग्रहण करते हैं। शास्त्रीय रास्ना सम्भवतः उपर्युक्त वायुसरई नामक वनस्पति है जिसका उपयोग उत्तर प्रदेश से मँगाकर करना चाहिए।

२७२—मुण्डी

Sphaeranthus indicus, L.

मुण्डी के प्रसरणशील एवं गंधयुक्त क्षुप होते हैं जिनके काण्ड सपक्ष, पत्तियाँ अवृन्त, अभि-लट्वाकार अथवा अभि-प्रासवत्, दन्तुर, १-२ इञ्च लम्बी तथा काण्ड सम्पृक्त होती हैं। मुण्डक पत्राभिमुख, विषमलिंग, संयुक्त, ५-७५ इञ्च लम्बे, उनका व्यूहाक्ष दीर्घित और अधःपत्रावलि के पत्र रेखाकार तथा तीक्ष्ण होते हैं। प्रान्त के सभी भागों में प्रायः धान की क्यारियों अथवा नम जमीन में इसके पौधे अधिक होते हैं। इसे मुण्डी (हि०) मुरमुरिया (बं०), मुरिसा या मुइकदम (उ०) तथा वेलौंजा (संथा०) कहते हैं। मुण्डी शाखाओं में प्रसिद्ध एक परमोपयोगी द्रव्य है। इसमें दीपन, मूत्रजनन, आनुलोमिक एवं रक्तशोधक गुण होते हैं।

२७३—करोनी, आर्तगल

Xanthium Strumarium, L.

करोनी के क्षुप १-३ फीट ऊँचे, रुक्ष एवं कर्कश होते हैं। पत्तियाँ सवृन्त (वृन्त लम्बा), लट्वाकार-त्रिकोणाकार, किंचित् खण्डित और दन्तुर, २-४ इञ्च लम्बी और फलकमूल तीन स्पष्ट शिराओं से युक्त और हृदय होता है। मुण्डक एक लिंग होते हैं। स्त्री-मुण्डकों के कोणपुष्पक संयुक्त होकर एक द्वि-गह्वर अण्डाकार रचना का निर्माण करते हैं, जिसके अन्दर प्रत्येक गह्वर में एक-एक नग्न स्त्री पुष्प होता है। इनके कुक्षिवृन्त के दोनों खण्ड कोष के बाहर ऊपर की ओर दो शृंगसदृश रचनाओं के रूप में निकले रहते हैं। पुँपुष्पों के गोल मुण्डक काण्ड के अग्रपर होते हैं। इनमें बहुत से पुष्प तथा एक-दो चक्रों में स्थित अधः पत्रावलि होती है। उपर्युक्त कोश ५-१ इञ्च लम्बा होता है जिस पर अंकुशाकार मृदुकण्टक रहते हैं। परिपक्व होने पर ये फलाभास कोश बहुत कठोर हो जाते हैं। इसके क्षुप प्रायः नदियों की पट्टी में होते हैं।

इसे अनेक प्रमाणों के आधार पर शास्त्रकारों का

आर्तगल सिद्ध किया गया है। इसके फलों का उपयोग आँख में रोहा हो जाने पर अंजन आदि के रूप में होता है। रोहा वाले बच्चों को फलों की माला भी पहनाई जाती है। गुण के अनुसार कुरथुआ या कुरथुआ आदि नाम पड़े हैं। काशी के आस-पास इसे करोनी और लाट (पलामू)-में कहअइनी कहते हैं। यहाँ भी आँख से पानी गिरने पर इसका उपयोग किया जाता है। ओषधि संग्रह में इसका वर्णन शंकेश्वर नाम से किया गया है और इसे (पत्ती और मूल) स्वेदजनन, लालास्राववर्धक, किंचित् मूत्रल, शामक और शोथघ्न बतलाया गया है। इसके अन्य उपयोग वहीं देखें। काँटेदार फलों एवं सूत्रल होने के कारण कोई-कोई इसे छोटा गोखरू भी कहते हैं। रक्ताश में भी इसके पत्तों का उपयोग सुना गया है।

२७४—हरकुच, हिलमोचिका

इसके क्षुप प्रसरणशील, ग्रन्थियों पर मूलयुक्त और मांसल होते हैं। पत्तियाँ अभिमुख, अवृन्त, कमचौड़ी आयताकार, १-२ इञ्च लम्बी और दन्तुर होती है। कांड से निकल कर छोटी-छोटी रोमश, मुण्डकयुक्त शाखाएँ ऊपर की ओर उठी रहती हैं। मुण्डक पीले, दण्ड रहित, व्यास में ३-७ इञ्च, विषमलिङ्ग और उनके प्रान्तीय पुष्प स्त्रीलिङ्ग जिह्वाकार और कई चक्रों में रहते हैं। केन्द्रीय पुष्प उभय-लिङ्ग और अधःपत्रावलि के पत्र संख्या में केवल चार होते हैं। राँची में नदियों के किनारे यह पाया गया है। इसे हिगचा या हेलञ्च (वं०), और हिलमोचिका (सं०) कहते हैं। यह कटु और आनुलोमिक गुण वाला है। पत्रशाक का व्यवहार प्रायः बंगाल आदि में होता है। मज्जा तंतु एवं त्वचा के रोगों में इसका उपयोग होता है। निघंटुओं के टीकाकार प्रायः हिलमोचिका को हुरहुर लिखते हैं जो भिन्न द्रव्य है।

२७५—भांगरा, भृङ्गराज (श्वेत)

Eclipta alba, Hassk.

भांगरा का क्षुप प्रायः प्रसरणशील, अनेक शाखाओं वाला, खुरखुरा, और ग्रन्थियों पर प्रायः मूलयुक्त होता है। पत्तियाँ अभिमुख, सवृन्त (वृन्त छोटा) आयताकार या अण्डाकार, नोकीली और प्रायः परिमाण आदि में भिन्न-भिन्न होती हैं। मुण्डक छोटे, विषमलिङ्ग और विषमाकार पुष्पों के होते हैं। प्रान्तीय पुष्प स्त्रीलिङ्ग, और जिह्वाकार होते हैं। केन्द्रीय पुष्प घंटिकाकार होते हैं। रास्ते तथा चराई के मैदानों में प्रायः सभी जिलों में यह पाया जाता है। यह आयुर्वेद का प्रसिद्ध औषध द्रव्य है और यकृत विकारजन्य रोगों में तथा पलित में इसका विशेष उपयोग होता है। इसे भांगरा, भंगरइया (हि०) केसारी, केसूटी (वं०) हातूकेसारी (को०), केसरडा (उ०) कहते हैं। इसके अनेक नाम पलितनाशक गुण के द्योतक हैं। आयुर्वेद में श्वेत, पीत और कृष्ण तीन भेद भृङ्गराज के कहे जाते हैं, जिनमें कृष्ण भृङ्गराज का अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। पीत भृङ्गराज का वर्णन नीचे दिया गया है।

२७६—पीला भांगरा

Wedelia Calendulacea, Less.

पीला भांगरा के क्षुप प्रसरणशील होते हैं। इनके काँड जमीन के नीचे प्रायः १-२ फीट लम्बाई में फैले रहते हैं और उनसे स्वावलम्बी शाखाएँ ऊपर की ओर निकली रहती हैं। पत्तियाँ आयताकार-प्रासवत्, २-३ इञ्च लम्बी, लगभग अखण्ड या दन्तुर होती हैं। अधःपत्रावलि के पत्र लगभग दोचक्रों में और बाहर के ३-५ पत्र बड़े एवं पर्णाकार होते हैं। मुण्डक पीले होते हैं। प्रान्तीय जिह्वाकार पुष्प संख्या में लगभग आठ होते हैं। इसके क्षुप प्रायः पानी के आसपास होते हैं। इसे केशराज (वं०) या भांगरा कहते हैं। सामान्य श्वेत भांगरा की तरह इसका भी उपयोग होता है।

२७७—मुरेठी, मरहडिका

Spilanthes acmella, L.

इस क्षुप के काँड दुर्बल, लम्बे और मूल के पास प्रसरणशील होते हैं। पत्ती आमने-सामने, लट्वाकार या प्रासवत्, आरावत् धार वाली और १-५-२ इञ्च लम्बी होती है। मुण्डक पीले, दर्शनीय, ५ इञ्च व्यास में और लम्बे दण्ड के अग्र पर होते हैं। बागों में लगाई हुई दूसरी किस्म को *S. oleracea* कहते हैं। इसे लोग नकली अकरकरा कहते हैं। मुण्डक को मुख में रखने से अत्यन्त लालसाव होता है। अतः दाँतों की पीड़ा तथा मसूड़ों के शोथदि में इसका व्यवहार होता है। जंगली जाति के पौधे प्रायः पानी के आसपास होते हैं।

२७८—दाँतरीसा

Glossocardia linearifolia, Cass.

इसका सुन्दर, छोटा एवं गंधयुक्त क्षुप होता है, जो १-६ इञ्च और कभी-कभी १० इञ्च तक ऊँचा होता है। यह चिकना और अनेक शाखाओं वाला होता है। पत्तियाँ १-२ वार पक्षवत्-खण्डित, एकान्तर और खण्ड रेखाकार होते हैं। मुण्डक छोटे तथा पीले होते हैं। प्रान्तीय जिह्वाकार पुष्प स्त्री पुष्प और प्रायः अकेला होता है। केन्द्रिय पुष्प उभय लिंग, संख्या में कम और नालाकार होते हैं। अधः-पत्रावलि के पत्र बाहर की ओर प्रायः संख्या में तीन और छोटे तथा भीतर के आयताकार, बड़े और धार पर झिल्ली सदृश होते हैं।

इसे कई प्रान्तों में पित्तपापड़ा कहते हैं। राँची आदि के आदिवासी इसे दान्तरिसा कहते हैं। ओषधि संग्रह में पत्थरसुआ के नाम से इसका वर्णन है। प्रान्त के आदिवासी दाँतों से रक्तस्राव होने पर या दन्तकृमि में इसका उपयोग करते हैं। इसे स्वेदजनन, ज्वरघ्न और गर्भाशय संकोचक बतलाया गया है। पित्तपापड़ा के सदृश इसके गुण माने जाते हैं, परन्तु यकृत की अपेक्षा गर्भाशय पर-

इसकी विशेष क्रिया होती है। अतः अनार्तव तथा पीडिता-र्तव में इसका उपयोग होता है। राँची, सिंगभूमि आदि में प्रायः चट्टानों के ऊपर यह पाया जाता है।

२७९—नकलिकनी, छिकिका

Centipeda orbicularis, Lour.

इसे बहुत छोटे, सुन्दर और प्रसरणशील क्षुप होते हैं जिसकी अनेक शाखाएँ मूल के पास से निकल कर चारों ओर फैली रहती हैं। पत्तियाँ ३-७ इञ्च लम्बी या इससे भी छोटी, अभिप्रासवत् या अभि-लट्वाकार, आयताकार और दूर-दूर दन्तुर होती हैं। मुण्डक सूक्ष्म, गोलाकार और इसके प्रान्तीय पुष्प छी-पुष्प, कई चक्रों में और जिह्वाकार, केन्द्रिय पुष्प उभय लिंग तथा नालाकार और संख्या में कम होते हैं। अधःपत्रावलि दो चक्रों में रहती है। प्रान्त के सभी जिलों में प्रायः आर्द्र भूमि में इसके क्षुप मिलते हैं। सिर में भारीपन होने या अथवा आधाशीशी में इसके स्वरस या चूर्ण का नस्य लिया जाता है, जिससे बहुत छींके आती हैं और आराम मिलता है।

२८०—सादिमोदी

Emilia sonchifolia, Dc.

इसके न्यूनाधिक चिकने, स्वावलम्बी (कभी-कभी प्रसरी) क्षुप प्रायः १२-२० इञ्च ऊँचे होते हैं। मूल के पास निकले हुए पत्र-गुच्छ की पत्तियाँ आकार में वीणावत् पक्षवत्-खण्डित, और ३-४ इञ्च लम्बी और ऊपर के काण्ड पत्र संख्या में कम, प्रासवत् या आयताकार-प्रासवत् और पार्श्वकर्णायत होते हैं। मुण्डक के सभी पुष्प गुलाबी, नालाकार और उभय-लिंग होते हैं। अधःपत्रावलि भी नालाकार और अग्र पर ८-१० दाँतों वाली होती है। पुष्प इसके भीतर ही रहते हैं। फलों के तैयार होने पर अधःपत्रावलि के पत्र एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। जोते बोये खेतों में इसके क्षुप प्रायः प्रान्त में सर्वत्र मिलते

हैं, इसमें स्वेदजनन गुण होता है। यकृत विकारों में इसका उपयोग बहुत ही लाभदायक होता है। पंचांग का फाँट ज्वर में और पत्रस्त्रस नेत्राभिष्यंद तथा रतौंधी में आँख में छोड़ा जाता है।

२८१—ऊँटकटेरा, उत्कण्ठक

Echinops echinatus, Roxb.

ऊँटकटेरा १-२ फीट ऊँचा, अनेक शाखाओं वाला, दृढ़ एकवर्षायु और श्वेताभ होता है। काण्ड द्विविभक्त, पत्तियाँ आयताकार परन्तु पक्षवत्-खण्डित और उनके खण्ड लट्वाकार-प्रासवत्, लहरदार धार वाली और अग्र तथा धार पर तीक्ष्ण कंटकाँ से युक्त होती हैं। अधर तल पर वे तूल रोमश होती हैं। मुण्डक संयुक्त, गोलाकार और लम्बे तथा तीक्ष्ण काँटों से युक्त होता है। वास्तविक मुण्डक केवल एक-एक पुष्प के होते हैं, जिनके अधःपत्रावलियों में ६-८ पत्र होते हैं, जिनमें एक या दो अग्र पर कण्टकित होते हैं। ऐसे सभी मुण्डक मिलकर एक गोलाकार, १-२ व्यास इञ्च वाला बड़ा संयुक्त मुण्डक बनाते हैं, जिनके नीचे तीन कंटकित पत्रों की एक अतिरिक्त अधःपत्रावलि होती है।

हजारीबाग, बिहार तथा छोटा नागपुर आदि में प्रायः शुष्क भूमि में इसके क्षुप होते हैं और इसे लोग कहीं-कहीं उड़ीसा और कहीं-कहीं गोखुला (काँटेदार होने के कारण) कहते हैं। इसे (पंचांग) ओषधिसंग्रह में दीपन, पौष्टिक मूत्रल और रक्त शोधक बतलाया है। शुक्र पतला हो जाने पर बीजों का प्रयोग होता है।

२८२—ब्रह्मदण्डी

Volutarella divaricata, Benth.

यह जमीन पर फैलने वाला, एकवर्षायु और दृढ़ क्षुप होता है, जिसके काण्ड द्विविभक्त नालीदार और कोनदार रहते हैं। पत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। वे अमृन्त,

१-२ इञ्च या इससे भी लम्बी, आयताकार या अभि-लट्वाकार अखण्ड, दन्तुर या खण्डित और खण्ड प्रायः लहरदार धार वाले होते हैं। मुण्डक लगभग १ इञ्च लम्बे बोलल के आकार के होते हैं। अधःपत्रावलि के बाहरी पत्र अग्रपर कंटकित, तीक्ष्ण अग्र बाहर के पत्रों में प्रायः टेढ़ा और भीतर के पत्रों में सीधा रहता है। मुण्डक के बाहरी पुष्प क्लीव-लिंग और एक चक्र में परन्तु भीतरी पुष्पों के आकार के ही होते हैं और सभी पुष्प प्रायः जामुनी रंग के होते हैं। पत्ती और फल दोनों के कंटकित होने के कारण (कण्ट पत्र फला—राज० नि०) इसे ब्रह्मदण्डी कहा जाता है। नदियों के किनारे रेतीली भूमि में और ऊसर भूमि में इसके क्षुप प्रायः होते हैं। ब्रह्मदण्डी नाम इस कुल की अलकई वनस्पतियों को ग्रन्थकारों ने दिया है। ब्रह्मदण्डी को प्रायः मज्जातन्तु के रोगों में उपयोगी माना जाता है।

२८३—अकल कोहड़ी

Tridax procumbens.

इस मृदुल क्षुप में मूल के पास से प्रायः कई काण्ड निकलते हैं, जो उत्थित प्रसरी होते हैं और १३ फीट तक लम्बे हो सकते हैं। इस पर पत्तियाँ अभिमुख, दूर-दूर पर निकली हुई, १-२ इञ्च लम्बी, दन्तुर या खण्डित रोमश तथा सूत्रमृन्त वाली होती हैं। पुष्पदण्ड १ फीट तक लम्बे, उर्ध्वमुख और पीले रंग के मुण्डक २-५ इञ्च व्यास वाले होते हैं। अधःपत्रावलि २५ इञ्च लम्बी और कई चक्रों में रहती है। यह बूटी परित्यक्त भूमि तथा चरागाहों में प्रायः सर्वत्र होती है। इस वनस्पति के सम्बन्ध में श्री पं० रमावल्लभ चतुर्वेदी द्वारा सचित्र आयुर्वेद में (अगस्त १९५१ तथा अगस्त १९५२) दो लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनमें गुणों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। वर्गाधर्म के अनुसार इसमें रक्त संग्राहक गुण होना स्वाभाविक है। रक्त-स्राव शोधयुक्त व्रणादि में इसका उपयोग होता है। मेरी

सम्मति में कोठियाछाल और अकलकोहड़ी दोनों नाम इसी वृत्ती के हैं।

२८४—वनगोभी

Launaea.

वनगोभी की दो जातियाँ इस प्रान्त में होती हैं। इनमें दूध होता है। मूल के समीप पत्तियों का गुच्छा होता है। पत्तियाँ प्रायः पक्षवत्—खण्डित रहती हैं और उनके मध्य में वह काण्ड निकलता है, जिसपर मुण्डक होते हैं। मुण्डक के पुष्प समानलिंग और जिह्वाकार होते हैं। इसका पंचांग शीतल, स्नेहन, ग्राही और स्तन्यजनन होता है। रांची के पास इसकी एक जाति की बहुत छोटी-छोटी वनस्पतियाँ खेतों में पाई जाती हैं, जिनके मूल बहुत लम्बे होते हैं। स्तन्यजनन के रूपमें इनका विशेष उपयोग होता है। इसे वहाँ दूधराज कहते हैं। इसके साथ स्याह जीरा, वरगद का वाँदा, काँटा चौलाई और उड़द की दाल सबको सिझाकर दूध बढ़ाने के लिये दिया जाता है।

२८५—कुलकी अन्य वनस्पतियाँ

- (१) सूरजमुखी *Helianthus annuus*, L.—एक प्रसिद्ध उद्यान पुष्प।
- (२) रामतिल या सरगुजा *Guizotia abyssinica*, Cass—कृषिजन्य तेलहन।
- (३) गेंदा *Tagetes patula*.—उद्यान पुष्प।
- (४) कुष्ठम *Carthamus tinctorius* L.—कृषिजन्य तेलहन।
- (५) कासनी *Cichorium Endivia*—कृषिजन्य पुष्पवर्गीय औषध।

चित्रक-कुल

Plumbaginaceae

२८६—चित्रक

Plumbago zeylanica, L.

चित्रक के छोटे-छोटे गुल्म (गुल्मक) होते हैं। शाखा-काण्ड हरे और रेखायुक्त तथा पत्तियाँ प्रायः ३-४ इञ्च लम्बी लट्वाकार या आयताकार-लट्वाकार होती हैं। फलकमूल क्रमशः संकुचित होकर एक छोटे कोशाकार वृन्त से युक्त रहता है। पुष्पमञ्जरी अग्र्य, पुष्प अवृन्त काण्डज, श्वेत, लम्बे आभ्यन्तरनाल वाले और बाह्यकोश सवृन्त एवं चिपचिपी (श्लेष्मोत्पादक) ग्रन्थियों से ढका हुआ रहता है। चित्रक के पौधे प्रायः पहाड़ी चट्टानों के बीच में (सिंगभूमि, रांची, मानभूमि, राजमहल आदि) पाये जाते हैं। इसका मूल एक उत्तम दीपन-पाचन औषध द्रव्य है और अनेक रोगों में इसका उपयोग होता है। इसकी एक दूसरी जाति *P. rosea*, L. होती है, जिसमें गुलाबी रंग के पुष्प आते हैं। नीले पुष्पों की तीसरी जाति *P. copensis*, Thunb. भी होती है, जो विदेशी वनस्पति है।

जोंकमारी-कुल

Primulaceae

२८७—जिघना

Anagallis arvensis, L.

इसके क्षुप स्वावलम्बी अथवा किंचित प्रसरी होते हैं। काण्ड चतुष्कोण, पत्तियाँ आमने-सामने, अवृन्त, अखण्ड, विन्दुकिट, लट्वाकार, आयताकार-लट्वाकार या प्रासवत् और प्रायः ५-८ इञ्च बड़ी होती हैं। पुष्प पत्रकोणीय, एकाकी, नीले रंग के और उनके वृन्त पतले होते हैं, जो फल तैयार होने पर अग्र पर टेढ़े हो जाते हैं। आभ्यन्तर कोश चक्राकार, फल गोल और टोपीस्फुटन विधि से फटता है।

(क्रमशः)



देशी औषध-परिषद् का उद्घाटन

ग्वालियर, ता० ४-३-५३। मध्यभारत के स्वास्थ्य मन्त्री डा० प्रेम सिंह राठौर ने आज यहां "देशी औषध परिषद्" के उद्घाटन के अवसर पर भाषण देते हुए कहा—

मध्यभारत में आयुर्वेद के इतिहास में आज का यह अवसर अत्यधिक महत्वपूर्ण है, कि हम सब "मध्यभारत देशी औषध परिषद्" के उद्घाटन समारोह के अवसर पर यहां एकत्रित हुए हैं।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति, विश्व की अन्य समस्त सभ्यताओं और संस्कृतियों की जननी मानी जाती है, उनकी महत्ता उनके अत्यधिक विकास में निहित है। इसी प्रकार भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद भी, विश्व की प्रचीनतम चिकित्सा-पद्धतियों में से एक है। एक समय था जब वह विकास के उच्चतम शिखर पर थी। अपने उत्कर्ष काल में आयुर्वेद स्वस्थ व्यक्ति की स्वास्थ्य रक्षा एवं रोगों के रोग परिमोक्ष में सफल चिकित्सा शास्त्र रहा है। उस समय में यह काय चिकित्सा, शल्य-शालाक्य आदि ८ अंगों में विभक्त था और अग्नि-कर्म, क्षार कर्म, पंच कर्म जैसी चिकित्सा विधियाँ प्रचलित थीं, जिसके चमत्कारिक प्रभाव आज केवल पुस्तकों तक ही सीमित रह गये हैं। इस प्रकार आयुर्वेद का रसायन शास्त्र जब चरम उत्कर्ष की स्थिति में था, तब धातुओं की द्रुतियाँ निर्माण करने, पारवर्द्ध कर देने जैसी प्रक्रियाएँ विद्यमान थीं, जिनका आज लोप हो जाने से उक्त बातों का असम्भव कहकर छोड़ दिया जाता है। किन्तु, यह सब उस कठोर परिश्रम अध्यवसाय और लगन का ही परिणाम था, जिसका धीरे-धीरे लोप हो गया।

उत्थान और पतन, विकास और ह्रास संसार के शाश्वत नियम हैं। मेरे मत में, जैसे-जैसे हमारी लगन और हमारा अध्यवसाय कम होता गया वैसे-वैसे ही आयुर्वेद का भी ह्रास हुआ। किन्तु आश्चर्य इस बात पर है कि बौद्धकाल में, जब कि हमारा देश सुख-सम्पत्ति से पूर्ण था, आयुर्वेद की अवनति प्रारंभ हो चुकी थी। सम्भवतः इसका कारण यही कहा जायगा कि उस काल में शल्यकर्म महान् अपराध और पाप समझा जाने लगा हो। किन्तु उस काल के पश्चात् तो निश्चय ही ऐसी परिस्थितियाँ बनीं जिनमें आयुर्वेद की अवनति के कारण दिखाई देते हैं। मुगलों के आक्रमण के समय में तथा उनके आधिपत्य काल में, जैसा कि इतिहासज्ञ बताते हैं समस्त भारतीय साहित्य जिसमें आयुर्वेदिक साहित्य भी सम्मिलित है, नष्ट किया गया। साथ ही उस काल में यूनानी चिकित्सा को स्थापित करने के प्रयत्न हुए। उनके बाद अंग्रेजों के शासन काल में भी आयुर्वेद को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इसके विपरीत एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। गिरावट यहाँ तक आई कि जो व्यक्ति आयुर्वेद से अपनी आजीविका अर्जित करते थे, वे भी इसकी प्रगति और इसमें नवीन अन्वेषणों और अनुसंधान की ओर से उदासीन हो गये और अकर्मण्य बन गये। गुरु परम्परा से प्राप्त ज्ञान को ही वे पूर्ण ज्ञान मानने लगे, जिससे प्रगति का प्रश्न तो दूर रहा, आयुर्वेद की उल्टी अवनति ही हुई।

सदियों के घात-प्रतिघातों के पश्चात् आज हम स्वतंत्र हैं और अपने भाग्य का निर्णय करने तथा प्रगति पथ पर अग्रसर होने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देशवासी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने देश के उस चिकित्सा विज्ञान की प्रगति-के लिये प्रयत्न करें, जो सदियों की विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी आज तक जीवित रह सका और जिससे ८० प्रतिशत जनता की आज भी किसी न किसी रूप में सेवा हो रही है।

यहाँ पर मध्यभारत शासन द्वारा आयुर्वेद के लिये किये गये कार्यों पर भी विचार कर लेना उचित होगा। मध्य भारत निर्माण होने के पूर्व सम्पूर्ण २२ राज्यों में मिलाकर कुल ११४ शासकीय आयुर्वेदिक औषधालय थे। इनके अतिरिक्त ग्वालियर में एक आयुर्वेदिक विद्यालय और एक आयुर्वेदिक फार्मसी, ये दो संस्थाएँ और थीं, किन्तु

ये सभी संस्थाएँ उपयुक्त साधनों से सम्पूर्णतया सम्पन्न नहीं थीं। मध्यभारत निर्माण होने के पश्चात् शासन का ध्यान इन संस्थाओं को पूर्ण साधन सम्पन्न बनाने तथा अधिक संस्थाएँ बनाने की ओर गया जिसके परिणाम स्वरूप १३७ नवीन आयुर्वेदिक औषधालय खोले गये हैं और इनमें लघु शल्यकर्मों के साधन प्रदान किये गये। आयुर्वेदिक विद्यालय को आयुर्वेदिक कालेज में परिणत करके इंडियन मेडीसिन बोर्ड यू० पी० से बी० आई० एम० एस० डिग्री के लिये सम्बद्ध कराया गया। कालेज से सम्बद्ध एक आयुर्वेदिक आतुरालय की भी स्थापना की गई। आयुर्वेदिक फार्मसी का कार्य भी अब बहुत विस्तृत कर दिया गया है। विक्रय की औषधियाँ निर्माण करने के अतिरिक्त २५१ आयुर्वेदिक औषधालय को लगने वाली औषधियाँ तथा ३८२६ मेडीसिन चेष्टों की औषधियों का निर्माण करने व सप्लाय करने का कार्य भी फार्मसी द्वारा सम्पन्न होता है। इतने बड़े हुए कार्य को शीघ्रता से व समय पर पूर्ण करने के लिये फार्मसी को दवा कूटने, पीसने, छानने व गोलियाँ बनाने आदि की विद्युतचलित मशीनों से युक्त किया गया है।

मध्यभारत निर्माण से पूर्व आयुर्वेद का सम्पूर्ण बजट १४६१६२ रुपये वार्षिक था, जो कि अब बढ़कर ८०८६२० रुपये हो गया है। राज्य में आयुर्वेदिक संस्थाओं के उचित निरीक्षण व प्रगति के लिये एक सुपरिण्टेण्डेंट आयुर्वेदिक डिस्पेंसरीज, तीन आयुर्वेदिक इन्स्पेक्टर और मेडीसिन चेस्ट इन्स्पेक्टर के पदों का निर्माण हुआ है। भविष्य में इस प्रकार के अन्य आवश्यक पदों के निर्माण की भी सम्भावना है। मध्यभारत शासन द्वारा आयुर्वेदोन्नत्यर्थ देशी औषधि परिषद की स्थापना आज सम्पन्न हो रही है।

यद्यपि मध्य भारत शासन की संरक्षता में आयुर्वेद ने संतोषजनक प्रगति की है तथापि इस परिषद से यह आशा की जाती है कि वह शासन को आयुर्वेद के उत्कर्ष कार्य में योग्य मार्ग का प्रदर्शन करेगी ताकि आयुर्वेद का गौरव प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त हो।

अन्त में दो शब्द आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के विकास के हेतु कार्य करनेवालों से भी कहना चाहता हूँ किसी विज्ञान के सदा उपयोगी बने रहने के लिये यह आवश्यक है कि वह समय के साथ प्रगति करता चले। इसलिये यह अनिवार्य है कि आयुर्वेद के लुप्त साहित्य का

संग्रह किया जाय तथा उस साहित्य के नष्ट-भ्रष्ट अंशों का अनुसन्धान और प्रयोगों द्वारा पूर्ण किया जाय। आयुर्वेद के पुनरुत्थान के लिये यह भी आवश्यक है कि चिकित्सा शास्त्र में आज तक की उन्नति का आयुर्वेद में समावेश किया जाय और उसे सार्वजनिक लाभ के योग्य बनाया जाय। इसके साथ ही आयुर्वेद की लुप्त निश्चित प्रभावकारी औषधियों और चिकित्सा विधियों की खोज कर उन्हें चिकित्सा शास्त्रज्ञों के उपयोग के लिये उपलब्ध किया जाय। आयुर्वेद के शिक्षण और चिकित्सा व्यवसाय को सुव्यवस्थित करने के लिये मध्यभारत देशी औषधि परिषद की स्थापना की गई है। मुझे आशा है कि परिषद अपने कार्यों में पूर्णतः सफलता प्राप्त करेगी।

इस अवसर पर मैं सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट आफ रिसर्च इन इन्डीजिनस मेडीसिन जामनगर के डायरेक्टर डा० प्राणजीवन मेहता को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे निमन्त्रण को स्वीकार कर इस समारोह में सम्मिलित होने का कष्ट किया। मुझे विश्वास है कि आपके विचारों से आयुर्वेद का उत्कर्ष चाहनेवालों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलेगा।

इन शब्दों के साथ मैं मध्यभारत देशी औषधि परिषद को उद्घाटित घोषित करता हूँ।

रक्तचापके उपचार में 'सर्पगन्धा पर' परीक्षण

बोस्टन (मैसेच्यूसेट्स), २७ फरवरी। यहाँ के डाक्टर रक्तचाप के इलाज में एक नई दवा का प्रयोग कर रहे हैं।

यह नई दवा एक प्राचीन भारतीय औषधि और कृत्रिम रसायन पदार्थों को मिलाकर तैयार की गई है।

'मैसेच्यूसेट्स मेमोरियल हास्पिटल' के दो डाक्टरों ने बताया है कि इस भारतीय औषधि का नाम 'सर्पगन्धा' (रोबोल्फिया सर्पेन्टीना) है। यह दवा रोगी के रक्तचाप को कई महीनों तक नहीं बढ़ने देती। इसके आलावा यह अनिद्रा, सिरदर्द और स्नायु-दौर्बल्य से पीड़ित रोगियों को भी लाभ पहुँचाती है। कम से कम १०० वर्षों से भारतीय चिकित्सक रक्तचाप, बेहोशी, अनिद्रा और गर्मी रोगियों को यह औषधि देते रहे हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सकों की प्रगति

श्री गाँधी आयुर्वेद सेवा कैम्प, धर्मार्थ चिकित्सालय लखीमपुर, उत्तर प्रदेश—इस चिकित्सालय द्वारा गत पांच वर्षों से जनता की निस्वार्थ भाव से चिकित्सा होती आ रही है, सेवा कैम्प द्वारा जिले के ग्रामों में नेत्र शिविरों का आयोजन कर नेत्र में होने वाले रोगों की चिकित्सा तथा आपरेशन किये जाते हैं। एवं अन्य शारीरिक रोगों की भी चिकित्सा समुचित रूप से की जाती है, इस वर्ष भी चिकित्सालय की तरफ से दो नेत्र शिविर स्थापित कर बहुत से नेत्र रोगियों की चिकित्सा तथा नेत्र के सफल आपरेशन किये गये। गत तीन वर्षों से सेवा कैम्प को उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही है, शेष भार इसके संचालक श्री डा० अम्बिका प्रसाद मिश्र डी० आई० एम० एस० नेत्र विशेषज्ञ आयुर्वेदाचार्य स्वयं वहन करते हैं। जिन्होंने अपने निःस्वार्थ सेवा भाव से जिले की जनता को प्रभावित कर रखा है। आप आयुर्वेद सेवी नेत्र विशेषज्ञ हैं जनता को इस धर्मार्थ चिकित्सालय से लाभ उठाना चाहिये। यदि उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद प्रेमी चिकित्सक अपने यहाँ नेत्र शिविर कराना चाहें तो उपरोक्त पते से पत्र व्यवहार करें।

जगत नारायण धर द्विवेदी
आफिस मंत्री

—:—:—

श्वास-चिकित्सा शिविर

सीकर (डाक से)। गोविन्द गढ़ मलिकपुर के पास धोबलाई नामक ग्राम में आयोजित श्वास-दमा चिकित्सा शिविर सम्पन्न हो गया। आसपास के इलाके से काफी संख्या में बीमार आये। आयोजकों की ओर से ६५० बीमारों को औषधि प्रदान की गई। १०० बीमारों का पथ्यादि का प्रबन्ध भी किया गया था। इन बीमारों को ३-४ रोज तक रख कर व औषधि देकर छुट्टी दे दी गई थी।

माधव सेवा समिति सीकर के प्रधान चिकित्सक व इस प्रान्त के प्रसिद्ध वैद्य श्री प्रह्लादराय जी ने श्वास के बीमारों को निःशुक्ल औषधि वितरित की। इस अद्वितीय औषधि का वैद्य जी ने काफी श्रम करके आविष्कार किया है। औषधि निरापद है। इस दवा से कितना ही पुराना श्वास क्यों न हो निश्चित लाभ पहुंचता है। शिविर

में जिन १०० बीमारों को यह औषधि दी गई थी उनसे बातचीत करने पर पता चला कि उनमें से अधिकांश को निश्चित रूप से फायदा हुआ है। कई बीमारों की तो दवा लेने से पहले चलने-फिरने की भी स्थिति नहीं थी वे अब काफी स्वस्थ व प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। ज्यादातर रोगियों को ८-१० पुड़िया लेने के बाद फायदा हो जाता है। वैद्य जी पहले ३ रोज तक दवा के साथ पथ्य में बिना साग व नमक के जौ के आटे की रोटी खिलाते हैं अं गुनगुना पानी पिलाते हैं।

इस औषधि को सर्वविदित करने के लिये विचार किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्ता श्री ब्रह्मनारायण सोढाणी, बजाज भवन सीकर से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

—:—:—

जिला वैद्य सभा लखीमपुर-खीरी

खीरी जिला वैद्य सम्मेलन गोला गोकर्ण नाथ दिनांक ११ फरवरी को आयुर्वेद विभाग के उपसंचालक श्रीयुत दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी आयुर्वेदाचार्य उत्तर प्रदेश द्वारा जिला वैद्य सम्मेलन का उद्घाटन समारोह बड़ी सुन्दरता से सुसम्पन्न हुआ। गोला जाते हुये लखीमपुर स्टेशन पर जिला वैद्य सभा के प्रधान मन्त्री श्री अम्बिका प्रसाद जी नेत्र विशेषज्ञ की ओर से आपका भव्य स्वागत किया गया एवं चित्रादि लिये गये। गोला में सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की वैज्ञानिकता पर आपने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। और वैद्यों का ध्यान आयुर्वेद की वनौषधियों के अन्वेषण की ओर आकर्षित किया। जिला वैद्य सभा की तरफ से आपको अभिनन्दन समर्पित किया गया, पश्चात् अन्य वैद्यों के भाषणादि हुये। श्रीयुत पं० हरि प्रसाद जी डी० आई० एम० एस का बड़ी ही रोचक तथा गवेषणात्मक भाषण हुआ। पं० भगवती प्रसाद पांडे जी ने अपना स्वलिखित लेख पढ़कर सुनाया, आपके लेख की सुन्दरता पर श्री युत अम्बिका प्रसाद जी नेत्र विशेषज्ञ ने एक रजत पदक प्रदान किया। पश्चात प्रधान मन्त्री जी ने जिला वैद्य सभा की वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई और वैद्यों के संघटन पर प्रकाश डाला। पश्चात जिला वैद्य सभा का निम्न नवीव निर्वाचन किया गया। एवं सम्मेलन में आये हुए वैद्यों

को धन्यवाद देते हुये सम्मेलन का कार्यक्रम समाप्त किया गया।

सभापति—श्री पं० पुरुषोत्तम देव शुक्ल वैद्य शास्त्री
उप सभापति—श्री पं० गिरधारी लाल शर्मा वैद्य वाचस्पति

” ” श्री पं० रामनारायण शर्मा वैद्य
प्रधान मन्त्री—श्री अम्बिका प्रसाद मिश्र नेत्र विशेषज्ञ
डी० आई० एम० एस०

उप मंत्री—श्री पं० भगवती प्रसाद पांडे आयुर्वेद रत्न
” ” श्री पं० हरिप्रसाद डी० आई० एम० एस०
कोषाध्यक्ष—श्री पं० लालता प्रसाद तिवारी आयुर्वेद रत्न
निरीक्षक—श्री पं० श्याम बिहारी लाल शुक्ल वैद्य शास्त्री
एवं १२ सदस्यों की एक कार्य कारिणी का निर्वाचन
किया गया। —मन्त्री

—:०:—

वैद्यों तथा हकीमों की योग्यता

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा सरकारी राज्य सहायता प्राप्त और स्थानीय निकायों के औषधालयों और हकीमों की योग्यताओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूची बनायी गयी है।

१. उत्तर प्रदेश में विधिवत् स्थापित किसी विश्व-विद्यालय की आयुर्वेद अथवा यूनानी तिब्बती की डिग्री।

२. उत्तर प्रदेशीय बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिशन से सम्बद्ध कालेजों को बी० आई० एम० एस० या डी० आई० एम० एस० की डिग्रियां।

३. आयुर्वेदिक कालेज गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय जिला सहारनपुर की आयुर्वेदालंकार की उपाधि।

आर्थिक सहायता योजना के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने के लिये आवश्यक योग्यताएँ।

१. आयुर्वेदिक तथा यूनानी तिब्बती कालेज देहली, आयुर्वेदिक महा विद्यालय अहमदनगर, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज अमृतसर, सनातन धर्म आयुर्वेदिक कालेज लाहौर, गवर्नमेंट कालेज पटना, गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज मैसूर, आयुर्वेदिक कालेज गुरुकुल बृन्दाबन जिला मथुरा, महाराजा आयुर्वेद कालेज, जयपुर, गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज मद्रास, अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय कलकत्ता, बनवारी लाल आयुर्वेदिक कालेज, पटियाला, अर्जुन आयुर्वेद विद्यापीठ बनारस, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली के आयुर्वेद

विद्यापीठ, दिल्ली के आयुर्वेद या यूनानी सम्बन्धी अन्तिम डिप्लोमा।

२. ललित हरी आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत का 'वैद्यराज' डिप्लोमा।

३. ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार का वैद्य शास्त्री या आयुर्वेद शास्त्री का डिप्लोमा।

४. बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झांसी का औषधि तथा शल्य चिकित्सा में आचार्य का डिप्लोमा।

५. तकिमुलुल तिब्ब कालेज लखनऊ का माहिरे जराहात का डिप्लोमा।

—:०:—

पेनिसिलीन का प्रयोग कई स्थिति में घातक

बम्बई, २६ मार्च। पेनिसिलीन के आविष्कारक एवं नोबेल पुरस्कार विजेता सर अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने आज यहां कहा कि जब रोगी में रोग निवारण की आन्तरिक क्षमता के अत्यन्त क्षीण हो जाने के लक्षण परिलक्षित होने लगे उस समय चिकित्सकों को पेनिसिलीन के प्रयोग में खूब सावधानी बरतनी चाहिए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का एक चिकित्सक मिशन भारत आया हुआ है। सर अलेक्जेंडर उसी के एक सदस्य हैं।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक गवेषणा परिषद द्वारा बम्बई में आयोजित जीवाणु विनाशक तत्वों के सम्बन्ध में ३ दिवसीय गोष्ठी में बोलते हुए सर अलेक्जेंडर ने उक्त तथ्य पर प्रकाश डाला और चिकित्सकों को सावधान किया। उन्होंने कहा कि पूर्व वर्णित रोगी के शरीर में यदि पेनिसिलीन की सुई दी जायेगी तो उसका परिणाम उसके लिए मारणात्मक हो सकता है।

उन्होंने आगे बताया कि अनुसंधानकर्त्ताओं को सदैव नवीन 'एन्टीबायोटिक' औषधियों के प्रयोग में अपेक्षाकृत अधिक सतर्क रहना चाहिए। जब चिकित्सक किसी रोगी पर 'एन्टीबायोटिक' औषधियों के मिश्रण का प्रयोग करने लगता है तब एक दूसरी समस्या उठ खड़ी होती है।

सर अलेक्जेंडर ने यह कहा कि मुझे इस बात की खुशी है कि अनुसंधानकर्त्ता अब पशुओं एवं वनस्पतियों पर भी पेनिसिलीन का प्रयोग करने लगे हैं जिसमें उनकी उत्पादन शक्ति बढ़ जाय एवं वे कीड़े-मकोड़ों द्वारा विनष्ट न हो सकें।

—:०:—

क० प्रताप सिंह तथा वैद्य ख्यालीराम जी द्विवेदी का झांसी में स्वागत समारोह

झांसी, विगत ७ मार्च को आयुर्वेद जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान क० प्रताप सिंह तथा वैद्य ख्यालीराम जी द्विवेदी का झांसी में शुभागमन हुआ। स्थानीय वैद्य-हकीम-परिषद् तथा श्री बंछनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा आप लोगों का बड़ी धूम धाम से स्वागत समारोह मनाया गया तथा अभिनन्दन पत्र सादर समर्पित किये गये।

आरम्भ में श्री रामगोपाल शास्त्री के निवास स्थान पर स्थानीय वैद्य हकीम परिषद् की सभा द्वारा आयुर्वेद महारथियों का स्वागत किया गया। बंछराज पं० ख्याली राम द्विवेदी ने विनम्र भाषण में स्वागत का उत्तर देते हुए आयुर्वेद जगत की आधुनिक समस्याओं को उपस्थित किया। आपने उस विषय पर विस्तृत भाषण दिया।

पं० ख्याली रामजी द्विवेदी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की आयुर्वेद सस्वन्धी सेवाओं तथा औषधि निर्माण एवं कार्य पद्धति की सराहना करते हुए संतोष प्रकट किया। आपने कहा कि झांसी आयुर्वेदिक कालेज द्वारा जो हम आशा करते थे वह सफलीभूत नहीं दिखाई देती। आपने बताया कि जो स्नातक यहाँ से निकले हैं वे आयुर्वेद की महत्ता और व्यवहार से कोरे अनभिज्ञ हैं। हमें उच्चकोटि के स्नातक उत्पन्न करना चाहिये।

इसके पश्चात् सभा के सभी सदस्य श्री बंछनाथ आयुर्वेद भवन गए जहाँ पर राजवैद्य पं० ख्यालीराम और कविराज श्री प्रताप सिंह रसायनाचार्य को अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये, जो ग्रन्थत्र प्रकाशित है।

कविराज श्री प्रताप सिंह ने अपना भाषण देते हुए कहा कि आयुर्वेद का उद्धार पूर्व और पश्चिम के चिकित्सा सिद्धान्तों के समीकरण से होगा।

आपने कहा कि इस कार्य को कम से कम ८०० रोगियों का एक अस्पताल बनाकर ही कर सकते हैं। वैद्य लोग इस प्रयोगशाला में अनेकों चमत्कार दिखा कर संसार के सामने उपस्थित करें। संसार में जो परीक्षण हो रहे हैं उनका भी परीक्षण कर संसार के चिकित्सक समाज के सामने अपना अभिप्राय प्रकट करें।

आज संसार परीक्षण शालाओं को महत्त्वपूर्ण दृष्टि से देखता है। ऐसे ही परीक्षण चरक के उपदेश द्वारा हम

आयुर्वेदिक जगत् में करेंगे। तब हमारे शास्त्र का प्रभाव जगत् के सामने पड़ेगा इसी कार्य को सरल बनाने के लिये नया पाठ्यक्रम तैयार हम कर रहे हैं।

आपने कहा कि देश के चिकित्सा शासन को हाथ में लेने के लिए सर्जरी का पूर्ण ज्ञान परमावश्यक है। इसको बढ़ाने के लिये युवकों को पूरा परिश्रम करना चाहिए। नागरिकों को अत्यन्त परिश्रम कर अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करना चाहिये।

कविराजजी के सारगर्भित भाषण के पश्चात् श्री बंछनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड की ओर से जलपान की व्यवस्था की गई। उपरोक्त विद्वानों के भाषणों की वैद्य, हकीमों द्वारा काफी सराहना की गई।

आयुर्वेद जगत् के दोनों महारथियों ने श्री बंछनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड का निरीक्षण किया और औषधि निर्माण तथा आयुर्वेद की शास्त्रोक्त पद्धति को देख कर प्रसन्नता प्रकट की।

झुंझनू जिला वैद्य सम्मेलन का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन

झुंझनू जिला वैद्य सम्मेलन का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन नूवा में श्री बिरंची लालजी शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए आचार्य नित्यानन्द जी ने कहा कि आज के चिकित्सक रोगी के भावी स्वास्थ्य को ध्यान में न रख कर केवल लक्षणों की चिकित्सा करते हैं, क्योंकि आज का रोगी आहार-विहार के संयम से दूर रह कर स्वास्थ्य को बाजार की साधारण वस्तु के समान खरीदना चाहता है, इसलिये पाश्चात्य चिकित्सक नित्य नई औषधियों का आविष्कार करने में लगे हुए हैं।

आपने कहा कि हमारी सरकार भी ऐलोपैथी की इस चकाचौंध में फँस गई है। यही कारण है कि राजस्थान की अलग-अलग रियासतों में आयुर्वेद के लिये जितना बजट था, वह सम्मिलित राज्य में बढ़ने के बजाय घटता जा रहा है। ऐसी स्थिति में वैद्यों की कठिन साधना की जरूरत है, यदि वैद्य गरीबों की सेवा का व्रत लें तो आयुर्वेद अजेय है।

अन्त में आचार्य जी ने यह दृढ़ विश्वास प्रकट किया

कि एक दिन आयुर्वेद ही प्राकृतिक चिकित्सा के सहयोग से हमारी स्वास्थ्य समस्या का हल करेगा।

सम्मेलन के सभापति आयुर्वेद-वाचस्पति विरंची-लालजी शास्त्री ने अपने भाषण में शेखावाटी की जनता की आयुर्वेद के द्वारा रोग मुक्त करने के उद्देश्य से पंचवर्षीय-स्वावलम्बी स्वास्थ्य योजना प्रस्तुत की। इसके अनुसार प्रत्येक वंश अपने प्रदेश में के ५०० परिवारों की चिकित्सा का उत्तरदायित्व लेगा। शास्त्री जी ने झूझनू डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के द्वारा आयुर्वेद के प्रति वर्तमान जानेवाली नीति की तीव्र निन्दा की।

सचित्र आयुर्वेद के ग्राहक बनाने की प्रतिज्ञा

सचित्र आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध लेखक श्री वैद्य प्रभुभाई भक्त ने सचित्र आयुर्वेद के ५१ नये ग्राहक बनाने की प्रतिज्ञा की है और तदनुसार ग्राहक बना कर भेजना भी प्रारम्भ कर दिया है। सचित्र आयुर्वेद के अन्य प्रेमी भी उनका अनुकरण करेंगे, ऐसी आशा है।

—वैद्य रणजितराय
०७५४३३०—
हैदराबाद राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
का वार्षिकोत्सव

हैदराबाद, १९ फरवरी। नि० भा० आ० महासम्मेलनाध्यक्ष पं० शिवशर्मा जी २२ फरवरी को हवाई जहाज से हैदराबाद पधारे। हवाई अड्डे पर सर्व श्री कविराज पुष्पोत्तम देव मुलतानी, पं० गया प्रसाद शास्त्री, श्री वंश ईश्वरीलाल, मन्त्री हैदराबाद आयुर्वेद मण्डल एवं निखिल हैदराबाद वंश सम्मेलन के अधिकारी बर्ग और श्री हरिनारायण बास आदि ने आपका पुष्पमालाओं से स्वागत किया। स्वागत के बाद आप श्री मुलतानी जी के साथ स्वास्थ्य मन्त्री श्री फूलचन्द गांधी के निवासस्थान पर चले गये।

सायंकाल ६ बजे राजकीय आयुर्वेद व यूनानी महाविद्यालय एवं चिकित्सालय का आपने सभापतित्व किया। प्रारम्भ में प्रिंसिपल डॉ० आशाशानन्द पंचरत्न ने माननीय सभापति जी का परिचय कराया। उसके बाद डॉ० एल० खत्री इन्स्पेक्टर जनरल इण्डियन मेडिसिन ने आयुर्वेद व यूनानी विभाग का कार्य विवरण पढ़ कर सुनाया; जिसका संक्षिप्त सार यह था कि आयुर्वेद का बजट ४॥ लाख

एवं यूनानी का १४ लाख के लगभग है। आयुर्वेद चिकित्सालय में रोगी शय्याओं की संख्या २२ से ४८ कर दी गयी है। चिकित्सालय में एक ऐसा रजिस्टर रखा गया है कि जिसमें रोगियों का निदान आयुर्वेद व एलोपैथिक दोनों चिकित्सा पद्धतियों की दृष्टि से लिखा जाता है। रोगी के अवकाश ग्रहण करने पर उसके परिणाम का रिकार्ड एक एलोपैथिक डॉक्टर रखते हैं ताकि वर्ष के अन्त में यह पता लगाया जा सके कि किन-किन रोगों में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति विशेष उपयुक्त साबित हुई है। गांवों में ५२ औषधालय तथा ४८ ग्राट इनरोड औषधालय खोले गये हैं।

इसके बाद विभिन्न लेखों की प्रतियोगिताओं में विजेता विद्यार्थियों को श्री माननीय फूलचन्द जी गांधीजी के कर कमलों द्वारा विभिन्न पारितोषिक वितरण किये गये। पारितोषिक वितरण के बाद स्वास्थ्य मन्त्री महोदय ने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण में यह घोषणा की कि राज्य सरकार आयुर्वेद की प्रगति के लिये जो कुछ कर रही है, वह पक्षपातपूर्ण नीति नहीं है। बल्कि निजाम राज्य में उसकी जितनी उपेक्षा की गयी थी, उसका परिणाम है। स्वास्थ्य मन्त्री बनने के बाद मैंने इस चिकित्सा पद्धति को जो महत्व दिया है, वह उचित व समय की मांग के अनुरूप है। क्योंकि गांवों में हमें इसी चिकित्सा पद्धति से ग्रामिणों की सेवा में सहायता मिलती है। सरकार यह चाहती है कि यूनानी व आयुर्वेद में परस्पर स्पर्धा हो, किन्तु यह दोनों ही पद्धतियों के लिये हानिकारक सिद्ध होगी। इसी दृष्टि से दोनों विभागों को एक कर 'इण्डियन मेडिसिन' नाम रखा गया है। दोनों संस्थाओं का सम्मिलित उत्सव होने पर आपने हर्ष प्रकट किया।

इसके बाद पं० शिवशर्मा जी का सवा घंटे तक विद्वत्पूर्ण भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने ने आयुर्वेद की प्राचीनता एवं गुणग्राहितापूर्ण रूप से विकसित थी, उसका इतिहास सुनाया और उसके ह्रास एवं अवनति के ऐतिहासिक कारणों का सुन्दरता के साथ विवेचन किया। अन्त में आयुर्वेद एलोपैथी और होम्योपैथी को भी अपने अन्दर आत्मसात कर सकता है इसका युक्तियुक्त प्रमाण दिया और सरकार से अपील की कि इस चिकित्सा पद्धति को पनपने का पूर्ण अवसर तथा प्रोत्साहन दे।

इस अवसर पर शहर के प्रसिद्ध डॉक्टर, हकीम, वंश अन्धरी संख्या में उपस्थित थे।

❀ श्री ❀

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—

श्रीयुत् वैद्यराज पं० ख्यालीरामजी द्विवेदी

आयुर्वेदमार्तण्ड आयुर्वेदाचार्य राजवैद्य, इन्दौर (मध्यभारत)

माननीय पण्डित जी ?

हम आपका झाँसी में पधारने का अभिनन्दन करते हैं। आपने अपने जीवनकाल में आयुर्वेद की समुन्नति के लिए मध्यभारत में जो सेवाएँ की हैं वे अनुकरणीय हैं।

आपका तेजस्वी ब्राह्म्य जीवन, आपका भव्य प्रभावशाली मुखमण्डल और आपका आदर्श रहन-सहन और व्यक्तित्व इस समय के वैद्य समाज के लिए सर्वथा समादरणीय है।

हम झाँसी निवासी वैद्य-हकीम आपको अपने मध्य में पाकर गौरव का अनुभव करते हैं और आपका पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् की रीति के अनुसार अभिनन्दन-पत्र समर्पण कर कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं।

आशा है आप इसे स्वीकार कर अनुग्रह करेंगे।

हम हैं आपके:—

बुन्देलखण्ड वैद्य हकीम परिषद के सदस्यगण तथा
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कार्यकर्ता संघ

* श्री *

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में सम्माननीय श्रीयुत्—

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य

प्रिन्सिपल—राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज इन्दौर।

आदरणीय महोदय !

स्वतन्त्रता संग्राम की अमर सेनानी श्री लक्ष्मीबाई की इस पुनीत नगरी में आज हम आयुर्वेद के सुयोग्यतम सेनानी आपको अपने मध्य में पाकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं आपने आयुर्वेद विज्ञान की जो महान् सेवाएँ की हैं उनके उपलक्ष्य में आपका अभिनन्दन करते हुए हम अपने आपको गौरवान्वित समझ रहे हैं।

आचार्य वर्य !

आपने अपने वैद्य जीवन के प्रारम्भ काल से ही निरन्तर आयुर्वेद-विज्ञान की शिक्षा का जो अमूल्य दान किया है वह सराहनीय है। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी जैसे श्रेष्ठतम शिक्षा के क्षेत्र में आपने अपने स्नेहसुधायुक्त ज्ञानवारि से छात्रों के कोमल हृदयों में आयुर्वेद शिक्षा का जो बीज वपन किया है उससे देश के सुयोग्य विद्वान् और कुशल चिकित्सक वैद्यों की गणना में जो अपूर्व वृद्धि हुई है तथा आयुर्वेद-जगत् में फैले हुए अशिक्षा रूपी अन्धकार नष्ट हुआ है। आपने ज्ञान के आदान-प्रदान का जो व्रत ले रक्खा है वह समस्त वैद्य समाज के लिए अनुकरणीय आदर्श है।

आयुर्वेद कर्णधार !

आपने विदेशी शासन में उपेक्षित और हीन दशा में पड़े हुए आयुर्वेद विज्ञान को अपने सत्प्रयत्नों से सर्वप्रथम राजस्थान सरकार से राज्याश्रय प्राप्त करा कर आयुर्वेद विज्ञान का जो गौरव स्थापित किया है वह आयुर्वेद और वैद्य समाज के हित की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। समस्त वैद्य समाज इस श्रेष्ठ कार्य के लिए आपका आभारी है।

रसायन विशेषज्ञ !

आपने आयुर्वेदिक द्रव्यगुण शास्त्र और रसायन शास्त्र के गूढ़ प्रयोगों को कठिन परिश्रम से खोजकर उनका परीक्षण (अनुसन्धान) कर अपने अनुभवपूर्ण ज्ञान को वैद्य समाज को मुक्त हृदय से वितरण किया है उससे वैद्य समाज का महान् उपकार हुआ है और वह सच्ची शास्त्र सेवा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

भिषक चूड़ामणे !

आपने रोग पीड़ित मानव समाज के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्न किया है। अतः समस्त जगत् में आपके यश की सौरभ व्याप्त हो रही है। इससे आयुर्वेद-विज्ञान की प्रतिष्ठा में अपूर्व वृद्धि हुई है। अन्त में हम एक बार विशेष रूप से पुनः आपका अभिनन्दन कर अपने को धन्य समझते हैं।

हम हैं आपके :—

भासी
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
दिनांक ७—३—५३

श्री बुन्देलखण्ड वैद्य हकीम परिषद के सदस्य
और श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मैनेजिंग
डाइरेक्टर तथा कार्यकर्तागण।

कुछ वैद्योपयोगी वैद्यनाथ प्रकाशन

आरोग्य प्रकाश—वैद्य और सर्वसाधारण सभी के लिए परम उपयोगी है। इस ग्रन्थ की ६८ हजार से अधिक प्रतियाँ छपकर हाथों-हाथ विक चुकी हैं। ४१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य प्रचार की दृष्टि से सिर्फ १।।।) रखा गया है। डाकखर्च ॥=) है। परन्तु एक साथ तीन प्रति मंगाने पर डाक खर्च कार्यालय देगा।

आयुर्वेद-सार-संग्रह—(संशोधित-परिवर्धित द्वितीय संस्करण) विशेष रूप से वैद्यों के लिए ही वैद्योपयोगी ज्ञान का संकलन कर इसको हमने प्रकाशित किया है। मूल्य—७) मात्र।

सिद्धयोग-संग्रह—आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य के कर-कमलों द्वारा लिखित ग्रन्थरत्न। मूल्य—२।।।) मात्र।

त्रिदोष-तत्त्व-विमर्श—त्रिदोष-सिद्धान्त का विद्वत्तापूर्ण विवेचन है। मूल्य २।।=) मात्र।

पदार्थ-विज्ञान—लेखक—आयुर्वेद बृहस्पति रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य, प्रिसिपल, अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेदिक कालेज, बेगूसराय। मूल्य—३।।) मात्र।

आयुर्वेदीय-पदार्थ-विज्ञान—लेखक—वैद्य रणजितराय आयुर्वेदालंकार। 'पदार्थ विज्ञान' ग्रन्थ में आचार्य पाठकजी ने पदार्थ-विज्ञान पर अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से विचार किया है। इस ग्रन्थ—'आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान' में पाठकों को आचार्य रणजितराय के स्वतन्त्र मौलिक विचार मिलेंगे। मूल्य—६) मात्र।

मानस-रोग-विज्ञान—(पूर्वार्ध)—स्वर्गीय डा० बालकृष्ण अमरजी पाठक कृत। इस, ग्रन्थरत्न में आयुर्वेदीय मनोविज्ञान का विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन हुआ है। मूल्य—५।।) मात्र।

यूनानी सिद्धयोग संग्रह—यूनानी चिकित्सा पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की तरह ही सस्ते और तुरन्त लाभ करने वाले होते हैं। अतः चिकित्सकों तथा सर्व साधारण दोनों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य—२।।)

किशोररक्षा और ब्रह्मचर्य—किशोर बालकों को हस्तमैथुन रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने के लिए इस पुस्तक में सफल उपाय लिखा गया है। मूल्य—१।=)

प्रकाशक :

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

प्रकाशक पण्डित रामनारायण शर्मा (१, गुप्ता लेन, कलकत्ता) के लिए जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता में मुद्रित।

April, 1953

Digitized by Arya Samaj Foundation, Varanasi and eGangotri

SACHINARA AYURVED

Regd. No. C. 314

- ★ स्वर्ण मुक्ता, वेष्टार, कस्तूरी-शुक्ल धातु पौष्टिक
- ★ जीर्ण ज्वर एवं दुर्बलता-नाशक
- ★ अनुपात-भेद से सभी रोगों में लाभदायक
- ★ दिल तथा दिमाग को पुष्ट करने में बेजोड़
- ★ सन्निपात और नाड़ी-क्षीणता में शीघ्र लाभ करता है

वसन्त कुसुमाकर

वसन्त मालती

मकरध्वज

मोती भस्म

कस्तूरी भैरव



R 530.7, SHA-S



J079832

वैद्यनाथ रस मन्त्र पूजा शास्त्रीय विधि से तैयार की जाती है

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.

काशी * पटना * भोपाल * नागपुर



TRADE MARK

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

